गढाकोला
मगडायर
और
ऊँचगाव
के
साहित्य-प्रेमियोको

दूसरे संस्करण की
भूमिका

यह पुस्तक आठ-नौ साल पहले लिखी गयी थी। तब से अब तक देश और साहित्य में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। भारत अब उपनिवेश न रहकर अर्द्ध-उपनिवेश हो गया है; अंग्रेजों का शासन यहाँ नहीं है यद्यपि वह जर्जर सामन्ती ढाँचा अब भी है जिससे निराला-साहित्य का घनिष्ठ संबंध है। साहित्य संसार में निराला की विजय अब असंदिग्ध है। वह साहित्य-प्रेमियों के हृदय में तो पहले ही घर कर चुका था; अब उसने विश्वविद्यालयों के हिन्दी शिक्षा-नवीसों का हृदय भी छू लिया है। विद्यामन्दिरों के द्वार उसके लिए भी खुल गये हैं। यह हर्ष की बात है।

निराला हमारे युग के हैं, इस युग के बहुत निकट हैं। उनका मूल्य आँक सकना अभी कठिन है, कितना कठिन यह आजकल उनके स्वास्थ्य और उस स्वास्थ्य के प्रति हिन्दी और देश के कर्णधारों के रुख को देखकर समझा जा सकता है। निरालाजी बहुत दिन से शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ हैं; बहुत आन्दोलन करने पर उनके लिये शासन की ओर से बहुत थोड़ा-सा धन व्यय किया जाने लगा है। यह धन बहुत ही अपर्याप्त है; इसके सिवा उनकी देखभाल की भी कोई व्यवस्था नहीं है। शासन की उदासीनता से अधिक दुखदायी प्रयाग के साहित्यकारों की उदासीनता है जो निराला के लिये एक होकर कदम नहीं

उठा पाये । हिन्दी प्रेमियों से निवेदन है कि वे अपने युग-निर्माता कलाकार को तिल-तिल कर घुलने न दें, वे संगठित होकर एक सशक्त आन्दोलन चलायें जिससे शासन भी बाध्य होकर उनकी परिचर्या का उचित प्रबन्ध करना पड़े ।

पुस्तक में जहाँ-तहाँ थोड़ा बहुत संशोधन किया है, अन्त में "जीवन-दर्शन और कला" पर एक अध्याय और जोड़ दिया है । इस पुस्तक को लिखने का मूल उद्देश्य यह रहा है कि साधारण पाठकों तक निराला-साहित्य पहुँचे; दुरूहता की जो दीवाल खड़ी करके विद्वानों ने निराला को उनके पाठकों से दूर रखने का प्रयत्न किया था, वह दीवाल ढह जाय, इस उद्देश्य को ध्यान में रखने से पाठक अधिक सहानुभूति के साथ यह पुस्तक पढ़ सकेंगे ।

गोकुलपुरा, आगरा
१८–१२–'५४

रामविलास शर्मा

पहले संस्करण की

भूमिका

मुझसे कई लोगों ने पूछा कि निराला पर पुस्तक लिखने की क्या जरूरत है। यहाँ पर संक्षेप में मैं इस प्रश्न का उत्तर दे दूँ। यह सभी लोग जानते हैं कि उनका व्यक्तित्व एक उपन्यास के अच्छे-खासे हीरो-का-सा है। उसमें काफी वैचित्र्य और नाटकीयता है। इसलिए उनके जीवन पर एक बड़ी रोचक पुस्तक लिखी जा सकती है। लेकिन ऐसी पुस्तक लिखना मेरा उद्देश्य नहीं है और न शायद उसे लिखने का अभी समय आया है। फिर भी उनके जीवन के एक संक्षिप्त अध्ययन से हमारे सामाजिक संगठन की असंगतियाँ, उसकी रूढ़ि-प्रियता और उसका खोखलापन बहुत-कुछ समझ में आ जायगा। उनकी चिन्ताजनक परिस्थिति से अधिकांश पाठक परिचित होंगे। इसका उत्तरदायित्व सबसे पहले हमारी समाज-व्यवस्था पर है। उनका जीवन प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के लिए एक चुनौती है कि वह इस सड़ी-गली व्यवस्था का अंत करके एक नये समाज का निर्माण करे।

यह भी सभी लोग जानते हैं कि छायावाद के प्रवर्तकों में उनका अन्यतम स्थान है। प्रत्येक नये साहित्यिक आन्दोलन की तरह छायावाद का भी जोरों से विरोध हुआ। उसकी प्रतिध्वनि अब भी पत्र-पत्रिकाओं में जब-तब सुनाई पड़ जाती है। विरोधियों में अधिकतर वह लोग रहे हैं जो पुराने साहित्य के समर्थक थे और एक पिटी हुई लीक छोड़ कर साहित्य में नये प्रयोग करना प्राचीनता का अपमान समझते थे। इस विरोध में निराला को केन्द्र बनाया गया। उस साहित्यिक आन्दोलन और उस व्यक्तित्व में अवश्य ही कुछ ऐसी क्षमता होगी जिससे कि इन पुरान-पन्थियों के दल में खलबली मच गयी और वे नये साहित्यिक प्रयोगों का

प्राणपन से विरोध करने लगे। आज यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम छायावादी कवियो के इस पक्ष की ऐतिहासिक दृष्टि से छानबीन करें। इस तरह की समीक्षा के बिना हम अपनी परम्परा की कड़ियाँ न जोड सकेंगे और न हमारे नये साहित्य का आन्दोलन सही प्रगति कर सकेगा। इसके साथ यह भी याद रखना चाहिये कि छायावाद में ऐसी असगतियाँ भी थी जिनसे उसका मार्ग अवरुद्ध हो गया। उसके कर्दम-मय जल में कुछ साहित्यिक अब भी तैर कर पार लगने का वृथा प्रयास कर रहे हैं। यह नही कहा जा सकता कि छायावाद की पतनोन्मुख प्रवृत्तियो से हिंदी का नया साहित्य अपनी रक्षा कर पा रहा है। घुन की तरह वे भीतर ही भीतर साहित्य के वट वृक्ष को खाती जा रही है। वह वृक्ष इस रोग का निदान किये बिना पृथ्वी-वायु से पूर्ण जीवनी शक्ति नही पा सकता। इसलिये छायावाद का प्रगतिशील पक्ष और इसके साथ उसकी पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ—इन दोनो की तुलना और मूल्यांकन की आवश्यकता है।

पिछले दस वर्षों में छायावाद के अनेक प्रसिद्ध लेखक काल्पनिक साहित्य की रचना से मुँह मोडकर समाज के यथार्थ जीवन की ओर झुके और साहित्य में एक नई प्रगतिशील धारा के अगुआ बने—यह बात भी हिन्दी के पाठको से छिपी नही है। इन कवियो में निराला और पन्त का कार्य मुख्य है। 'सुधा' में 'देवी' और 'चतुरी चमार' लिख कर निराला जी ने अपने गद्य में साहित्य की नयी दिशा की ओर सकेत किया था। कुछ दिन बाद पन्त जी ने इलाहाबाद से 'रूपाभ' निकाला था और वह नये साहित्य का मुखपत्र बन गया था। निरालाजी इसमें बराबर लिखते थे और इनके सहयोग से नये लेखको को अपना नया मार्ग पहचानने में सहायता मिली। तबसे वह क्रम टूटा नही है। गद्य और पद्य दोनो में ही वे निरन्तर प्रयोग करते रहे हैं। छायावाद से उत्तर-काल की इन रचनाओ का मूल्यांकन करना और नये साहित्य में उसका स्थान निर्धारित करना आवश्यक है। बहुत से आलोचक उनके नये प्रयोगो को वैसे ही हँसकर उड़ा देना चाहते है जैसे किसी समय उनके पूर्ववर्ती समालोचको ने उनके छायावादी

रचनाओं को उडाना चाहा था। इसके विपरीत उनके कुछ प्रयोगो को हम अपना नया साहित्यिक आदर्श मान बैठें, तो भी लाभ के बदले हानि ही ज्यादा होगी।

ऊपर की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए मैंने यह पुस्तक लिखने की चेष्टा की है। जीवनी वाले भाग में मैंने उन अशो पर ज्यादा ज़ोर दिया है जिनका सम्बन्ध उनके साहित्य से अधिक है। वह दो युगो के प्रतिनिधि साहित्यकार है। विषम परिस्थितियो में उन्होंने साहित्य की साधना की है। उनका सघर्षमय जीवन हम नये साहित्यिको के लिये एक चिरन्तन प्रेरणा है। सन् '३४ से अबतक उनके जीवन-प्रवाह और साहित्य सर्जन को मैं यथेष्ट मनोयोग से देखता रहा हूँ। बारह वर्ष तक इतने निकट सपर्क में रहने के कारण उन पर पूर्ण तटस्थता से लिखना मेरे लिये प्राय असम्भव है। फिर भी साहित्य के हित को ध्यान में रखते हुए मैंने यही प्रयास किया है कि कहीं उनकी अनुचित प्रशसा न हो और कहीं भी उनके साहित्य की कमजोरियों पर पर्दा डालने से हमारी नई साहित्यिक प्रवृत्तियो का अनहित न हो। यह कहने की जरूरत नहीं कि उनकी रचनाओं का उचित स्थान निर्देश करने में मेरा हृदय नि शक रहा है।

निरालाजी के मित्रो की सख्या बहुत बडी है। उनमें से अधिकाश से निरालाजी के जीवन और साहित्य के बारे में बहुत सी बातें मालूम हुई हैं। उनके अलग-अलग नाम न लेकर यहाँ मैं एक साथ ही उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। निरालाजी के साहित्य और व्यक्तित्व के बारे में सबसे अधिक जानकारी उन्ही से हुई है। उनके सिवा उनके सम्बन्धियों से भी मुझे बहुत सी बातें मालूम हुई हैं। इनमें निरालाजी की स्नेहमयी सासुजी का उल्लेख करना आवश्यक है जिनके हृदय में अपनी युवती कन्या की स्मृति इस तरह सुरक्षित है मानो उन्होंने उन्हें कल ही विदा किया हो। साहित्य ससार से दूर विश्व के प्रकाश में न आनेवाली हमारे गाँव की वीर नारियो की वह प्रतीक है। वैधव्य के गाढे दिन काटते हुए उन्होंने कवि के पुत्र श्री रामकृष्ण

और पुत्री स्वर्गीया सरोज का लालन-पालन किया और इस प्रकार कन्या के निधन होने पर वे कवि को जीवन का कठिन भार वहन करने में सहायता देती रही। धीरता, शील और सौम्यता की इस मूर्ति के बिना निरालाजी का जीवन क्या होता, उनकी कठिनाइयाँ कितनी बढ जाती, उनके रचना कार्य में और कितनी विघ्न बाधाएँ आ खडी होती, यह कहना कठिन है। यह तो निर्विवाद है कि द्वेष और विरोध की ज्वाला से बचकर निरालाजी को डलमऊ में बराबर स्नेह की शीतल छाया मिली है। इसके लिये निराला-साहित्य का प्रत्येक पाठक उस जननी के प्रति, जिसने निराला को उसके जीवन की सबसे बडी कविता दी, कृतज्ञ रहेगा।

पुस्तक समाप्त करते हुए मुझे समाचार मिला कि इस वीरमाता की एकमात्र जीवित सतान श्री रामधनी द्विवेदी का दीर्घकालीन रुग्णता के बाद शरीरान्त हुआ। वृद्धावस्था में अनेक कष्टो के बाद उन्हे यह पुत्र का विछोह भी सहना पडा। कोई आश्चर्य नही कि निरालाजी एकाएक डलमऊ छोडकर बाहर निकल गए। मुझे विश्वास है कि यह दुखिनी माँ और स्वय निरालाजी इन कठोर प्रहारो को वैसे ही सहन करेंगे जिस तरह उन्होने जीवन में अन्य प्रहारो को सहा है। जिसने "दुख का मुँह देखते देखते उसकी डरावनी सूरत को बारबार चुनौती" देने की बात लिखी थी, विपत्तियों से टूट नही सकता, हम सदैव उससे नयी प्रेरणा, नयी दृढता और नये उत्साह का साहित्य पाने की आशा कर सकते हैं।

आगरा, अक्तूबर १९४६

१

वैसवाड़े का जीवन

भरे-पूरे परिवार में निरालाजी का जन्म हुआ था। माता थी, पिता थे, चाचा थे, सभी कुछ था। अवध में अपना गाँव छोड़कर यह परिवार बंगाल की एक रियासत में जा बसा था। हिन्दुस्तान की दूसरी रियासतों की तरह बंगाल की शस्य-श्यामला भूमि पर महिषादल का भी एक राज्य था। वन, प्रकृति, ग्राम, नारियल, कटहल, बाँस के पेड़, तालाब, नदियाँ, बेला, जुही, हरसिंगार, सब कुछ था; लेकिन जनता भूखी थी। यहीं पर संवत् १९५३ की वसंतपंचमी को पण्डित रामसहाय त्रिपाठी के घर बालक सूर्य-कुमार का जन्म हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में बालक के जीवन में एक कभी न पूरा होने वाला अभाव छोड़कर माता स्वर्ग चली गईं। कवि को "अनगिनत आ गए शरणों में जन-जननि" से उस अभाव की पूर्ति करनी पड़ी। पिता पंडित रामसहाय अवध के सीधे सादे किसान थे, जो सिपाही बन गए थे। स्वभाव की रुक्षता पहले से कुछ और बढ़ गई थी। यद्यपि अभी उनकी वैसी अवस्था न थी, फिर भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। पत्नी की मृत्यु के उपरान्त वे सत्रह साल तक और जीवित रहे और इन्फ्लुएंजा से उनकी अकाल मृत्यु हुई।

यह आशा की जा सकती थी कि पत्नी के अभाव में वे अपना सारा स्नेह अपनी एकमात्र संतान पर उड़ेल देंगे। यह सम्भावना भी थी कि बहुत लाड़-प्यार से वे अपने प्यारे इकलौते बेटे को बिगाड़ देंगे। परन्तु ऐसे भय या आशंका का कोई कारण न रहा। एक बार हाजत रफ़ा करने के बाद बालक ने यूरोपवासियों की तरह आधुनिक ढंग से बैंगन के पत्ते से

कागज का काम लिया। ज्योंही निवृत्त होकर रसोई घर में जाना चाहता था कि भाभी ने रोक लिया और झरोखे से जो कुछ देखा था, उसे पिताजी से निवेदन कर दिया। पिताजी ने गरजकर डाट बताई, लेकिन इतना काफी नही था। बालक को टाँग पकड कर उठा लिया और तालाब तक ले जाकर अपने हाथ से कई बार डुबकियाँ लगवाई जैसे किसी गन्दी चीज को साफ कर रहे हों। इस तरह बालक की अपवित्रता निवारण करके और अब उसे निकट से छूने योग्य समझ कर उन्होने उसे वास्तविक दड देना शुरू किया।

दूसरी बार बालक ने पिता को सुझाया—तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यो नही लेते। पिता ने सोचा कि यह भी किसी दुश्मन का जाल है जो इस तरह भेद लेना चाहता है। पुत्र से वह रहस्य जानने की चेष्टा करने लगे और चिरजीव इस सूझ के लिये अपनी मौलिक प्रतिभा की दुहाई देने लगे।, परन्तु पिता को विश्वास न हुआ, जब बालक बेसुध हो गया, तभी ताड़न-क्रिया बद हुई।

तीसरी बार अपने गाँव में वेश्या के लडको के हाथ से पानी पीने के कारण फिर वही दशा हुई। "मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे है। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गई थी।"

मातृहीन भावुक-हृदय बालक पर इस व्यवहार का क्या प्रभाव पडा होगा, पाठक सहज ही कल्पना कर सकते हैं। घर के बाहर भी उसका जीवन सुखी नही था। तुलसीदास की रामायण पढ़कर उसने हनुमान की उपासना करना सीखा था। सरोवर से लाल कमल लाकर वह उनका सिंगार करता था। इस वीर भावना के साथ ऊँच-नीच और छोटे बडे के विचार का मेल न खाता था। *राज्य में कायस्थ, ब्राह्मण,* कुलीन और

अकुलीन का प्रश्न राष्ट्रीय समस्या की तरह हल न हो पाता था। स्वामी परमानन्दजी के महिषादल पधारने पर ब्राह्मण और कायस्थ एक ही पांति में भोजन पाने बैठे। कायस्थों को गर्व हुआ कि उन्हीं की जाति के सन्यासी का अब इतना आदर हो रहा है। इस पर विप्र वर्ग का भी ब्रह्मतेज जागा। एक ब्राह्मण ने नवयुवक की ओर इंगित करके अपमानजनक शब्द कहे। जब स्वामीजी गढ़ का मन्दिर देखने गये, तब भी युवक को उनके साथ आने से रोका गया। एक ब्राह्मण ने बड़े मार्के की बात कही, "देवता राजा के हैं, किसी प्रजा के नहीं।"

इस तरह की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बालक पिता से पाये हुए उद्धत स्वभाव के कारण अपने जीवन के सभी काम निर्भीक भाव से करता रहा। स्कूल की शिक्षा नवीं कक्षा तक मिली, फिर अनेक प्रतिभाशाली साहित्यकारों की तरह उसने स्कूल को नमस्कार किया। खेल-कूद से उसे काफी दिलचस्पी थी और क्रिकेट और फुटबाल का अच्छा खिलाड़ी था। सहपाठियों में उसके जीवन का अकेलापन बहुत कुछ दूर हो जाता था। संगीत की भी उसे शिक्षा मिली और 'चोटी की पकड़' का "बिन्दा कहत करो हमसों न रार" तभी से उसके कंठ में बैठा हुआ है। राजा साहब के बड़े हारमोनियम पर युवक कभी-कभी गाता भी था।

सम्पूर्ण बाल्यकाल महिषादल में नहीं बीता। जब तब वह अपने गाँव भी आया करता था। कानपुर-रायबरेली लाइन पर बीघापुर स्टेशन से लगभग कोस पर गढ़ाकोला गाँव बसा हुआ है। लोन नदी को पार करने पर गांव के कच्चे घर दिखाई पड़ने लगते हैं। और घरों की तरह चौपाल, छप्पर, दहलीज, आँगन, खमसार और अटारी के नक्शे पर पण्डित रामसहाय का मकान भी बना हुआ है। अवध का यह भाग बैस ठाकुरों की बस्ती के कारण बैसवाड़ा कहलाता है। ताल, छोटी नदियाँ और नाले, घनी अमराइयाँ यहाँ की शोभा हैं। इसे हम अवध का हृदय कह ... ने अवधी का सबसे मधुर रूप यहीं बोला जाता है। इस भाषा

कोमलता दोनों का ही विचित्र सम्मिश्रण है। यहाँ के किसान परिश्रमी, ताल्लुकदार सरकारी पिट्ठू, छोटे जमींदार कमर टूटने पर भी निरकुंशता की परम्परा को निबाहते जानेवाले, विप्र वर्ग दम्भी और निम्न जातियाँ बहुत ही सताई हुई हैं। यहाँ के काफी लोग बम्बई और कलकत्ते में नौकरी करते हैं, परन्तु शिक्षा और व्यवसाय में उन्होंने विशेष उन्नति नहीं की। कुछ दिन पहले हर गाँव में दो चार परिवार ऐसे निकल आते थे जिनके लोग फौज में सिपाही, हवलदार या सूबेदार तक होते थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ी या गलमुच्छे रखनेवाला पेन्शन भोगी यह वर्ग अब मिट-सा गया है।

अनेक दृष्टियों से पिछड़े होने पर भी बैसवाड़े की भूमि ने हिन्दी को अनेक साहित्यिक दिये हैं। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र अचलगंज के पास बैथर गाँव के निवासी थे। इसी के पास अगढ़पुर में कवि शिव-मंगल सिंह 'सुमन' का जन्म हुआ है। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के जन्मस्थान दौलतपुर को सभी लोग जानते हैं। पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयी मगडायर गाँव के हैं, और इसी तरह हितैषीजी आदि अन्य साहित्यिकों ने भी पुरवा तहसील के गावों में जन्म लिया है। 'सरस्वती' सम्पादक श्री देवीदत्त शुक्ल निरालाजी के चरितनायक कुल्लीभाट के लँगोटिया यार रह चुके हैं।

हिन्दी को बैसवाड़े की इस देन का यह कारण है कि जन साधारण में अब भी साहित्य की एक जाग्रत और सजीव परम्परा विद्यमान है। आज भी कोई ऐसा गाँव न होगा जिसमें दो-चार सौ कवित्त याद रखने वाले दो-चार कविता प्रेमी न निकल आयें। शाम को किसी शिवाले पर कवित्त कहनेवालों में होड़ होती है तो सुनने वालों का मेला लग जाता है। जीवन के हर काम में और बात-बात में कवियों की उक्तियाँ उद्धृत करना यहाँ की बोलचाल की विशेषता है। हल जोतते समय किसान अक्सर कह बैठते हैं, "वित्त कवित्त सबै भूलें जब हाथ परी हर कै मुठिया,"

लेकिन भलने पर भी इन वित्तहीन किसानो के कंठ से ऐसे मौके पर कभी-कभी कवित्त के वे टुकड़े फूटते हैं कि सुनकर एक बार चार्ल्स लैम्ब भी इनकी उद्धरण-चातुरी की दाद देता। गिरधर कविराय की कुण्डलियाँ, तुलसीदास की रामायण, घाघ भड्डरी की सूक्तियाँ और सैकड़ों दोहे और छन्द लोगो की जबान पर है। आल्हा का तो पूछना ही क्या—आल्हा अवध की अपनी चीज है। कौन ऐसा युवक होगा जिसने सुरती न खाई हो और आल्हा न गाया हो। आल्हा गाने में समय नष्ट होता देखकर और घर के काम-धंधे रुकते जानकर बड़े-बूढ़ो ने चेतावनी दी थी कि जो आल्हा गायेगा उसे जूड़ी आयेगी, जो सगति करेगा उसे ताप हो जायगा और जो मूर्ख अपनी चौपाल में सुननेवाले ठलुओ को इकट्ठा करेगा, उसका तो वंश ही नाश हो जायगा। लेकिन अनेक पौराणिक वाक्यो की तरह जनता पर इस रूलिंग का भी कोई असर नही पड़ा।

आल्हा से कुछ ही कम रिवाज नौटकी का है। जब-तब नगाड़े की कड़-कड़ घुम के साथ आधी रात को टीप पर "मुझको मरने का खौफो-खतर ही नही" जैसे टुकड़े सुनाई पड़ जाते हैं। नौटकी प्रेमियों का एक अलग ही वर्ग है। तिर्छी दुपल्ली टोपी, जुलफें तेल में चुचुवाती हुई, मुँह में दुहरा, सुरती या पान, एक पैर में लम्बी धोती और दूसरे में उठी हुई, बहुत शौकीन हुए तो कान पर बीड़ी या चूने की गोली, हाथ में तेलपायी लाठी और पैरों में नुकीला जूता या शहर का स्लीपर, यह इनकी धजा है। गाँव के ठलुए छैले और गुन्डे बहुधा इसी वर्ग के होते हैं।

शूद्रो और निम्न जातियों में संत कवियो का, विशेषकर कबीर की वाणी का, बड़ा प्रचार है। इस साहित्य पर उनका इतना अधिकार है कि वे किसी भी साहित्य महारथी को पछाड़ सकते हैं। निरालाजी चतुरी को अपने रेखाचित्र में इस बात का प्रमाणपत्र दे चुके हैं। होली के दिनो में फाग और सावन में झूले के गीत सारी प्रजा की सम्पत्ति है। नारी समु-

दाय ने अपने लोकगीतों की अलग रक्षा की है। तिथि-त्योहार जाने दीजिये, साँझ को मन्दिर में जल चढ़ाने जायेंगी तो गायेंगी, पानी भरने जायेंगी तो गायेंगी, चक्की पीसेंगी तो गायेंगी,—मतलब यह कि जहाँ चार स्त्रियां इकट्ठी हुई तो वे या तो एक-दूसरे की बुराई करेंगी या फिर गीत गायेंगी। काव्य और संगीत के साथ कथाओं के रूप में एक विशाल गद्य साहित्य भी है जो अभी पुस्तकों में लिपिबद्ध होकर मुद्रित नहीं हुआ। शायद ही कोई अभागा बालक हो जो सोने के पहिले दो-चार कथाएँ न सुन लेता हो। बड़े-बूढ़ों ने अपनी जान बचाने के लिये यह नियम बना लिया है कि दिन में कथा न सुनायेंगे। शास्त्र की दुहाई देकर वे कहते हैं कि जो दिन में कथा सुनायेगा, वह रास्ता भूल जायेगा और सुननेवाले का मामा खो जायगा। इसी गद्य-साहित्य के अन्तर्गत वे हजारों कहावतें और मुहावरे हैं, जिनसे इस जनपद की भाषा आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध है। भाषा और साहित्य की इस लोक-परम्परा के कारण ही निर्धनता और अशिक्षा के बावजूद इस भूमि ने आचार्य द्विवेदी और कवि निराला को उनकी रचनाओं के लिये प्रेरणा दी है।

बालक सूर्यकुमार ने पिता से अच्छी काठी पाई थी। चौदह वर्ष की अवस्था ही में कसरत-कुश्ती का शौकीन वह एक अच्छा युवक बन गया। बैसवाड़े में, देश के बहुत से अन्य भागों की तरह, बचपन में ब्याह करना एक गौरव की बात समझी जाती है। अल्प अवस्था में सूर्यकुमार का भी विवाह हो गया। सासुजी ने लड़के को बुलाकर देख लिया, मन बैठा लिया और बात पक्की कर ली। परन्तु यह जानकर कि उनकी बिटिया को दूर परदेश जाना पड़ेगा, उन्होंने यह शर्त रक्खी कि छः महीने वह सासरे रहेगी और छः महीने मायके। श्वसुर उन्हें परदेश भी न ले जायँगे।

विवाह वर के योग्य हुआ। स्वर्गीया मनोहरा देवी रूपवती और गुणवती दोनों थी। रंग कवि का-सा था, यानी खुलता गेहुँआ, मुंह कुछ लम्बा-सा, घने लम्बे केश, गाने में अत्यन्त निपुण, सौ-डेढ़ सौ स्त्रियों में

धाव जमाने वाली, विवाह के समय साहित्य में कवि से अधिक योग्य। गौने से कवि का रोमांस शुरू हुआ। अपनी शिक्षा जारी रखने के लिये फिर महिषादल आना पड़ा लेकिन "वामा वह पथ में हुई वाम सरितोपम,"— शिक्षा का क्रम आगे न चल सका। कुछ दिन तक वह डलमऊ रहे। दूध-बादाम में सास का दिवाला निकालते-निकालते छोड़ा। रूह की मालिश कराई, कुल्ली की संगति की। गंगा के किनारे एक हाथ से चौथे फेंककर और दूसरे से लोकते हुए क्रिकेट का शौक पूरा करते थे। वैवाहिक जीवन का सुख अधिक दिन तक नहीं बदा था। श्री मनोहरा देवी ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म देकर इन्फ्लुएंजा की बीमारी में शरीर त्याग किया। उस समय युवक पति महिषादल में था। पत्नी की मृत्यु मायके में, माँ की गोद में हुई। तब युद्ध समाप्त होने के बाद सूर्यकुमार भी वहाँ आ पहुँचा। इस वज्रपात से उसका बुरा हाल था। घंटों श्मशान में बैठा रहता। कहीं कोई चूड़ी का टुकड़ा, हड्डी या राख मिल जाती, तो उसे हृदय से लगाये घूमा करता। इन्फ्लुएंजा में इतने मनुष्य नष्ट हुए थे कि गंगा के किनारे दिन-रात चिताओं की जोत कभी मन्द न होती थी। अवधूत टीले पर बैठा युवक कवि घंटों तक बहती हुई लाशों का दृश्य देखा करता।

डलमऊ को अगर एक मनहूस जगह कहा जाय तो बेजा न होगा। जीवन से अधिक यह मृत्यु का स्थान है। किसी समय वह व्यापार की मण्डी था। पृथ्वीराज और जयचन्द के समय इसका राजनीतिक महत्व भी था। भर राजाओं के विशाल किले के ध्वंसावशेष उसके ऐतिहासिक गौरव के साक्षी हैं। आज भी कतकी के दिनों में बड़े-बड़े आम और इमली के अगाइच जन-समूह से भर जाते हैं। धनुषाकार गंगा नगर को घेरे हुए हैं। अनेक स्थानों से नदी का चौड़ा पाट, दूसरी ओर की वनराजि और कूले पर से कोसों तक फैले हुए मैदानों का दृश्य दिखाई देता है। परन्तु अब नदी पर धनी व्यापारियों के बजरों की भीड़ नहीं होती। व्यवसाय

वाय ने अपने लोकगीतों की अलग रक्षा की है। तिथि-त्यौहार जाने दीजिये, साँझ को मन्दिर में जल चढ़ाने जायेंगी तो गायेंगी, पानी भरने जायेंगी तो गायेंगी, चक्की पीसेंगी तो गायेंगी,—मतलब यह कि जहाँ चार स्त्रियाँ इकट्ठी हुईं तो वे या तो एक-दूसरे की बुराई करेंगी या फिर गीत गायेंगी। काव्य और संगीत के साथ कथाओं के रूप में एक विशाल गद्य साहित्य भी है जो अभी पुस्तकों में लिपिबद्ध होकर मुद्रित नहीं हुआ। शायद ही कोई अभागा बालक हो जो सोने के पहिले दो-चार कथाएँ न सुन लेता हो। बड़े-बूढ़ों ने अपनी जान बचाने के लिये यह नियम बना लिया है कि दिन में कथा न सुनायेंगे। शास्त्र की दुहाई देकर ये कहते हैं कि जो दिन में कथा सुनायेगा, वह रास्ता भूल जायेगा और सुननेवाले का मामा खो जायगा। इसी गद्य-साहित्य के अन्तर्गत वे हजारों कहावतें और मुहावरे हैं, जिनसे इस जनपद की भाषा आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध है। भाषा और साहित्य की इस लोक-परम्परा के कारण ही निर्धनता और अशिक्षा के बावजूद इस भूमि ने आचार्य द्विवेदी और कवि निराला को उनकी रचनाओं के लिये प्रेरणा दी है।

बालक सूर्यकुमार ने पिता से अच्छी काठी पाई थी। चौदह वर्ष की अवस्था ही में कसरत-कुश्ती का शौकीन वह एक अच्छा युवक बन गया। बैसवाड़े में, देश के बहुत से अन्य भागों की तरह, बचपन में ब्याह करना एक गौरव की बात समझी जाती है। अल्प अवस्था में सूर्यकुमार का भी विवाह हो गया। सासुजी ने लड़के को बुलाकर देख लिया, मन बैठा लिया और बात पक्की कर ली। परन्तु यह जानकर कि उनकी बिटिया को दूर परदेश जाना पड़ेगा, उन्होंने यह शर्त रक्खी कि छः महीने वह सासरे रहेगी और छः महीने मायके। श्वसुर उन्हें परदेश भी न ले जायेंगे।

विवाह वर के योग्य हुआ। स्वर्गीया मनोहरा देवी रूपवती और गुणवती दोनों थीं। रंग कवि का-सा था, यानी खुलता गेहुँआ, मुह कुछ लम्बा-सा, घने लम्बे केश, गाने में अत्यन्त निपुण, सौ-डेढ़ सौ स्त्रियों में

दिसम्बर सन् '२१ में द्विवेदीजी ने निरालाजी को लिखा, "जान पड़ता है स्वामीजी ने बहाना कर दिया है। पसंद किसी और ही को किया होगा। खैर उनकी इच्छा। इधर बनारस जाने में भी आपने देर कर डाली।" आगे चलकर निरालाजी ने रामकृष्ण मिशन में काम किया और साल भर तक 'समन्वय' का सम्पादन किया। इसी समय रामचरित मानस पर उन्होंने वे निबन्ध लिखे जिनमें सप्त सोपान आदि की नई व्याख्या करके उन्होंने तुलसीदास को रहस्यवादी सिद्ध किया है।

सन् १९२३ में बाबू महादेव प्रसाद सेठ ने 'मतवाला' निकाला। साल भर तक निरालाजी वहाँ रहे। 'मतवाला' की तीसरी संख्या में पृष्ठ १७ पर कविता छपी है, "नये-रूप पहचान" और इसी के साथ 'मतवाला' के सम पर गढ़ा हुआ 'निराला' नाम भी प्रकाशित हुआ है। अठारहवें अंक में 'जूही की कली' छपी है जिसके साथ पहली बार कवि का पूरा नाम पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रकाशित हुआ है। उनके जीवन में बहुत दिनों के बाद ऐसा सुखद वर्ष आया था। महादेव बाबू बड़ी खातिर करते थे। बहुत दिनों के बाद अवरुद्ध साहित्यिक प्रतिभा को प्रकाश में आने का अवसर मिला था। शाम को भाँग छानना, दिन-भर सुरती फाँकना, थियेटर देखना, साहित्यिकों से सरस वार्तालाप करना, मुक्त छन्द में कविता लिखना, छद्म नामों से हिन्दी के आचार्यों की भाषा में व्याकरण और मुहावरों की भूलें दिखाना, और यों समस्त हिन्दी संसार को चुनौती देना—उनके जीवन का कार्य-क्रम था। उस समय ऐसा लगता था कि मुंशी नवजादिक लाल, बाबू शिवपूजन सहाय, और पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ है। बंगाल में स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कार्य देखकर हिन्दी भाषी प्रांतों में साहित्यिक और सामाजिक क्रांति करने के लिये प्रबल आकांक्षा जाग उठी थी परन्तु साधन कम थे और विरोध अधिक था।

ग्रहोंकी विशेष कृपा होनेसे निरालाजी साल दो साल तक ही एक जगह पैर जमाकर रह सकते हैं। साल भर बाद ही वह 'मतवाला' से अलग हो गये और अगले पांच वर्ष अस्थिरता, आर्थिक चिन्ता, शारीरिक और मानसिक रोग में बीते। कलकत्ते से चलते हुए उन्होंने बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे, पण्डित सकल नारायण शर्मा और प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी से अपनी योग्यता के प्रमाणपत्र लिये। चतुर्वेदीजी नई कविता, विशेष रूप से मुक्त छन्द के प्रबल विरोधी थे। कवि-सम्मेलनों में वे निरालाजी की नकल उतारा करते थे। सम्वत् १९८३ में अपने दिए हुए प्रमाणपत्र में उन्होंने विरोध का जिक्र न करते हुए लिखा था, "आपके निराले ढंग के पद्यों ने हिन्दी संसार में युगान्तर-सा उपस्थित कर दिया है।" पता नहीं, कहाँ तक इन प्रमाण-पत्रों ने आर्थिक प्रश्न हल करने में सहायता की।

सन '२६ से '२८ तक का समय उनकी घोर अस्वस्थता का समय भी था। इन वर्षों में प्रसादजी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, विनोदशंकरजी व्यास, पण्डित कृष्णविहारी मिश्र, प्रेमचन्दजी आदि ने इन्हें जो पत्र लिखे हैं, उनमें बराबर बीमारी की चर्चा है। कभी बुखार तो कभी पैर में फोड़ा, तो कभी और कुछ। उस समय आज की तरह का भारी शरीर नहीं था। 'माधुरी' में छपे हुए उनके पुराने चित्र में उनका बहुत कुछ वही हुलिया है जो आजकल उनके पुत्र पण्डित रामकृष्ण त्रिपाठी का है। प्रेमचन्दजी ने फरवरी सन् '२८ में अपने पत्र में लिखा था, "मीयादी बुखार क्या इसीलिए आपकी ताक में बैठा था कि घर से निकलें तो धर दबाऊँ। किस्मत ने वहाँ भी आपका साथ न छोड़ा। बीमारी ने तो आपको दबा डाला होगा। पहले ही कहाँ के ऐसे मोटे-ताजे थे।" रोग और आर्थिक कष्टों से यह लड़ाई अधिकतर गढ़ाकोला में उसी कच्चे मकान में हुई। जब-तब कलकत्ता जाते रहते थे। बाजार के काम से जो कुछ मिलता, उसमें से खाने खरचने के बाद यथाशक्ति भतीजों को भी भेजते थे। उनके पुराने कागज-पत्रों में कुछ मनीआर्डर की

रसीदें हैं जिनसे पता लगता है कि गृहस्थी के प्रति नितान्त उदासीन न थे । सन् '२६ में पण्डित मन्नीलाल शुक्ल, मार्फत रामगोपाल त्रिपाठी, के नाम कलकत्ते से पचास रुपये भेजे थे । कलकत्ते से भी वे घर की छोटी-छोटी बातों के लिए निर्देश किया करते थे । एक उदाहरण काफी होगा । सितम्बर सन् '२७ में उन्होंने अपने भतीजे श्री केशव प्रसाद को लिखा था, "तुमने जो लोगों के दाम दे दिये और अनाज खरीद लिया, सो अच्छा किया । पण्डितजी ने बाग का चारा २२) में बेच डाला यह भी अच्छा हुआ । देखना, पेड़ न चर जाँय, जो लगे हैं । रुपया पण्डितजी को हम बहुत जल्द भेजते हैं ।.......तुम लोगों को जड़ावर भेजेंगे ।" सन् '२६ में एक पत्र में उन्होंने बाग बेच डालने का जिक्र किया है और लिखा है, "खर्च की तकलीफ हो तो बर्तन बेच डालना । तकलीफ न सहना ।" शायद इन्हीं सब बातों को सोचकर 'सरोज स्मृति' में उन्होंने लिखा था,—

"दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही"।

इसी समय उन्होंने 'ध्रुव', 'प्रह्लाद', 'राणाप्रताप', 'रवीन्द्र-कविता-कानन', 'हिन्दी-बंगला शिक्षा', 'रामकृष्ण वचनामृत', आदि पुस्तकें लिखीं या अनुवादित कीं । 'हैक वर्क' या बाजार का काम उन्हें बराबर करना पड़ा है, लेकिन प्रकाशकों की ठग-विद्या के कारण इसे भी वे जमकर नहीं कर सके । पत्रों के सम्पादक काम माँगने पर क्वालीफिकेशन पूछते थे ।

चण्डीदास के पदों का अनुवाद करने के लिये इसी वर्ष छतरपुर से भी बुलावा आया । उस समय बाबू गुलाबराय महाराज साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी थे । उन्होंने लिखा, "लाला शिवपूजन सहाय से ज्ञात हुआ है कि आप बंगला भाषा और ब्रजभाषा के अच्छे ज्ञाता हैं और ब्रजभाषा में कविता भी करते हैं । श्रीमहाराज साहब को एक ऐसे ही विद्वान की आवश्यकता है । वह श्री चण्डीदास के ग्रंथों का पद्यानुवाद कराना चाहते हैं ।" वहाँ जाने पर इन्हें ज्वर हो आया और सत्रह दिन तक बीमार पड़े रहे । उन्होंने

अद्वैत आश्रम अलमोड़ा के अध्यक्ष स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी को बंगला में लिखे हुए अपने पत्र में काम न मिलने की चर्चा की थी। सत्तर रुपये विदाई लेकर घर वापस आ गये। रामायण की टीका करने का विचार कर रहे थे। लेकिन बाबू शिवपूजन सहाय ने उन्हें लिखा, "हिन्दी वालों की दशा आप जानते हैं। टीका के लिए अभी मालदार कोई नहीं सूझता।" आगे चलकर इस तरह की सटीक रामायण का कुछ अंश गंगा-पुस्तक-माला से प्रकाशित हुआ था।

अन्यत्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का अनुवाद करने की बात भी चल रही थी। कॉपीराइट के झगड़े के कारण राय श्रीकृष्णदास को अनुवाद कराने का विचार छोड़ना पड़ा। सन् '२८ के शुरू में 'माधुरी' के सम्पादक ने पूछा कि सम्पादन-विभाग में जगह मिलने पर क्या वह सम्पादक की जिम्मेदारियों को निभा सकेंगे। हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के बारे में उनकी योग्यता की जाँच करते हुए यह भी पूछा गया था, 'प्रूफ रीडिंग का कैसा अभ्यास है?" हिन्दी में प्रूफरीडर और सम्पादक, ये दोनों शब्द पर्यायवाची से हैं। सम्पादक के पत्र के उत्तर में उन्होंने जो कुछ लिखा हो, अगले महीने 'माधुरी' कार्यालय ने लिख भेजा, "इन शर्तों पर अभी आपको न बुला सकूंगा।"

सन् '२९ से उन्होंने स्थायी रूप से गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय में काम करना शुरू किया। सुधा के लिए वे संपादकीय नोट लिखते थे और उसके संपादन का सारा भार सँभालते थे। यहीं पर 'अप्सरा', 'अलका' उपन्यास और 'लिली' की कहानियाँ लिखीं। उनका अध्ययन-क्रम भी पहले की अपेक्षा सुव्यवस्थित हुआ। विश्व-विद्यालय के छात्रों का एक ऐसा दल भी तैयार हुआ जो इनके साहित्य का समर्थन करता था और अपने साहित्य के लिए इनसे प्रोत्साहन पाता था। अंचल, कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह, रामरतन भटनागर 'हसरत', दयानन्द गुप्त आदि उनके निकट संपर्क में आनेवाले तरुण साहित्यिक थे वैसे १० साल के भीतर निराला जी का साहित्यिक अकेला-

पन दूर हो चुका था। कलकत्ते के मित्रों में श्री शिवपूजन सहाय मुख्य थे। उनकी मैत्री पर श्रद्धा का गहरा रंग चढ़ा हुआ था। ब्राह्मणों के प्रति उनकी भक्ति सतयुग की याद दिलाती है। उनकी सरलता और सौजन्य के पीछे विनोदी स्वभाव और दुनिया की तीखी पहचान छिपी है। बाल्यकाल के बा कई वर्षों तक वे अपने पत्रों से निराला जी की बराबर खोज-खबर लेते रहे। कवि के प्राथमिक विकास के दिनों में शिवपूजन सहाय जी उन साहित्यिकों में थे जिन्हें कवि के उज्ज्वल भविष्यपर पूर्ण विश्वास था। उस संघर्ष काल में इस तरह की आस्था, मैत्री और सद्भावना की बड़ी आवश्यकता थी। विनोद शंकर जी व्यास श्रद्धा और प्रेम के साथ निराला जी की खातिर भी खूब करते थे। भाग-बूटी छानकर नाव खेते हुए गाना-बजाना भी होता था। इन्हें इस बात की चिन्ता रहती थी कि ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति की शक्ति और समय का दुरुपयोग अनुवाद वगैरह छोटी मोटी बातों में खर्च न हो। लेकिन मौलिक रचनाओं से जीविका चलाना कठिन था, दूसरे लेखकों की तरह सिर्फ पैसा कमानेके लिये वह मौलिक पुस्तकें लिख भी न सकते थे।

प्रसादजी इनसे स्नेह ही न करते थे, इनकी देखभाल भी करते थे। रुग्णावस्था में उन्होंने औषधि आदि का प्रबन्ध करने में बड़ी सहायता की थी। तभी श्री सुमित्रानन्दन पन्तसे पत्र-व्यवहार शुरू हुआ और एक ही साहित्यिक आन्दोलन में काम करने के कारण साक्षात् परिचय न होने पर भी सहज मैत्री सम्बन्ध स्थापित होगया। 'पल्लव' की भूमिका में आक्षेप करने के कारण निरालाजी ने 'पल्लव' पर एक ध्वंसात्मक लेख लिखा। आगे भी 'भारत' आदि पत्रों में वादविवाद चला, परन्तु इससे उनकी मैत्री में कभी अन्तर नहीं आया। शायद ही किसी युग के तीन कवियों में ऐसा स्नेह सम्बन्ध रहा हो जैसा प्रसाद, निराला और पन्त में था। और शायद ही किन्हीं दो व्यक्तियों के स्वभाव में इतना अन्तर हो जितना पंत और निरालाके। फिर भी दोनोंने न जाने कितने दिन घण्टों एक साथ रहकर बिताये हैं। इसका यही कारण है कि वे एक दूसरे को जितनी

वली' की पहली भूमिका उन्होंने लिखी थी और उसके दोहोंके बारेमें भी परामर्श दिया था। 'वीणा' में एक दोहेके अठारह अर्थ करके उन्होंने अपनी समझमें दोहावलीका बड़ा अच्छा समर्थन किया था। उनके प्रिय मित्र बनारसीदासजी चौबे ऐसे मौकोंकी ताकमें ही रहते थे, अपनी समझमें उन्होंने भी इससे खूब फायदा उठाया। गंगा-पुस्तक-मालासे अलग होनेके समय 'गीतिका' प्रेसमें जा चुकी थी। उस समय जितने गीत लिखे गए थे, निरालाजीने उनकी टीका भी की थी। सौदा न पटनेके कारण पुस्तक प्रेससे मँगाली गई और फिर वह लीडर प्रेसमें छपी। लखनऊ छोड़नेपर अधिकतर वे इलाहाबाद ही रहे। साल-भर तक मकान बन्द पड़ा रहा। पिछला किराया उतारनेके लिए नया चढ़ाते रहे। लीडर प्रेससे लौटकर एक मुश्त किराएकी बड़ी रकम अदाकी। 'गीतिका', 'अनामिका', 'निरुपमा', पुस्तकें लीडर प्रेससे प्रकाशित हुई।

इसके बाद कुछ दिनके लिए वे फिर लखनऊमें आकर रहने लगे। नारियलवाली गलीसे थोड़ा आगे चलकर भूसामण्डी हाथीखाना में उन्होंने मकान लिया। यह पहले कांग्रेसी-मंत्रि मंडल का जमाना था। इन्हीं दिनों पं० श्रीनारायण चतुर्वेदीसे भी उनका परिचय हुआ। चतुर्वेदीजी प्राचीन साहित्यके प्रेमी हैं। छायावादके प्रति उनकी वैसी सहानुभूति नहीं है। आर्यनगरमें उनके घरपर अक्सर साहित्यिक विवाद हुआ करता था। भूसामण्डीके मकानमें रहते हुए निरालाजीने इंडियन प्रेसके लिए बंकिम बाबूके उपन्यासोंके अनुवादका काम लिया। दो-तीन उपन्यास अनुवाद करनेके बाद मालूम हुआ कि इंडियन प्रेसके व्यवस्थापक अनुवादके शब्दोंके हिसाबसे इन्हें काफी रुपया दे चुके हैं। निरालाजीके अनुसार यह हिसाब किताब गलत था और उन्होंने काम बन्द कर दिया।

महायुद्ध छिड़ चुका था जब वे कवीं गये। वहाँ पर बुरी तरह बीमार पड़ गए और उनकी वास्तविक स्थितिसे उनके अधिकांश मित्र अपरिचित ही रहे। इसी बीमारीसे करीब ७० पौण्ड वजन कम हो गया। उस बार स्वास्थ्य गिरनेसे वे फिर अच्छी तरह सँभल नहीं पाए। दारागंज,

प्रयागमें उन्होंने एक छोटा-सा मकान लिया जिसके एक भागमें उसके मकान-मालिक भी रहते हैं। इसकी छत इतनी नीची है कि आदमी उसे हाथ उठाकर छू सकता है। निरालाजीके लिए यह मकान कठघरे जैसा है। इसीमें 'चोटीकी पकड़', 'कालेकारनामे', 'नए पत्ते', 'बेला,' आदि पुस्तकें उन्होंने लिखीं। प्रातःकाल गंगा नहाते थे और स्वयं भोजन पकाते थे। बर्तन धोना, घर साफ करना—जब भी वे उसे साफ करते हों—उनका अपना काम था। इसमें रहते हुए उनकी दशा बराबर चिन्ताजनक रही है। श्रीमती महादेवी वर्माने साहित्यकार संसद के द्वारा और वैसे भी उनकी देख-रेख करनेका प्रयत्न किया। कुछ लोगों की धारणा है कि निरालाजी को जो कुछ रुपया मिलता है, वे सब खा-पी डालते हैं। इसके विपरीत सत्य यह है कि अधिकांश वे दान कर देते हैं। कहीं कोई कवि-सम्मेलन हुआ, बुलाया आनेपर बड़े ही व्यावसायिक ढंग से सौदा पटाया, पेशगी रुपया मँगाकर कपड़े-लत्ते बनवाए, जिसमें दरी, चादर, रज़ाई, तकिया, जूते वगैरह सभी कुछ शामिल हैं। दूसरे कवि-सम्मेलन तक उनके पास जूते छोड़कर शायद और कुछ भी नहीं रह जाता। इसीलिए फिर पेशगी माँगने और पहलेसे अच्छा सौदा पटानेकी जरूरत पड़ती है। जिस तरह जवानी में वह बच्चोंके लिए खर्च भेजते थे, उसी तरह अब भी गृहस्थीकी ओर उनका बराबर ध्यान रहता है। पहली पुत्रवधूका देहान्त होनेपर राम-कृष्णजीका उन्होंने दूसरा विवाह किया और इन सब कामोंमें काफी रुपया खर्च किया। अब भी यथा-सम्भव वह उनकी सहायता करते हैं।

२

साहित्य की पृष्ठभूमि

निरालाजी उन थोड़ेसे साहित्यिकोंमेंसे हैं, जो अपनी जीविकाके लिए साहित्यपर ही निर्भर रहते हैं। परन्तु जो साहित्य वे लिखते हैं या लिख सकते हैं, उससे जीविका चल नही सकती या उतने बड़े पैमाने पर उसकी सृष्टि नहीं हो सकती। इसलिए अनुवाद वगैरह के कामोंमें उन्हें बराबर अपनी शक्ति नष्ट करनी पड़ती है। नए लेखकके लिए अर्थकी समस्या ही एकमात्र समस्या नही है। साहित्यिक दुनियामें प्रवेश पाने के लिए भी उसे भगीरथ प्रयत्न करना पड़ता है। जो लोग पहलेसे जगह घेरे हुए हैं, वे नए आदमीको शककी निगाहसे देखते हैं—खासतौरसे उस आदमीको जो उनका टाट उलटनेपर तुला हुआ हो। नए लेखकोको यह जानकर शायद कुछ सतोष हो कि पत्रिकाओंके विद्वान् सम्पादक उन्हींकी रचनाएँ वापस नही करते, 'जुही की कली' भी वापस की गई थी। सन '३५में भी एक प्रतिष्ठित पत्रिकाने श्री सुमित्रानन्दन पन्तके ऊपर निरालाजी का एक बड़ा सुन्दर लेख वापस कर दिया था। वह लेख सदाके लिए नष्ट हो गया। इसी तरह प० महावीरप्रसाद द्विवेदीपर भी उनका एक सस्मरणात्मक लेख विनाशके गर्भमें विलीन हो गया। न जाने कितने लेख और कितनी रचनाएँ प्राथमिक कालमें नष्ट हुई होंगी। संपादको द्वारा वापस की हुई रचनाओंका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है :—

> "लौटी रचना लेकर उदास,
> ताकता हुआ मैं दिशाकाश.
> बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर,
> व्यतीत करता था गुन गुन कर,

सम्पादकके गुण; यथाभ्यास,
पासकी नोचता हुआ घास,
अज्ञात फेंकता इधर-उधर,
भाव की चढी पूजा उन पर।"

ज्ञान-मण्डल काशीमें काम दिलानेके लिए सन् '२१में आचार्य द्विवेदीजीने कोशिश की थी। इसलिए निरालाजीके साहित्यिक जीवनका आरम्भ सन् '२०से मानना असगत न होगा। सन् '१९ की 'सरस्वती' में बँगला और हिन्दी-व्याकरणपर उनका एक तुलनात्मक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका गद्य वैसा ही पुष्ट और मार्जित है जैसा 'मतवाला' कालका। इसमें सन्देह नही कि अनुकूल परिस्थिति होनेपर वे सन् '१९, '२० में ही प्रकाशमें आ गए होते। परन्तु इसके लिए उन्हें चार साल तक राह देखनी पडी। सन् '२३ मे 'मतवाला' निकला और उसमें अपने और दूसरे नामो से वह कविता, कहानी, लेख, आलोचना आदि सभी कुछ लिखने लगे। 'निराला' नामसे कविताएँ तो लिखते ही थे, श्रीमान् गरगजसिंह वर्मा 'साहित्य-शार्दूल' के नामसे 'चाबुक' लिखते रहे जिसके कुछ लेख इसी नामके सग्रहमें आ चुके हैं। 'जनाब अली' के नामसे एक लम्बी कहानी लिखी थी, जिसकी बोलचालकी भाषा और यथार्थवादी वर्णन उनके बादके रेखाचित्रोंकी बानगी देते हैं। एक कहानी जिसका नाम 'क्या देखा' है, 'सुकुलकी बीवी' नामके सग्रहमें आ गई है।

'मतवाला' के बाद उनकी रचनाएँ जहाँ-तहाँ छपने लगी। कवि सम्मेलनोमें सभापतिके आसनकी शोभा बढ़ानेके योग्य भी वे समझे जाने लगे। 'सुधा', 'माधुरी' वगैरहसे उन्हें पारिश्रमिक मिलने लगा। फिरभी मौलिक पुस्तकें नही निकल रही थी। कलकत्तेसे 'अनामिका' नामसे उनका पहला कविता-सग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें 'मतवाला'—कालकी कुछ ही रचनाएँ आई हैं। ठीक तरह उनका पहला कविता-संग्रह सन् '२९ में प्रकाशित हुआ। इस तरह सन् '१९ से '२९ तक उन्हें पुस्तक-प्रकाशनके लिए कुल मिलाकर दस साल तक रुकना पड़ा। साहित्य-सेवाका

कार्य अव्यवस्थित रूपसे होनेके कारण बहुत सी रचनाएँ अधूरी रह जाती थी या सिर्फ विज्ञापनके प्रकाशमें एक बार चमक कर रह जाती थी। 'चमेली' का कुछ भाग 'रूपाभ' में निकला था, लेकिन आठ सालके बाद वह अभी तक पूरा नही हुआ। 'निरुपमा' के दो अध्याय 'सुधा' मे निकले थे, लेकिन वह पूरी हुई इलाहाबादमें 'सुधा' छोड़नेके कई साल बाद। एक उपन्यास 'उच्छृङ्खल' नामसे 'सुधा' में विज्ञापित हुआ था, लेकिन उसकी कल्पना उनके मनमें ही रही। एक बार उनसे इतना जरूर सुना था कि इसका हीरो प्रचलित नायक-परम्पराके विपरीत बहुत-से कार्य करेगा, जैसे यदि साधारण नायक नायिकाकी मुख छवि देखेगा तो उच्छृंखल का ध्यान हमेशा उसकी चोटी पर जायगा। इस विचार से तो नहीं, लेकिन नामसे फायदा उठाकर श्री नरोत्तमप्रसाद नागरने इलाहाबादसे उच्छृङ्खल नामका एक पत्र निकाला था।

किसी जमानेमें 'उषा' नाटिकाके लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की गई थी। निरालाजी अनिरुद्ध बनने वाले थे और उषाके लिए श्री सुमित्रानन्दन पन्त पर नजर थी। पन्तजी के पार्ट करनेमें संदेह होनेके कारण बडी बडी मूँछोवाले 'पढीस' जी भी उम्मीदवारोंमें थे। उषाके सफल अभिनयके लिए वे अपनी मूछोका बलिदान करनेके लिए तैयार थे। कुँवर चद्रप्रकाश सिंह, श्री रामरतन भटनागर 'हसरत' आदि लेखक सैनिक, द्वारपाल आदिके पार्टसे ही संतुष्ट थे। लेकिन इस उषा नाटिकाकी रूपरेखा 'सुधा' के विज्ञापनके पीले पन्नोमें ही रह गई।

उनकी साहित्य-साधनाके मुख्यत तीन केन्द्र रहे है—कलकत्ता, लखनऊ और गढाकोला। आगे चलकर प्रयाग भी। अपने वातावरणके प्रति उनकी सज्ञा सदैव जाग्रत रहती है। वे उस कोटिके कवि नही हैं जो अपनेमें खोजायें और वातावरणकी उनपर प्रतिक्रिया न हो। बंगालको वह अपनी जन्मभूमि समझते है। रोमाटिक कविता और बंगाल उनके लिए पर्यायवाची शब्द है। उनका कहना है—"बंगाल मेरी जन्मभूमि है, इसलिए मुझे बहुत प्रेम है। सिटी लाइफ का जो उपभोग और आनन्द

मुझे कलकत्तामें मिला, वह लखनऊमें नहीं। लेकिन लखनऊके १४ सालमें मेरा साहित्य-सर्जन कलकत्ताके 'परिमल' से अधिक ही महत्त्व रखता है। पंडित दुलारेलाल भार्गवकी कृपासे लखनऊमें मुझे बहुत तरहकी सहूलियतें रहीं, लेकिन कलकत्ताका मुक्त, निष्कपट वातावरण लखनऊमें नहीं मिला। कुछ साहित्यिक मित्र.....................लखनऊसे ही मुझे अपना प्रकाश दिखा सके।" बंगालकी जलवायु, वहांके नदी-तालाब, उन्हें बहुत पसंद हैं। प्रकृतिके अलावा शिक्षा और अध्ययनकी दृष्टिसे भी कलकत्तेका वातावरण विचारोत्तेजक है। बंगला भाषा और साहित्यसे प्रेम होने पर भी हिन्दीपर आक्षेप होते, तो वे बंगाली विद्वानों से लोहा लेते। विद्यासागर कॉलेजमें कविता और भाषण दोनोंसे ही उन्होंने अपनी भाषा और साहित्यकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की। अपना अभ्युदय-काल सभीको सुनहरा लगता है। कलकत्तेमें निरालाजीने अपना प्रथम साहित्यिक उत्थान देखा; वहीं पर यशके प्रकाशमें उनकी आंखें खुलीं। कलकत्ता जवानीकी उच्छृङ्खलताओंकी क्रीड़ा-भूमि रहा। द्वार खोलने वाली अरुण-पंख तरुण किरणकी स्मृति वहींकी है। इसके विपरीत गढ़ाकोला और लखनऊ उनके संघर्षकी भूमि रहे हैं। लखनऊ और कलकत्तेकी तुलना करते हुए वे कहते हैं :—

"स्वास्थ्य लखनऊमें बहुत अच्छा हुआ। परन्तु मैं स्वास्थ्यका दुर्बल कभी भी नहीं था। लखनऊका जो प्रभाव मुझपर पड़ा है, वह मेरे साहित्यके लिए बहुत बुरा नहीं, पर बहुत अच्छा भी नहीं। क्योंकि मेरी पहलेकी भाषा देखनेपर आसानीसे समझमें आ जायगा कि बैसवाड़ी—मेरे घरकी बोली ही—मुझपर गालिब थी। लखनऊके वातावरण से बैसवाड़ेका वातावरण मुझे बहुत पसंद है, कविताके लिए कलकत्तेका। लखनऊ में मुझे एक फायदा हुआ। कलकत्तेकी मेरी चढ़ी आंख लखनऊमें झुक गई। मैं समतलपर आ गया। यों एकान्तप्रिय मैं कलकत्तामें भी था, लखनऊ में मुझे आपने देखा ही है।

"बंगालमें पैदा होनेके कारण प्रचुर जलाशयता मुझे बहुत पसंद है।

जा टिकते हैं और पैर जमाकर लड़नेके लिए गाँवके जीवनसे नया उत्साह, अनुभव और नयी प्रेरणा पाते हैं।

उनकी इधरकी रचनाओंका संबंध इलाहाबादसे रहा है। काव्य में उनके नए प्रयोग यहीं हुए हैं। यहाँका साहित्यिक वायुमण्डल उनके अधिक अनुकूल नहीं रहा। यहाँ पर उन्होंने साहित्यमें एक नयी दरबारी परम्पराके दर्शन किए जहाँ बीसवीं सदीके साहित्यिक नवाब अपने मुसाहबोंको इकट्ठा करके अपनी साहित्यिक अभिरुचिका परिचय दिया करते हैं। इन दरबारोंमें सताए हुए लेखक, लेखक बननेके उम्मीदवार, ठग-प्रकाशक और उनके दलाल मान-सम्मानकी भावना जूतोंके साथ बाहर उतारकर अन्नदाता नवाबोंके पाँव पलोटते हैं। ये साहित्य-प्रभु हिन्दीके सम्पूर्ण नवीन साहित्यिक विकास को अपनी हिस्टीरियाकी हँसीमें उड़ा देना चाहते हैं। समाजके नैतिक कर्णधार, अश्लीलताके नाममात्रसे मूर्छा खानेवाले साहित्यकार, नायिका-भेदकी शुद्ध साहित्यिक परम्पराके उत्तराधिकारी ऐसे गहरे पैठते हैं कि रसराज कान-मुँह-नाकसे उनके प्राणों तक पहुँच जाता है। निरालाजीके स्वास्थ्यपर इस वातावरणका सुन्दर प्रभाव नहीं पड़ा।

इसके सिवा युद्ध छिड़नेके बाद दिनपर दिन आर्थिक संकट बढ़ता ही गया। जीवनकी छोटी-मोटी समस्याएँ सुलझनेके बदले और जटिल होती गईं। इतने छोटे मकानमें जिसे दरबा कह सकते हैं, इसके पहले उन्हें शायद ही कभी रहना पड़ा हो। इसके साथ कर्वोंमें भयानक बीमारी और उसके बाद भी स्वास्थ्य का न सुधरना उनकी साहित्यिक प्रगतिमें बाधक रहे हैं। पिछले दो-तीन वर्षोंमें उन पर और दूसरे छायावादी कवियोंपर भद्दे ढंग से आक्षेप किए गए। यह सब होते हुए भी युद्धकाल और उसके बाद जितनी संख्यामें और जितनी अच्छी रचनाएँ वे कर सकें हैं, उतनी और उस कोटिकी रचनाएं अन्य कवियोंमें दुर्लभ है। हो सकता है कि अपने समाज और साहित्यकी माँगको देखते हुए ये रचनाएँ काफ़ी न हों।

३

एक आकर्षक व्यक्तित्व

इस युगके सभी साहित्य प्रेमी जानते हैं कि निरालाका व्यक्तित्व उनके साहित्यसे कम रोचक और आकर्षक नहीं है। व्यक्तित्वकी सूक्ष्म तलवारके लिए उन्हें म्यान भी ऐसा अच्छा मिला है कि बहुतसे लोग उसी को देखते रह जाते हैं। युक्तप्रांतके निवासियोंमें वह असाधारण रूपसे लम्बे हैं। गोमतीके किनारे फुटबालका मैच खतम होने पर भीड़में उन्हें ढूँढनेमें दिक्कत न होती थी, उस विशाल मुण्ड-समुदायमें उनका सिर ऊपर उठा हुआ दिखाई देता था। कोई भी फील्डके किसी भी कोने से देख सकता था कि कविवर मस्त-गयन्द-गतिसे इस प्रवाहमें बहते-ठेलते हुए बढ़ रहे हैं। दूसरे प्रांतके लोगोंको देखते हुएभी वे यू० पी० की नाक रखनेके लिए काफी हैं। बहुत कम पंजाबी और पठान उनके डीलडौलका मुकाबिला कर सकते हैं। लखनऊके रायल सिनमामें बैठे हुए एक पठानको यह यकीन दिलाना मुश्किल था कि निराला इसी मुल्क का है और पश्तो नहीं बोल सकता।

लड़कपनमें उन्हें कुश्ती-कसरतका शौक था। इस बातको उनको जानने पहचाननेवाले ही नहीं, उनके साहित्यसे थोड़ा-बहुत परिचय रखने वाले लोग भी जानते हैं। डलमऊमें दूध-बादाम पीकर उन सस्ते सतयुग के दिनोंमें भी उन्होंने दो सौ रुपएका बिल साहुजीसे गवहीके नेगमें वसूल किया। महिषादल और गढ़कोलामें कलकतिया धोती और पम्प शूके बावजूद वह दंगलोंमें हिस्सा लेते रहे। हिन्दी छन्दोंकी अपेक्षा उन्हें कुश्तीके दांव कहीं ज्यादा याद हैं। धोबीपाट, कलाजंग, सखी,

बहल्ली, घिस्सा, कुली, वगैरह-वगैरह रियाजके साथ बरजबान हैं । थियरी और प्रैक्टिस दोनोंमें ही वह फर्स्ट क्लास पा चुके हैं । अगर कोई श्रद्धालु श्रोता मिल गया तो गामा और रवीन्द्रनाथकी कला पर घंटों तक उनकी तुलनात्मक विवेचना चला करती है । उनसे कुश्तीकी चर्चा करना खतरेसे खाली भी नहीं है । थियरीके साथ वह जब प्रैक्टिकल समझाने लगते हैं, तब विद्यार्थी सावधान न हुआ तो पक्के फर्शपर उसे ऐसी शिक्षा मिल सकती है कि वह उसे जिन्दगी भर याद रक्खे ।

मैंने उन्हें कुश्ती लड़ते कभी नहीं देखा । सन् '३०, '३१ में खोपड़ घुटाए हुए लखनऊके सब्ज़बागसे, जहाँ आजकल सुन्दर बागकी भव्य इमारतें हैं, होकर लाल कुएँकी तरफ कुश्ती लड़ने जाया करते थे । त मेरा साहित्यसे बहुत थोड़ा सबंध था और साहित्यकारोंसे तो बिल्कुल ह नहीं । इसलिए मैंने तब यह न सोचा था कि इनके साथ जाकर कुश्त देखना आगे काम देगा । उनसे मेरी पहली मुलाकात सन् '३४ में हुई श्रीराम रोडपर मेरे नामाराशी श्री रामविलास पाण्डेयकी पुस्तकोंक दूकान थी । लखनऊके साहित्यिकोंका यह अड्डा भी था । निरालाज अक्सर यहाँ तमाखू खाने आया करते थे । मेरे पास 'परिमल' नहीं था यद्यपि कविताएँ पढ़ चुका था । उन्होंने मेरे हाथ से पुस्तक लेकर पन्न पलटते हुए कहा—"शायद ये बादकी रचनाएँ आपको पसंद न हों ।' उनका लक्ष्य मुक्त छन्दकी रचनाओंकी ओर था । मैंने कहा—"इन्हींकं वजहसे तो मैं किताब खरीद रहा हूँ । वैसे तो कविताएँ पढ़ चुका हूँ ।' फिर उन्होंने अपने उपन्यासोंके बारेमें पूछा । मैंने कहा—"मैंने उन्हें पढ़ा है लेकिन पढ़कर खुशी नहीं हुई । ऐसा लगता है, कोई नौसिखिय लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभव लिख रहा है ।" मैंने सिर्फ 'अप्सरा' उप न्यास पढ़ा था, उसीके आधार पर यह राय दी थी । बात उनको उतन ही बुरी लगी जितनी मुक्त छन्दके बारेमें मेरी राय अच्छी लगी होगी फिर भी उन्होंने ज़ाहिर नहीं होने दिया । तमाखूकी पीक थूकनेके बहाने अपना भाव छिपा लिया । मुझसे वादा किया कि अपने सब उपन्यास

खरीदकर मुझे पढ़ने को देंगे। वैसा ही उन्होंने किया भी। प्रकाशकसे मिलनेवाली सभी प्रतियाँ मित्रों को भेंट हो चुकी थी। मैं सोचता था, इनके बराबर किताबें लिखनेपर कोई भी आदमी इन्हें अलमारीमें सजाकर अपने बड़प्पनके खयाल से खुश होता। उनका घर हिन्दी, बँगलाकी किताबों और अखबारोंसे भले ही भरा-पूरा हो, उसमें उनकी अपनी किताबें नहीं थीं। वे अपनी पुस्तकें इतनी उदारता से बाँटते हैं कि घरमें कोई प्रति रह नहीं सकती। जब मैं उनके साथ रहता था, वे मुझे भेंटकी हुई पुस्तकें भी दूसरोंको भेंट कर दिया करते थे। कभी-कभी मेरे लिए नई प्रतियाँ खरीद लाते थे, कभी भूल जाते थे। वैसे उन्हें अपनी पुस्तकोंकी संख्या ही नहीं, पृष्ठ-संख्या तकका ध्यान रहता है। गुणात्मक सृजनसे ही संतोष नहीं होता, न उसके परिमाणका भी ध्यान रखते हैं।

'अप्सरा' को मैंने फिर पढ़ा। दो लम्बे कागजोंपर मैंने संक्षेपमें अपनी आलोचना लिखी। सुननेपर कई बातें उन्होंने स्वीकार कीं, कईका प्रतिवाद किया। आगे चलकर उनकी प्रवृत्तिका जो परिचय मिला, उसे देखते हुए उनके अत्यंत धीर और शिष्ट व्यवहारपर आश्चर्य होता है। उन दिनों 'देशदूत' के वर्तमान सम्पादक श्री ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' 'अभ्युदय' में निरालाजीकी कविता और उन के व्यक्तित्व पर बड़े भद्दे ढंगसे आक्षेप कर रहे थे। वे सब लेख मैंने पढ़े और हिन्दी के वाद विवादकी परम्परासे परिचय प्राप्त किया। उन दिनों ऐसा मालूम होता था कि यदि 'निर्मल जी' लखनऊ आ गए तो बीच अमीनाबादमें वह दंगल देखनेको मिलेगा कि अखाड़ा और सादिक सभी की कुश्तियाँ हेच मालूम होंगी। किसीके जरिये इलाहाबाद यह संदेश भी पहुँचाया कि उस शुभ घड़ीके लिए उन्होंने चमरौधा जूता भिगोकर रख छोड़ा है। 'निर्मल' जीने अपने लेखमें इस सूचनाको स्वीकार किया औ र रा बातपर क्षोभ प्रकट किया कि निगे पाँव चलनेके बाद कविवरको चमरौधा भी नसीब हुआ। *कुछ दिन बाद निर्मलजी लखनऊ पधारे। कालेजसे लौटनेपर देखा कि* केला और संतरोंसे उनका सत्कार किया जा रहा है।

उन दिनो निरालाजीका स्वास्थ्य काफ़ी अच्छा था। पैरमें सायटिका की शिकायत करनेपर भी काफी घूम लेते थे। इस तरह घूमते हुए या पार्कमें बैठकर वह सैकड़ो कवितायें सुना डालते थे। रवीन्द्रनाथकी कवितायें तो उन्हें ढेरो याद थी। छोटी कवितायें ही नही, 'सूरदासेर प्रार्थना' जैसी रचनाएँ सुनाते हुए भी शायद ही कही एकाध कड़ी भूलते हों। पुस्तकसे कविता पढ़ते हुए वह पूर्ण तल्लीन हो जाते थे, भाव-पूर्ण स्थलो पर उन्हें कण्ठावरोध हो आता था और सारा शरीर पत्ते जैसा काँप उठता था।

अवधके किसान कहा करते हैं कि खोदनेसे पानी निकलता है और घोखनेसे विद्या आती है। निरालाजी अँग्रेज़ी ही नही, संस्कृत, बँगला, हिन्दी और उर्दूकी जिन रचनाओंको घोखना शुरू करते हैं, उनसे पानी निकालकर ही छोड़ते हैं। 'कुमारसम्भव' पढ़ते थे तो श्लोकोको कापीमें उतार लेते थे। कोई भी संस्कृत जाननेवाला मित्र या साहित्य-प्रेमी मिलता, तो उन्हींकी चर्चा करते। इसी तरह 'मेघदूत' का भी उन्होंने अध्ययन किया था। आगे चलकर उर्दू गजलोंकी भी उन्होने यही गति की।

साहित्यके साथ उन्हें संगीतसे भी प्रेम है। कुछ पक्के गाने उन्होने लड़कपनमें सीखे थे जो अभी तक उनके साथ है। 'गीतिका' की भूमिका में उन्होने प्राचीन संगीत-पद्धतिका तीव्र विरोध किया है परन्तु कुछ अपने ही गीत जैसे "नयनोके डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली" वह पुरानी तर्जपर ही गाते हैं। उनका विशेष विरोध भातखंडे पद्धतिसे है। श्रीराम-कृष्ण त्रिपाठीकी शिक्षा इसी पद्धतिके अनुसार मैरिस म्यूज़िक कालेज में हुई है। उनको भर्ती हुए दो ही साल हुए थे, कि गुरुभक्ति अधिक उद्दंड हो उठी। अवसर इस बात पर बहस होती कि चण्डीदास फिल्मके गाने अच्छे हैं या इनके स्कूलमें सिखाई जानेवाली बन्दिशें। निरालाजी कहते—"तजके सब संसार" के लोचकी ज़रा नकल करके तो दिखाओ। रामकृष्णजी नकल तो कर लेते लेकिन लोच - न आ पाता। विजयी पिताकी हँसीसे खीझकर वह चुनौती देते—ज़रा कोमल निपाद या कड़ी

मध्यम तो लगाकर दिखाइये । लेकिन कवि इस झांसेमें कभी न आन ।

महादेव बाबूसे उन्होंने उर्दूकी काफी गजलें सुनी थीं । तभीसे उन्हें गजलें गानेका भी शौक है । बंगालमें रहकर बंगला गीत गाना भी उनके लिए स्वाभाविक था। रवीन्द्रनाथकी 'जामिनी ना जेते', 'सकल गरब दूरि करि दिबो', 'ग्रहा जागि पोहाल विभावरी', आदि गीत उन्हें बहुत प्रिय हैं । यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनकी अदायगी टैगोर स्कूल की है, परन्तु अपने ढंगसे वह उन्हें गाते हैं और वह बहुत सुन्दर ढंग होता है । यह संगीत-चर्चा तब और भी सुन्दर होती है जब उनके हाथमें हारमोनियम आ जाता है। कभी-कभी गाते-गाते वह इतने तन्मय हो जाते हैं कि उँगलियाँ द्रुत वेगसे ही नहीं चलाते बल्कि उनका प्रहार इतना सबल हो जाता है मानो वह तबले के बोल भी हारमोनियमसे ही निकालकर मानेंगे । उस समय उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि इस क्रियासे हारमोनियमकी क्या दशा होगी । इससे भी ज्यादा मग्न वह ताल देने में होते हैं । छन्द शास्त्रमें नित्य नए प्रयोग करनेवाले कविको तालसे भी दिलचस्पी हो, इसमें आश्चर्य ही क्या । वह भावावेशमें उठ-उठ बैठते हैं, और सम आनेपर गायक के इतने नजदीक हाथ लेजाकर चुटकी बजाते हैं कि अपरिचित हो तो बेचारा गाना ही भूल जाय । मुख-मुद्रा ऐसी हो जाती है कि श्रोताओंके लिए धैर्य धारण करना कठिन हो जाता है । मेरे धैर्यकी सबसे कठिन परीक्षा उस बार हुई जब श्री भगवतीचरण वर्मा 'हम दीवानोंकी क्या हस्ती' सुना रहे थे । निरालाजी भी एकदम मस्त होकर पैरको ढोलक बनाकर ताल दे रहे थे । पहले-पहल वर्माजीके मुँहसे कविता सुननेका सौभाग्य मिला था । मैंने कमरेसे बाहर निकल जानेमें ही खैर समझी ।

निरालाजीके गानकी एक विशेषता यह है कि उसमें शब्दोंके स्वर-सौंदर्यको पूर्ण प्रसार मिलता है । विशेष रूपसे उनके अपने नए गीतोंमें इस तरहका स्वर-सौंदर्य प्रचुर मात्रामें है । भातखंडे स्कूलके गायक उनके गीतोंको स्वर-बद्ध करते हुए बहुधा इस सौंदर्यकी रक्षा नहीं कर पाते । उनके गीतोंमें ऐसा स्वाभाविक स्वर-प्रवाह है कि वह रूढिवादी

गायाक बन्धन स्वीकार नही करता।

गानकी अपेक्षा लिखनेमें उनकी तल्लीनता और भी बढ़ जाती है। वह जो कुछ लिखते है, बड़े ही मानसिक और शारीरिक परिश्रमके साथ, भावोंके समान अक्षरोंको भी सँवारते हुए। किसीको पोस्टकार्ड लिखना होता है तो भावोंको शब्द-रूप देते-देते तीन-चार कार्ड बिगाड़ देना कोई असाधारण बात नही है। कविता लिखनेका परिश्रम उनके मुँहपर साफ झलक उठता है। नारियलवाली गलीमें 'तुलसीदास' लिखते हुए मैंने उन्हें देखा है। आठ-नौ बजे तक हीवेट रोडके पैरागॉन रेस्टरांसे चाय पीकर वह लौट आते थे। नीचेके कमरेमें तीन-चार घंटो तक वह 'मोगल दल बल के जलदयान' से युद्ध किया करते थे। बारह-एक बजे अपने प्रयासके फलस्वरूप एक-दो पन्ने लिए हुए जब ऊपर आते थे, तब मालूम होता था, कोई मजदूर छः घटे भट्ठीके पास तपकर बाहर आया है। उनके चेहरेपर एक तनाव सा होता था और आँखोंमें थकनके साथ सतोष की झलक भी। साहित्य-रचना उनके लिए सचमुच एक तपस्या है और नरेन्द्र शर्माकी ये पंक्तियाँ उनपर भी लागू होती है:—

वह हिन्दी का सेवक था,
खून सुखाकर लिखता था।

उनपर दुरूहताका दोष लगाया जाता है, लेकिन इसका कारण जल्दबाजी नही है। खाना पकाने, सोने और लिखने में वह कभी जल्दी नही करते। रचनाको अलकृत करनेकी चाह और व्यजनामें वक्रता लानेकी उत्कठा कभी-कभी उन्हें दुरूह बना देती है। पद्य ही नहीं, गद्यकी भी पाण्डुलिपि तैयार करनेमें वह ढेर-के-ढेर पन्ने खराब कर डालते हैं। गगा-पुस्तक-मालासे काम छोड़कर जब वह इलाहाबाद आ रहे थे, तब लिखे अधलिखे, पूरे-अधूरे, तिहाई-चौथाई सैकडो पन्ने उनके कमरेमें बिखरे हुए थे। इस शकासे कि इन पन्नोंका उपयोग उनकी कलाका प्राथमिक अपरिपक्व रूप दिखानेके लिए न किया जाय, उन्होने उन सबको नष्ट कर दिया।

रोमांटिक कवि अपनी एकान्त-प्रियताके लिए प्रसिद्ध हैं। निरालाजी स्वयं अकेले घूमने और चिन्तनमें डूबे रहनेके काफी आदी हैं। फिर भी संगत, सभा-समाजसे जितना प्रेम उन्हें है, उतना शायद ही किसी दूसरे कविको हो। अधिकतर शहरमें मकान लेकर वह अकेले ही रहते रहे हैं। लेकिन चाय पीने और साहित्य चर्चा करनेके लिए वह दूर-दूरसे मित्रोंको पकड़ लाते थे।

पाक-शास्त्रमें वह अपनेको साहित्य-शास्त्रके समान ही आचार्य मानते हैं। दस-पाँच मित्रोंको इकट्ठा करके खिलानेमें उन्हें उतनाही आनन्द आता है, जितना उन्हें कविता सुनानेमें। ऐसा भी होता है कि भूनते हुए खाद्य-पदार्थ जल गया तो सोंधा कहकर उसे गले उतारते हैं। भोजन बहुत अच्छा बननेपर मित्रगण तारीफ करते हुए इतना उड़ा जाते हैं कि कविके पल्ले थोड़ी कुछ थोड़ा सा पड़ जाता है।

आम और खरबूजाकी उन्हें खास पहचान है। सफेदेकी ढेरीके आसपास यह ऐसे मँडराते हैं, जैसे कमल पर भौंरा—खासतौरसे तब, जब गाँठमें पैसे कम हों। एक बार अमीनाबादमें मलिककी दूकानके सामने एक ढेरीवालेको दिखाकर कहा, "इससे जाकर पूछो कि इतने में न देगा।" मैंने पूछा—"आप क्यों नहीं जाते?" उन्होंने जवाब दिया—"मैं उससे कई बार कह चुका हूँ और अब तक वह मुझे पहचान गया है।" वह ढेरी हम लोगोंको वदी न थी।

निरालाजीके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि मिलने-बोलनेके लिए बड़े साहित्यकार ही हों। स्कूल कालेज जाने वाले लड़कोंसे भी वह बड़े स्नेहसे मिलते हैं। वास्तवमें वह बड़े-छोटेका खयाल बहुत कम करते हैं। गाँव के किसानों और चमारोंसे वह बड़े अपनपौसे मिलते हैं। संस्कृतके पुराने पण्डित उन्हें अपने घरका ही समझते हैं जब तक कि अभ्यासवश वह कभी-कभी अँग्रेजी नहीं बोल जाते। साहित्यसे अनभिज्ञ लोगों से मिलते हुए वह बहुधा इस बातका ध्यान रखते हैं कि वह उनके स्तर से ऊँचे न उठ जायँ। उनके हर काममें वह बड़े उत्साहसे शामिल होते

हैं। एक बार के० सी० डे० लेन, सुन्दर बाग, लखनऊ में, मछलियों में मगरमच्छकी तरह, छोटे लडकोंमें वह कबड्डीभी खेले थे।

कविता-पाठ और भाषणमें भी कुछ विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। दुरूहता, अस्पष्टता आदिके आक्षेप होनेपर भी वह अपनी कविता लेकर जनताके सामने आनेकी ताब रखते हैं। मुक्त छन्दका विरोध होनेपर न जाने कितनी सभाओंमें उसे सुनाकर उन्होंने विरोध शांत किया है। मुक्त छन्दकी रचनाओंकी नाटकीयता, स्वरका उत्थान-पतन और उसके सहज-प्रवाह द्वारा भाव-प्रदर्शन करना उनके पाठकी विशेषताएँ हैं। चाहे 'जुहीकी कली' के समान सौंदर्य-प्रधान रचना हो, चाहे 'समरमें अमर कर प्राण' जैसी वीररसपूर्ण कविता हो, वह अपने उदात्त और मन्द्र स्वरोंसे भाव-सौंदर्यको समान रूपसे प्रकट कर सकते हैं। गायनके समान कविता-पाठमें भी उनकी सफलताका कारण स्वर का सहज रूपमें पूर्ण प्रसार है।

"समरमें अमर कर प्राण
गान गाये महा सिन्धु से,"

इन पंक्तियोंको पढते हुए 'प्राण' और 'गान' के आवर्तको वे स्वर खींचकर प्रकट करते हैं। उनकी कविता अनुप्रास और शब्द-सौन्दर्य से पूर्ण होती है। उसका आनन्द पढनेपर ही आता है, मनमें गुनगुनाने से अशरीरी भाव-सौंदर्य ही पल्ले पडता है। जब वह मंचपर "कम्पित जगम, नीड विहगम, ऐ न व्यथा पाने वाले" कहते हुए बादलको सम्बोधित करते हैं तो उनका स्वर ही यात्रिका भाव-चित्र बन जाता है।

छन्द-बद्ध रचनाओंमें भी स्वर-प्रवाहमें यथेष्ठ वैचित्र्य रहता है। वह तुकान्त छन्दोंकी पंक्तियोंकी सीमा लाघते हुए भाषाकी स्वाभाविक यति-गतिके अनुसार पढते हैं। उदाहरणके लिए 'सरोज-स्मृति' का पाठ करते हुए जहाँ विराम लगा होता है, वहीं रुकते हैं, चाहे विराम पंक्तिके बीचमें हो चाहे अन्तमें। 'रामकी शक्ति-पूजा'—जैसी रचनामें दीर्घ पंक्तियाँ लहरोंकी तरह पछाड़ खाती हुई गिरती हैं। उञ्चास पवनों

मा चलना, समुद्रकी लहरोका आकाश छूना, अन्धकारका जलकी तरह बहना, रावण का अट्टहास, राक्षसो और वानरोके पद-चापसे पृथ्वीका हिलना, आदि आदि क्रियाएँ पाठ द्वारा अच्छी तरह व्यक्त होती हैं। 'रामकी शक्ति पूजा' उनकी सबसे ओजपूर्ण रचना है। और वैसी ही पूर्ण तल्लीनतासे वह उसे सुनाते भी हैं। मचपर खडे हुए ऊँचा हाथ उठाकर "चमकती दूर हो ताराएँ ज्यो कहो पार" का भाव वही प्रदर्शित कर सकते हैं। वैसे ही "हो स्वसित पवन उच्छ्वास पिता पक्षसे तुमुल" का भाव दर्शाते हुए उनके केश-गुच्छ झटका खाती हुई गर्दनके आस-पास असाधारण रूपसे चचल हो उठते हैं। 'तुलसीदास' मे दो छोटी पक्तियोके बाद एक दीर्घ पक्ति आती है और इस तरहके दो टुकडोसे एक बन्द बनता है। इसके प्रवाहमे अधिक समरसता है। मानो बाज पक्षी धीर गतिसे बादलोके ऊपर उडान भरता हुआ मीलो तक यो ही उडता चला जाय और उसके पख थकें नही। 'बादल राग' वाली कविताओमें विप्लव-सबधी उनकी प्रसिद्ध रचनामे ओज और करुणाका विचित्र सम्मिश्रण है। उसमें बादलका गर्जन और चातककी पुकार दोनो हैं। "तुझे बुलाता कृषक अधीर" कहते हुए उनका स्वर व्यथित हो उठता है और "ऐ जीवनके पारावार" मे भविष्यके प्रति उनका सयत आत्म-विश्वास प्रकट होता है। उनपर 'बादल राग' की ये पक्तियाँ अच्छी तरह लागू होती हैं :—

"मुक्त ! तुम्हारे मुक्त कंठमें
स्वरारोह अवरोह विधान,
मधुर मन्द्र, उठ पुन. पुन. ध्वनि
छा लेती है गगन, श्याम कानन
सुरभित उद्यान।"

कविता-पाठकी स्वाभाविकता उनकी बातचीतमे भी होती है। वे अपनी धारा-प्रवाह बैसवाडीके लिए प्रसिद्ध हैं। यद्यपि वे बगालको अपनी मातृभूमि कहते हैं, परन्तु जो भाषा जाने-अनजाने उनके मुखसे निकल पडती है वह बैसवाडी है। यही एक भाषा है जिसे वह चौबीस घटोमें

हैं। एक बार के० सी० डे० लेन, सुन्दर बाग, लखनऊ में, मछलियो में मगरमच्छकी तरह, छोटे लडकोंमें वह कबड्डीभी खेले थे।

कविता-पाठ और भाषणमें भी कुछ विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। दुरूहता, अस्पष्टता आदिके आक्षेप होनेपर भी वह अपनी कविता लेकर जनताके सामने आनेकी ताव रखते हैं। मुक्त छन्दका विरोध होनेपर न जाने कितनी सभाओंमें उसे सुनाकर उन्होंने विरोध शांत किया है। मुक्त छन्दकी रचनाओंकी नाटकीयता, स्वरका उत्थान-पतन और उसके सहज-प्रवाह द्वारा भाव प्रदर्शन करना उनके पाठकी विशेषताएँ हैं। चाहे 'जुहीकी कली' के समान सौंदर्य-प्रधान रचना हो, चाहे 'समरमें अमर कर प्राण' जैसी वीररसपूर्ण कविता हो, वह अपने उदात्त और मन्द्र स्वरोंसे भाव-सौंदर्यको समान रूपसे प्रकट कर सकते हैं। गायनके समान कविता-पाठमें भी उनकी सफलताका कारण स्वर का सहज रूपमें पूर्ण प्रसार है।

"समरमें अमर कर प्राण
गान गाये महा सिन्धु से,"

इन पंक्तियोंको पढते हुए 'प्राण' और 'गान' के आवर्तको वे स्वर खींचकर प्रकट करते हैं। उनकी कविता अनुप्रास और शब्द-सौन्दर्य से पूर्ण होती है। उसका आनन्द पढनेपर ही आता है, मनमें गुनगुनाने से अशरीरी भाव-सौंदर्य ही पल्ले पडता है। जब वह मंचपर "कम्पित जगम, नीड विहगम, ऐ न व्यथा पाने वाले" कहते हुए बादलको सम्बोधित करते हैं तो उनका स्वर ही शांतिका भाव-चित्र बन जाता है।

छन्द-बद्ध रचनाओंमें भी स्वर-प्रवाहमें यथेष्ठ वैचित्र्य रहता है वह तुकान्त छदोंकी पंक्तियोंकी सीमा लाघते हुए भाषाकी स्वाभावि यति-गतिके अनुसार पढते हैं। उदाहरणके लिए 'सरोज-स्मृति' का पाठ करते हुए जहाँ विराम लगा होता है, वहीं रुकते हैं, चाहे विराम पंक्तिके बीचमें हो चाहे अन्तमें। 'रामकी शक्ति-पूजा'—जैसी रचनामें दीर्घ पंक्तियाँ लहरोंकी तरह पछाड खाती हुई गिरती हैं। उञ्चास पवनों

पर बड़े-बड़े लेखक धुनी हुई रुईकी तरह इधर-उधर उड़ते हुए दिखाई देते हैं। इसी तरह कभी हिन्दीपर कोप होता है तो सुननेवालेको ऐसा लगता है कि हिन्दी-भाषी होनेसे बढ़कर और कोई दूसरी लज्जाकी बात नहीं हो सकती। इस तरहके एकांगीपनके बावजूद यह कहा जा सकता है कि बँगला साहित्यसे उन्हें स्थायी प्रेम है और हिन्दीकी गौरवपूर्ण परम्परा की रक्षा करते हुए वे सदा इस बातके लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि हिन्दी और हिन्दी-भाषी जनताकी उत्तरोत्तर उन्नति हो। नए लेखकोंको वह बराबर प्रोत्साहन देते हैं। मील दो मील जाकर उनकी रचनाएँ सुनना और उनका मन बढ़ाना उनके लिए अपनी प्रतिष्ठाके प्रतिकूल नहीं होता। उनके संपर्कमें आने वाला शायद ही कोई युवक साहित्यिक होगा जिसने उनसे प्रेरणा और उत्साह न पाया हो। मेरी पीढ़ीके कई ऐसे लेखक हैं जिन्होंने उनसे हिन्दी लिखना सीखा है। हिन्दीके बहुतसे अशुद्ध प्रयोगोंका ज्ञान मुझे पहले पहल उन्हींसे हुआ। बँगला साहित्यकी थोड़ी-बहुत जानकारी भी उन्हींके संपर्क से हुई। एक जगह उन्होंने अपनेको विलासका कवि कहा है और इसमें संदेह नहीं कि ऐश्वर्य और विलास के प्रति उनका प्रबल आकर्षण है। वह हर चीज ग्रैण्ड स्टाइलमें करना चाहते हैं। मालिश हो तो रूह से, दूध-बादाम पिया जाय तो महीने में दो सौ रुपएका और फटे-हाल रहा जाय तो वह भी रोटी फिल्म के अभिनेताओंकी तरह एक आन-बान के साथ। चादरपर दवात लुढ़क गई है लेकिन आप उसी की तहमत लगाए अमीनाबादमें घूमते चले जा रहे हैं। बाल रखाते हैं तो कंधोंको छूते हुए और बनवाते हैं तो छुरेसे मुड़ाकर ही दम लेते हैं। अलबत्ता उन्हें इस बातका बड़ा ध्यान रहता है कि सभा-समाजमें जायें तो कोई उनके वेशको ओर उँगली न उठाए। शायद वे समझते हैं कि जब तक वे सभा-समाजमें नहीं जाते, तब तक उन्हें ज्यादा लोग नहीं देखते। भीड़भाड़ वाले शहरमें भी उन्हें तनहाई मालूम होती है। उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि उनका रूप, आकार और वेशभूषा हर हालतमें देखनेवालों का ध्यान आकर्षित करती है। कुछ दिनसे उन्होंने तहमतको तिलांजलि देकर या उसीको बीचसे मोड़कर

घुटनों तककी लुंगी अपनायी है।

जब सभा समाजमें जाते हैं, विशेष रूपसे जब उन्हें कवि-सम्मेलनका सभापतित्व करना होता है, तब वह अपने नखशिखका बड़ा ध्यान रखते हैं। दस साल पहले वह ऐसा अवसर आनेपर धोबीको अर्जेंट कपड़े दिया करते थे, लेकिन अब उनकी भूषा इस योग्य नहीं होती कि अर्जेंट धुलाईके बाद वह उनका साथ दे सके। अब धोबीके बदले उन्हें बजाज और दर्जी की शरण जाना पड़ता है। एक श्रद्धालु मित्रने उन्हें अपने यहाँ कवि-सम्मेलनका निमंत्रण देते हुए अनेक बार अपनी श्रद्धाका उल्लेख करते हुए उनसे निराश न करनेकी प्रार्थना की और पहुँचनेपर उनकी सेवामें पत्रम् पुष्पम् भेंट करनेका वचन दिया। पत्र दिखाते हुए निरालाजीने कहा "इनकी श्रद्धाको लेकर चाटें? बिना एडवासके कपड़े कैसे बनेंगे?"

नारियलवाली गलीका मकान जब कभी झाड़ा-बुहारा जाता था तो मुझे तुरन्त सन्देह होता था कि आज कहीं कवि-सम्मेलन होने वाला है। फर्शपर बिखरी हुई किताबें अलमारियोंमें पहुँच जाती थीं। ढेरों अखबार जो पतझड़के पत्तोंकी तरह फैले होते थे, किसी कोनेमें या अलमारीके ऊपर तरतीबसे रख दिये जाते थे। दरवाजेके पास तमाखूकी पीकके दाग धुँधले पड़ जाते थे। उस दिन कविवर सन्दल सोप से स्नान करते। यत्नसे बनवाए हुए दाढ़ी और गाल सन्दलके स्पर्शसे चमक उठते। विधिपूर्वक तैयार किया हुआ भोजन पाकर गद्देके अभावमें फर्शपर रज़ाई बिछाकर गहरी निद्रामें निमग्न हो जाते। चार-पाँच बजे अर्जेंट धुलाए कपड़े निकालकर कान्तिमान शरीरकी शोभा बढ़ाते। इत्रकी शीशी बालोंमें लुढ़का लेते यद्यपि इस क्रियासे एक बार उन्हें छींकें आने लगी थीं और माथेमें दर्द भी होने लगा था। इस सब तैयारीके बाद वे कविताके ध्यानमें सो जाते। मानी बात है कि मंचपर उनका रंग खूब जमता।

फिर भी जिस बेपुर्दीसे वह घरपर या किसी मित्रके यहाँ कविता सुनाने या गाने लगते हैं, वह रंग कुछ दूसरा ही होता है। एक दिन भोजनके बादकी नींदसे उठकर वह "नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरे खेली

होली" गाने लगे। मैं ऊपरके कमरेमें सो रहा था या तन्द्रामें था। स्वर सुनकर उठ बैठा और बिना उनके जाने हुए नजदीक आकर गीत सुनने लगा। वह इतने बेसुध होकर गा रहे थे कि बिना रियाज के भी उनके स्वर छंदके शब्दोंकी तरह सच्चे लग रहे थे। उनकी मुरकी और कन देखकर मैं यह समझा कि कोई पुरानी चीज गा रहे हैं। गीत समाप्त होनेपर मैंने प्रशंसाके स्वर में पूछा—"आप किसकी होली गा रहे थे ?" एक क्षण तक बिना उत्तर दिये वे मेरी तरफ देखते रहे मानो मुझसे कोई भारी अपराध हुआ हो। फिर स्वरको यथेष्ट मुलायम करके बोले—"हमारी है, और किसकी होगी ?" इसी प्रकार एक बार कवि श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन' के यहाँ उन्होंने बँगलाके गीत गाये थे। डाइनिंग रूममें भोजन करके 'सुमन' के छोटे बच्चे अरुणम खेलते हुए "अहा जागि पोहालो विभावरी" आदि अपने प्रिय बँगलाके गीत गाने लगे। स्वरको बढ़ाने की जरूरत न थी क्योंकि श्रोता तीन-चार ही थे। जब वह धीमी आवाज में गाते हैं, तब स्वरपर नियंत्रण खूब रहता है।

अकेले रहने के कारण बीमारी में तीमारदार भी कोई नहीं रहता और वह गालिब की पंक्तियाँ गुनगुनाते ही नहीं, उन्हें जीवन में चरितार्थ भी करते हैं। एकबार लखनऊ में देखा कि अन्धाधुन्ध बुखार चढ़ा है घर में कोई पानी देनेवाला भी नहीं है। मैंने कहा—'दवा लाऊँ और यहाँ रहकर आपकी देखभाल करता रहूँ।' उन्होंने ऐसे ढंग से सिर हिलाया कि इसरार करना नामुमकिन हो गया। गढ़ाकोला में वे भयानक रूप से बीमार पड़े थे और मगडायर के लोग बतलाते हैं कि उस समय भी वह अपने तीमारदार खुद ही थे। उससे भी खराब बीमारी उन्होंने वर्षों में पाई जब सत्तर पौण्ड वजन कम हो गया था। मैंने उन्हें निरोग होने पर इलाहाबाद में देखा था। खोपड़ी घुटाये हुए धुँधली रोशनी में वह एक कुल्हड़ में रबड़ी खा रहे थे। मैंने उन्हें दरवाजे से देखा लेकिन पहचान न पाया और एक आदमी से पूछने लगा—"निराला जी का कमरा कौन सा है ?" तब तक उन्होंने आवाज देकर भीतर बुलाया। उनका शरीर कृश हो गया था, आँखें भीत-

को धँस गई थी और कमर कुछ झुकी हुई-सी मालूम पड़ती थी। तबसे अब तक उन्होंने बहुत कुछ स्वास्थ्य लाभ कर लिया है, फिर भी सन् '३४ की हालत तक फिर भी नही पहुच पाये।

निराला जी के व्यक्तित्व में निर्भीकता और उद्दण्डता कूट-कूट कर भरी है। श्मशान और नगर में वह पूर्ण स्वच्छन्दता से विचरते हैं। डलमऊ में अवधूत टीला उनका ठीहा है। महिषादल में भी वह मसान में घूमने जाया करते थे। 'जुही की कली' का सुहाग उन्होंने यही पर देखा था। बरसात की अँधेरी रात में खेतो और मैदानों को पार करते हुए उन्हें जरा भी भय नही होता। उनकी निर्भीकता दु साहस की सीमा तक पहुँची हुई है। इसका असर उनकी बातचीत पर भी है। वे बनावटी शिष्टाचार तोडते हुए निर्द्वन्द भाव से बातें करते है, सुनने वाला क्या सोचे और समझेगा, इसकी उन्हें परवाह नही रहती। जब उन्होंने महात्मा गाँधी से कहा था— मै हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति महात्मा गाँधी से मिलने आया हूँ, राजनीतिक नेता से नही,—तब भी उनका यही भाव था। फैजाबाद के प्रांतीय साहित्य सम्मेलन में कुछ राजनीतिक नेताओ के हिन्दी साहित्य पर आक्षेप करने पर वही खडे होकर उन्होंने मुँहतोड जवाब दिया। नेताओ के भक्तों ने बैठ जाओ, बैठ जाओ, कहकर उन्हें चुप करने का विफल प्रयास किया। पडित जवाहरलाल नेहरू से रेल की मुलाकात, पडित गोविन्दवल्लभ पन्त से लखनऊ और दूसरी जगहों की भेंट के पीछे हिन्दी के समर्थन का भाव काम करता रहा है। जो भी मनुष्य साहित्य को उचित स्थान नही देता उसे ललकारने में वह कभी आगा पीछा नही करते। इस सम्बन्ध में एक रोचक घटना का वर्णन सुना था। लखनऊ में एक हिन्दी हितैषी राजा साहब आये थे। उनके यहाँ कई हिन्दी साहित्यिक पलते हैं, इसलिए वह अपने को हिन्दी साहित्य का मर्मज्ञ और बहुत कुछ समझते है। मैने सुना है कि एक आध कवि ऐसे भी है जो रस-सचार के लिये उपकरण भी जुटाते हैं। हिन्दी लेखकों पर राजा साहब की कैसी दृष्टि पडती होगी, इसका अन्दाज लगाया जा सकता है। लखनऊ के एक प्रकाशक-सम्पादक-साहित्यक ने उनके सम्मान

में चाय आदि का प्रबन्ध किया। लेखक भी बुलाये गये। जब राजा साहब तशरीफ़ लाये तो सब लोग उठकर खड़े हो गये और लोगों का कहना था कि निराला इतना अशिष्ट था कि उठकर खड़ा भी नहीं हुआ। एक वयोवृद्ध साहित्यिक सबका परिचय कराने लगे—गरीब-परवर, यह फ़लाने हैं, यह फ़लाने। इसी गरीब परवर की धुन में वह निराला जी तक पहुँचे और अपना सम्बोधन दुहराया ही था कि कविवर खड़े हो गये और राजा साहब को मुखातिब करके बोले—"हम वह हैं, हम वह हैं जिनके बाप दादों के बाप-दादों की पालकी तुम्हारे बाप दादों के बाप-दादा उठाया करते थे।" राजा साहब की दृष्टि से तुरन्त ही अवज्ञा का भाव गायब हो गया।

४

सांस्कृतिक जागरण और परिमल

निराला जी का जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जहाँ महावीर जी के प्रति असीम श्रद्धा थी और वेश्या के लड़के के यहाँ पानी पीने पर जबर्दस्त मार पड़ती थी। हम कह सकते हैं कि उनके परिवार पर पुरानी संस्कृति की गहरी छाप थी। उनके घर के लोग राम और कृष्ण के उपासक, सामाजिक बन्धनों को मानने वाले और किसी तरह के भी विद्रोह से कोसों दूर रहने वाले थे। इस तरह के वातावरण की वास्तविक देन 'साकेत' और 'यशोधरा' है, न कि 'परिमल' और 'अनामिका'। लेकिन निराला जी का सम्बन्ध एक मात्र घरेलू वातावरण से न था। उन्हें शहर की हवा भी लग चुकी थी, जिसमें विद्रोह और उच्छृंखलता दोनों के ही कीटाणु विद्यमान थे। बैसवाड़े की आल्हा-नौटंकी संस्कृति के अलावा युवावस्था में उनका सम्पर्क बंगाल की दो महान् सांस्कृतिक धाराओं से हुआ। एक तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में बंगाल का नवीन सांस्कृतिक जागरण और दूसरा स्वामी विवेकानन्द का स्थापित किया हुआ श्रीरामकृष्ण मिशन। इन दोनों का उन पर स्थायी प्रभाव पड़ा है। और इसमें सदेह नहीं कि अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भकाल में उन्हें पहले इन्हीं से प्रेरणा मिली।

सन् '२० तक श्री रवीन्द्रनाथ बंगाल में ही नहीं, समूचे भारत में महाकवि और विश्वकवि के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। बंगला कविता को पुरानी रूढ़ियों के दलदल से निकालकर उन्होंने प्रगति की समतल भूमि पर ला खड़ा किया था। अंग्रेजी के गीत साहित्य की तरह उन्होंने बंगला में नये छंदों की रचना की। उसे एक नई गीतात्मकता दी। समूची पौरा-

णिक संस्कृति को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया, उपनिषदों से लेकर मुसलमान सत्ता की रानी तक को उन्होंने नया रूप दिया। वे एक महान सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे जिसकी किरणें बंगाल की सीमाओं को पार करके दूर के प्रांतों तक फैल गई थीं।

उस समय भी कुछ ऐसे लोग थे जो रवीन्द्रनाथ की रचनाओं को शेली आदि रोमान्टिक कवियों की नकल कहकर मुँह बिदकाते थे। इसी तरह आगे चलकर छायावादी साहित्य के आलोचकों ने भी उसे बँगला की नकल कहकर उसकी खिल्ली उड़ानी चाही। वे इस बात को भूल गये कि ये दोनों आन्दोलन राष्ट्रीय जागरण के दो रूप हैं। बंग-भंग के आन्दोलन का रवीन्द्रनाथ पर गहरा असर पड़ा। नए राष्ट्रीय गौरव की भावना उनकी कविता में कूट-कूट कर भरी है। आगे चलकर उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया। चर्खे को लेकर गांधी जी से उनका विवाद चला लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वे राष्ट्रीयता के विरोधी थे। इस विवाद में छायावादी कवियों ने भी हिस्सा लिया, निराला जी ने इस विषय पर एक लम्बा लेख लिखा जिसमें उन्होंने अपने आदर्श कवि की यथेष्ट भर्त्सना की। वह उस समय भी गांधीवाद के समर्थक नहीं थे, फिर भी नए राष्ट्रीय आन्दोलन का वह समर्थन करते थे और चाहते थे कि सभी साहित्यकार उसे आगे बढ़ाने में सहायक हों। राजनीति के सिवा रविबाबू ने बहुत सामाजिक सुधार भी किए थे और ब्राह्म-समाज के जरिये उन्होंने उस काम को पूरा किया जिसे राजा राममोहन राय ने शुरु किया था। निराला जी पर उनकी इस बहुमुखी प्रतिभा और कार्य-प्रणाली का बहुत प्रभाव पड़ा।

स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रविबाबू से कम व्यापक नहीं है। निराला जी ने सदा यही समझा है कि मनुष्यों में सन्यासी ही सबसे बड़ा है। इस बात को सभी लोग जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्द का आन्दोलन सन्यासियों का वैराग्य मात्र न था। उसमें राजनीतिक दासता और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती भी थी। अपने को दीन और निकृष्ट समझने

वाले पठित मध्य-वर्ग को विवेकानन्द ने गर्व करने के लिये वेदान्त का दर्शन दिया। अमरीका में दिये हुए व्याख्यान जितना हिन्दुस्तान में पढे गए उतना उस देश में नही। विश्व धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द की वाणी पददलित भारत की अप्रतिहत और अपराजिता वाणी के रूप में सुनाई दी। रामकृष्ण मिशन ने बाढ-पीडितो की सहायता के लिय सार्वजनिक रूप से सेवा मार्ग का प्रदर्शन किया। 'सेवा प्रारम्भ' नामकी कविता में निराला जी ने उसके इस रूप की चर्चा की है।

लकिन इसके सिवा उसका एक आध्यात्मिक रूप भी है जो ससार को नश्वर और मिथ्या मानता है, जो वैज्ञानिक आविष्कारो का विरोधी है, जो सन्यासियो के चमत्कारी कार्यों में आस्था उत्पन्न करता है—उसका प्रभाव भी निराला जी पर पडा है। "स्वामी शारदानन्द जी महाराज और मैं" नाम के लेख में उन्होंने इस तरह के चमत्कारो का वर्णन किया है। स्वामी जी उन्हें साक्षात् हनुमान मालूम होते थे। उन्होंने कवि के गले पर अपनी उँगलियो से कुछ लिख दिया और इन्हे ऐसा लगा कि भीतर ही भीतर वे अक्षर जल उठे हैं। स्वप्नो में नील समुद्र की लहरो पर शयन करती हुई महाशक्ति के ी दर्शन हुए। 'भक्त और भगवान' कहानी में उन्होंने एक सन्यासी का जिक्र किया है जिन्हें भक्त रामायण पढकर सुनाता है। यह सन्यासी स्वामी प्रेमानन्द जी हैं जिन पर 'अणिमा' में स्वतन्त्र रूप से एक कविता आई है। भक्त स्वय निराला जी है। मांग में सिन्दूर लगाकर अञ्जनादेवी का रूप धारण करनेवाली उनकी स्वर्गीया पत्नी श्री मनोहरा देवी हैं। पवत और गदा लिये हुए महावीर की मूर्ति में भारत के मानचित्र की कल्पना करना निराला जी की अनोखी सूझ है। इस कहानी में रामकृष्ण मिशन और निरालाजी के घरकी सस्कृतियाँ मिल कर एक होगई हैं। भक्त स्वामी प्रेमानन्द का भी उपासक है और हनुमान जी का भी। स्वामी जी हनुमान जी के ही अवतार मालूम होते हैं। स्वामी शारदानन्द जी, जिन्हें 'प्रबन्ध पद्म'—भक्त के कमलो की तरह—समर्पित है हनुमान जी के अवतार बतलाये गये हैं। तरुण भक्त के बदले प्रौढ भक्त अपने कमल रूपी

निबन्ध सन्यासी हनुमान के चरणों में अर्पित करता है।

मिशन के साधुओं के साथ बहुत दिनों तक उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। बाग बाजार कलकत्ते के 'उद्‌बोधन' कार्यालय में मिशन के साधुओं के साथ रहते हुए उन्होंने सन् '२२ में स्वामी शारदानन्द जी के दर्शन किये थे। 'उद्‌बोधन' मिशन का मुखपत्र था। आगे चलकर उसके दूसरे पत्र 'समन्वय' का सम्पादन भी निराला जी ने किया। वह रामकृष्ण मिशन के कितना निकट थे, इसका पता इसी से चलता है कि मिशन के साधुओं ने उन्हें अपने पत्र का सम्पादक बना दिया था। 'समन्वय' के कार्य-कर्ताओं के साथ वह बालकृष्ण प्रेस में रहते थे। 'मतवाला' और 'समन्वय' में कई कोस का अन्तर है लेकिन बालकृष्ण प्रेस से ही 'समन्वय' के बाद 'मतवाला' भी निकला और तब उसके सम्पादक-मण्डल में 'समन्वय' के भूतपूर्व सम्पादक श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी भी सम्मिलित थे। निराला जी मिशन को अपनी चीज समझते रहे हैं और लखनऊ में उसकी कार्यवाही में वह बराबर भाग लेते थे। वे उसके पुस्तकालय को पत्र-पत्रिकाएं पुस्तकें आदि देते थे और उत्सवों आदि में साधारण कार्यकर्ताओं की तरह शामिल होते थे। यह जरूर है कि इस तरह के उत्सवों में सभापतित्व के लिए जब बहुत बड़े-बड़े आदमियों की तलाश होती थी, तब वे कहा करते थे कि मिशन तभी कुछ काम कर सकेगा जब कसिया मेहतर उसका सभापति होगा।

रामकृष्ण मिशन ने 'परिमल' के कवि को अद्वैतवाद दिया। उसने उन्हें यह भी सिखाया कि मानवमात्र की सेवा वेदान्त के प्रतिकूल नहीं है। निराला जी के अन्दर एक अर्तद्वंद का जन्म हुआ, यदि संसार और मनुष्य मिथ्या हैं तो इनकी सेवा में व्यर्थ समय क्यों लगाया जाय? इस मानसिक संघर्ष का चित्र उनकी 'अधिवास' कविता में मिलता है। वह पूछते हैं कि अधिवास कहाँ है? मानो सन्यासी उत्तर देता है कि अधिवास वहीं है जहाँ गति का अन्त हो जाता है। कवि फिर पूछता है कि जब तक उसके हृदय में करुणा है, क्या तब तक गति का अन्त हो सकता है? दुखी मानव को देखते ही उसके हृदय की वेदना उमड़ आती है और वह उसे गले-

से लगा लेता है। वह मानता है कि वह माया मे फँसा हुआ है और उसकी गति रुक नही सकती। फिर भी उसे दु ख नही होता। वह गतिहीन अधिवास को नमस्कार करता है और पुकार कर कहता है—

"छूटता है यद्यपि अधिवास
किन्तु फिर भी न मुझ कुछ त्रास।"

'परिमल' में इस तरह की बहुत सी रचनाएं हैं जिनमें अद्वैतवाद को चुनौती सी दी गई है। 'भिक्षुक', 'दीन' आदि रचनाओं में उसी करुणा को उभारा गया है जो क्रमश विकसित होती हुई एक क्रांतिकारी सहानुभूति के रूप में बदल गई है। इसी काल की रचना 'जीवन चिरकालिक क्रन्दन' है जो "अनामिका" संग्रह में आई है। जीवन की कटुता और प्रखर वेदना यहाँ पर गीत बन गई है। हिन्दी कविता में ऐसा उत्कट आत्म-निवेदन 'विनयपत्रिका' के बाद पहली बार सुनाई पड़ा था। अद्वैतवाद और सन्यास से प्रेम होते हुए भी निराला जी की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की चर्चा भी काफी रहती है। अपने जीवन के दु ख को माया कहकर वह नही टाल देते वरन् वह उससे बहुत ही प्रभावपूर्ण पंक्तियाँ निर्माण करते हैं। कहते हैं—

"मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुख की गहन अधतम
निशि न कभी हो भोर;
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता-
इतना वन्दन—अभिनन्दन ?
जीवन चिर-कालिक क्रन्दन।"

कहाँ रहस्यवादी कवि की उल्लासपूर्ण कल्पना कि चराचर में सच्चिदानन्द का प्रकाश व्याप्त है और कहाँ दुख की इस काली रात की कल्पना जिसका विहान कभी होगा ही नही ! वह अद्वैतवादी नही है जो अपने अन्तर को वज्र-कठोर कहकर समाज के आगे ताल ठोकता है। वह समाज के

और सैकड़ों लोगों जैसा संघर्ष में जूझनेवाला सिपाही है जो अपना हौसला बढ़ाने के लिए दुश्मन को इस तरह ललकारता है।

'परिमल' की बहुत सी पंक्तियाँ पाठकों को याद आयेंगी जहाँ इसी तरह की वेदना व्यक्त हुई है। कहीं वह चाहते हैं कि थके हुए पथिक की तरह कुछ क्षणों को कहीं विश्राम कर लें और "जीवन प्रात के लघु पात-सा रह जाय चुप निर्द्वन्द।" कभी सोचते हैं कि "तुम्हारे प्रेम अञ्चल में" एक दिन यह रोना थम जायगा। फिर कहते हैं, सूर्यास्त हो रहा है; दिन, पल, मास विष की अग्नि उगल रहे हैं और असफल जीवन जलता चला जा रहा है। सूरदास के रूपक "जा दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं" से प्रेरणा लेते हुए वे कहते हैं कि अग्नि से झुलसी हुई डालियों से पल्लव प्राण विदा होने को ही हैं। 'परिमल' के बाद की रचनाओं में यह वेदना का स्वर और भी स्पष्ट होता गया है। अभी तो यौवन की उमंग में कवि चुनौती भी देता है और समझता है कि नदी की प्रबल धारा के सामने जिस तरह हाथी नहीं टिकते, उसी तरह उसके प्रयास के आगे विघ्न बाधाएँ भी न टिक पायेंगी।

'परिमल' का कवि वेदना का कवि होकर नहीं रह जाता, वह प्रेम और सौन्दर्य का कवि है। उसे स्वर्गीया प्रिया की याद आती है। वह देखता है कि कली अपने लावण्य से समूचे वन को लुभा लेती है और भ्रमर का गीत उसकी गन्ध से मिलकर एक हो जाता है। एक दूसरी कविता में वह कहते हैं—

"देख पुष्पद्वार
परिमल मधु लुब्ध मधुप करता गुञ्जार।"

उनके 'परिमल' संग्रह की सार्थकता इस पंक्ति के 'परिमल' शब्द से प्रकट होती है। वह स्वयम् वासना और सौन्दर्य के द्वारपर गुञ्जार करते हुए कवि हैं। कितनी ही रचनाओं में सोती हुई प्रिया को जगाने या उसके कक्षका द्वार खुलवाने का भाव आया है। "प्रिय मुद्रित दृग खोलो" वह गाते हैं क्योंकि वासना प्रेयसी जीवन के उपवन में विहार करने के लिये बार-बार आह्वान कर रही है। उनकी प्रसिद्ध रचना "जागो फिर एक

वार" में आकाश के तारे भी जगाने में मदद कर रहे थे, लेकिन द्वार तब तक न खुला जब तक अरुण पङ्ख तरुण किरण ही वहाँ न पहुँची। सौन्दर्य सम्बन्धी कविताओं में इस रचना का अन्यतम स्थान है। एक लघु चित्र से सन्तुष्ट न हो वे सौन्दय के लघु और विराट चित्रों की कड़ियाँ जोड़ते चले गये हैं, उनके रहस्यात्मक सङ्केतों से ऐसा लगता है कि इस शृंखला में समूचा विश्व ही बँधा हुआ है। सूर्यास्त होने पर आकाश में चाँदनी देख कर यामिनी गया जगती है और चकोर चन्द्रमा को चाव से जोहने लगता है। फिर सवेरा होने पर पपीहे का पिउ-पिउ रव सुनाई देता है। विरह-विदग्धा बधू बीती बातें याद करके मन मिलन की रातों पर वैसे ही आँसू बहाती है जैसे कलियों से ओस की बूँदें ढुलक जाती हैं। प्रिया आह्वान करती है कि हवा में खुशबू की तरह दोनों की बुद्धि और मन एक हो जाय। सूर्योदय देखकर कविकण्ठ में सरस्वती जगी। इसी प्रकार दिन रात बीतते गये और प्रकृति पट बदलते रहे, हजारों वर्ष बीत गये और कवि की प्रिया पुकारती रही, 'जागो फिर एक बार'।

यह वही मानव-सुलभ वाणी है जो युगों-युगों से स्त्री और पुरुष दोनों के ही कण्ठों में सुनाई देती रही है। इसे कभी हम वासना कहते हैं कभी प्रेम, लेकिन न यह माया है न मिथ्या। निराला जी की कला इस बात में है कि इस मानव सुलभ व्यापार की परिणति उन्होंने उस आनन्द में की है जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जा सकता है। उनकी सौंदर्य सम्बन्धी कविताओं के अन्त में सदा यह सकेत रहता है कि इस तृप्ति से बढ़कर और कुछ नहीं इसका एक सुन्दर निदर्शन 'गीतिका' में है 'स्पर्श से लाज लगी'—इस गीत का अन्त इस प्रकार होता है—

> 'मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर
> बरस गये रस निर्झर झर झर
> उगा अमन्द अंकुर उर भीतर
> संसृति भीति भगी।'

'जुही की कली' में "नम्र मुख हँसी, खिली खेल रंग प्यारे सग"—में

भी यही परिणति का भाव है।

मुक्त छंद में होते हुए भी 'जुही की कली' ने सबसे ज्यादा ख्याति पाई। यह कवि की प्राथमिक रचनाओं में से है, यद्यपि यह विश्वास करना तो कठिन है कि यही उनकी सबसे पहली रचना रही होगी। 'मतवाला' के शुरू के अंकों में जिस तरह की कविताएँ निकली हैं, उन्हें देखकर सहसा विश्वास नहीं होता कि ऐसी पुष्ट और पूर्ण कविता उन्होंने एकाएक लिख डाली होगी। 'मतवाला' के कई अंक निकलने के बाद 'जुही की कली' के दर्शन होते हैं—अठारहवीं संख्या में, और इसी के साथ पहली बार कवि के नाम और उपनाम एक साथ प्रकाशित हुए हैं पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। इस कविता को कितनी बार सँवारा गया होगा, इसका अनुमान इसी से हो सकता है कि 'मतवाला' में अभी दीर्घ ऊकारान्त 'जूही' है, और 'वंकिम विशाल नेत्रों' के बदले अपने अलग अन्दाज में 'बाँके विशाल नेत्र' हैं। शिवपूजन सहाय जी ने इसे अपने 'आदर्श' नाम के पत्र में भी प्रकाशित किया था। मुझे मालूम नहीं उसमें क्या पाठ था। इस कविता के बारे में यह भी मशहूर है कि आचार्य द्विवेदी जी ने इसे 'सरस्वती' से लौटा दिया था। 'सरोज-स्मृति' में जिन लौटी रचनाओं को लेकर घास नोचने का जिक्र है, उनमें अवश्य ही 'जुही की कली' का प्रमुख स्थान रहा होगा।

लखनऊ रेडियो से अपना पहला गद्य-लेख विस्तार करते हुए उन्होंने उन परिस्थितियों का वर्णन किया था, जिनमें यह कविता लिखी गई थी। उसका शीर्षक था 'मेरी पहली रचना'। महिषादल में अपने अभ्यास के अनुसार आधी रात को श्मशान भ्रमण कर रहे थे। आसमान में चाँदनी खिली हुई थी और स्थान को अत्यन्त अनुकूल जानकर कवि के हृदय में प्रेम के सञ्चारी-व्यभिचारी भाव उदय हो रहे थे। उन्हें गढ़ाकोला और डलमऊ की याद आई होगी, तभी जुही की घनी महक ने उनके दिल और दिमाग को तर कर दिया। कविता में मरघट की पृष्ठभूमि का अभाव है; उसके बदले जुही की कली और मलयानिल के प्रेम की कहानी है। एकान्त वन में लता के पत्र पर स्वप्न प्रियतम का स्वप्न देखती हुई कोमल तन की

तरुणी जुही की कली सो रही है। चित्र को पूर्णता देने के लिए पत्रका पलँग भी मौजूद है। प्रिया का संग छोड़ कर मलयानिल परदेस करने गया था। चांदनी की धुली हुई आधी रात देखकर मिलन की मधुर बातों की सुध आई। कान्ता का कंपित कमनीय गात याद आते ही सर-सरिता, गिरि-कानन पार करता हुआ मलयानिल क्रीड़ास्थल में पहुँच गया। छः सात सौ मील का सफर उसने बात की बात में तै कर डाला। जुही की कली सो रही थी, उसने बड़े ही शिष्ट भाव से जगाने की कोशिश की, लेकिन न तो वह जागी न असमय ही सो जाने के लिए क्षमा माँगी। वह निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूंदे रही किंवा जवानी के मल्हड़पन में नींद का अभिनय कर रही थी, कौन कहे! मलयानिल ने शिष्टता को उठाकर ताकपर रख दिया और उसे झकझोर कर अपने पत्र के पलँग पर उठाकर बैठा दिया। अपनी चकित चितवन चारों ओर डाल कर उसने तुरंत ही देख लिया—अगर इतना झकझोरने पर भी वह असलियत न समझ पाई हो तो—कि मलयानिल फिर आ पहुँचा है। फिर—"

"हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी खिली
खेल रंग प्यारे संग।"

इस रचना में नवयुवक कवि का एक मनोरम सौंदर्य स्वप्न अंकित है। इस तरह का भुलावा जीवन में अनेक बार नहीं होता। बुद्धि रोमांस के चरणों में बारबार यों आत्मसमर्पण नहीं करती। 'जुही की कली' को कवि ने अमरत्व प्रदान किया है। जिसकी आयु दिनों में गिनी जा सकती है, उसे वर्ष भर पत्रांक में रखने पर भी तरुणी रूप में कल्पित किया है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। संसार के अस्थायी प्रेम और सौंदर्य से ऊबे हुए रोमांटिक कवि ऐसे अमर प्रतीकों की कल्पना करते हैं। अंग्रेज कवि कीट्स की 'नाइटिंगेल' वर्षों से ही नहीं, शताब्दियों से अपना वेदना-मधुर गीत गाती रही है। मध्यकाल के राजा और विदूषक ही नहीं, ईसामसीह के पहले मोआब की रमणी 'रूथ' और कल्पनालोक की अप्सराएं उसके गीत

सुनकर सान्त्वना प्राप्त कर चुकी है। इसी प्रकार कीट्स की दूसरी कविताएं प्राचीन यूनान की कलाकृति, सुन्दर चित्रोंवाला वह पात्र—ग्रीशन अर्न—सदियों से मानवमात्र को धीरज बँधाता रहा है और भविष्य में भी बँधाता रहेगा। वैसी ही सुन्दर कल्पना कवि निराला ने 'जुही की कली' में की है। दुर्भाग्य से इस तरह की कल्पना टिकाऊ नहीं होती और क्रूर यथार्थ एक झटके से इस मधुर स्वप्न को भंग कर देता है। कीट्स ने 'नाइटिंगेल' वाली कविता में लिखा था—कल्पना की परी उसे यों धोखा नहीं दे सकती। 'जुही की कली' पर नियति ने यह व्यंग्य किया कि महिषादल के श्मशान के बदले डलमऊ में गंगा के किनारे कवि को अवधूत टीले के दर्शन कराये और स्नेह-स्वप्न-मग्न तरुणी के बदले उसकी राख और कुछ अस्थियाँ ही उसे मिल पाईं।

'परिमल' में जुही की कली के बाद दूसरी कविता है 'जागृति में सुप्ति'। इसमें भी एक सौन्दर्य-चित्र अंकित है लेकिन यह कई वर्षों के बाद की एक नई दुनिया का चित्र है। यहाँ पर निर्दोष जुही की कली के बदले वह नागरी प्रिया है जिसके मौन अधरों पर सुरापान के चिन्ह विद्यमान हैं। वासन्ती निशा के बदले यहाँ प्रभात की लालिमा है जिसमें उसकी लाजमयी चेतना विलीन हो जाती है। कवि अपने पिछले स्वप्न भूल रहा है और जीवन-यापन करने के लिये नये स्वप्नों की सृष्टि कर रहा है। वासन्ती निशा के बाद कवि के जीवन में यह एक नवीन अरुणोदय हुआ और अब वह अपनी रचनाओं में चाँदनी रात के स्वप्नों के बदले नवप्रभात के रंग भरने लगा।

सौंदर्य सम्बन्धी रचनाओं के सिलसिले में 'पंचवटी' प्रसंग का भी उल्लेख कर देना उचित होगा जिसमें शूर्पणखा का बहुत ही भव्य चित्र अंकित है। जो लोग छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहते हैं, वे इस अत्यन्त मांसल चित्र को देखें। शूर्पणखा, और किसी पर भरोसा न करके, स्वयं अपनी प्रशंसा करती है। देवताओं और दानवों ने मिलकर समुद्र से चौदह रत्न निकाले थे। निराला जी ने 'समन्दर' माना पहले से

ही रघुपति सहाय 'फिराक' का ख्याल करके लिखा था, या मुमकिन है, वह शूर्पनखा की बोली की नकल कर रहे हों। इस समन्दर से रम्भा और रमा नाम की दो अप्सराएं भी निकली थी। कुछ लोग उन्हें सुन्दर भी समझते हैं लेकिन शूर्पनखा को जान पड़ता है कि सृष्टि-भर की सुन्दरता खींचकर बड़े शिल्पी विधाता ने उसी के अंगों में भर दिया है। प्रकृति भी उसकी सौन्दर्य राशि देखकर लज्जा से सिर झुका लेती है। वन की लताएं वायु के झकोरे से हिलती हैं, मानो अंचल में मुंह छिपाती हैं। आकाश के तारों को प्रतिबिम्बित करनेवाली गोदावरी बड़ी सुन्दर लगती है लेकिन उसके अपने लहराते जलद श्याम केश जाल जिनके बीच-बीच में पुष्प गूंथे गये हैं, अद्वितीय हैं। उसकी भौंहें देखकर कवि की कल्पना भी बालिका की तरह चकित खड़ी रह जाती है। क्यों न रह जाय जब यहां से वशीकरण, मारण, उच्चाटन के तीव्र शर छूटा करते हैं। उसकी नासा मीन मदन को फांसने की वंसी है। योजनगंध पुष्प जैसा प्यारा मुखमण्डल दूर-दूर से भौंरों को खींच लाता है और—

> "देख वह कपोत कण्ठ
> बाहुवल्ली कर सरोज
> उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि—
> नितम्ब-भार चरण सुकुमार—
> गति मन्द मन्द,
> छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
> देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।"

कविवर रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' की तरह उसके चरणों पर बड़े-बड़े विजयी अपना मान-सम्मान अर्पित कर देते हैं। लेकिन इन विजितों पर अवज्ञा की दृष्टि डाल कर सुन्दरी शूर्पनखा अपना विश्वविजयी चन्द्रानन फेर लेती है। 'परिमल' के बाद की रचनाओं में ऐसे भव्य चित्र कम मिलते हैं। सौन्दर्य से अधिक प्रेम की परिणति कवि का ध्यान आकर्षित करती है। परन्तु प्रेम की परिणति कीट्स की तरह विलास के सभी उद्दीपन

चाहती है। इसके अपूर्व चित्र 'अप्सरा' और 'प्रभावती' उपन्यासों में अंकित किये गये हैं।

'परिमल' की विशेषता यह है कि उसमें प्रकृति के ऐसे अनोखे चित्र आये हैं जो हिन्दी कवितामें बिलकुल नये थे। छ सात कवितायें तो वर्षा और बादलों पर इसी संग्रह में हैं और 'गीतिका' और 'अनामिका' और इधरके नये संग्रह 'नये पत्ते' और 'बेला' को ले तो बादलोंपर उनकी रचनाओं का अच्छा खासा संग्रह बन सकता है। उन्होंने बंगाल और अवध, दोनों ही की बरसात देखी है। शायद कोई भी हिन्दी कवि मूसलाधार पानी में इतना न भीगा होगा। बाहर घूमते हुए बारिश आ गई तो उन्हें घर लौटने की कभी जल्दी नहीं होती, बादल घिरे हों तो भी दोस्तोंको यह समझाते हुए कि पानी बरसने की जरा भी शंका नहीं, वे उनके साथ घूमने चल देते हैं। वर्षा का यथार्थ वर्णन ही उन्होंने नहीं किया, अनेक प्रतीकों के रूप में भी उन्होंने बादल का उपयोग किया है। 'अलि घिर आये घन पावस के'–यह गीत ब्रजभाषा के शृँगारी गीतों की याद दिलाता है। बादल की बूँदें स्मर शरके समान हैं और धरती के हृदय को बेध देती है,—इस कल्पना को उन्होंने अन्य रचनाओं में भी दुहराया है। 'झूम-झूम मृदु गरज गरज घनघोर' में दूसरा ही राग है। नद और दलदल के वर्णन से स्पष्ट है कि यह वर्षा बंगाल की है। इस गीत को पढ़कर रवीन्द्रनाथ के गीत, 'आजि गरजे गगने गगने गरजे गगने' की याद आ जाती है। बादल राग की दूसरी कवितामें नजरुल इस्मालके 'विद्रोही' की तरह विप्लवका नव जलधर है तो पलीकी श्री विखेर कर उसे पीड़ित करने वाला उद्दण्ड नायक भी है। तीसरी कविता में बादल के लिये अनोखी उपमाएं दी गई हैं। वह समुद्र का आँसू है, धरतीके खिन्न दिवस का दाह है, सूर्य का चुना हुआ फूल है, अर्जुन की तरह वह स्वर्ग का द्वार खोलने जाता है।

चौथी कविता में बादल को आकाश का चंचल शिशु कहा गया है। लेकिन उसे खेलने के लिये अन्धकार का आँगन ही मिला है। फिर भी किरण तूलिकायें उसके मुँह पर नये-नये वर्ण अंकित कर देती हैं। हवा में

उड़ने वाला बादल धरती और आकाश दोनों के ही गीत गाता है। संसार उसके गीतों को नहीं सुनना चाहता फिरभी उसके कानों में पहाड़ी झरने की तरह वह अपना राग भरता ही जाता है। पांचवी कविता में उसे फिर बालक का रूप दिया गया है जो किरण का हाथ पकड़ कर आसमान पर चढ़ जाता है। वह कुसुम के समान कोमल है और पत्थर के समान कठोर भी है। आकाश के नक्षत्र उसकी वन्दना करते हैं। उसे देखकर कवि के कण्ठ से नये राग फूट उठते हैं।

बादल राग की छठी कविता कविकी एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है और अपनी क्रांतिकारी व्यंजना और उदात्त स्वर-सौन्दर्य में वह अनुपम है। समीर के सागर पर बादल ऐसे तैरता है जैसे अस्थिर सुखपर दुख की छाया तैर रही हो। ग्रीष्मसे दग्ध संसारके हृदय पर विप्लव का प्रतीक यही बादल है। वह एक नाव की तरह है जिसमें युद्ध की आकांक्षायें भरी हैं और उसके भेरी गर्जन से पृथ्वी के हृदय में सोते हुए अंकुर फूट निकलते हैं। उसकी मूसलाधार वर्षासे धरती सिहर उठती है और वज्र हुंकार सुनकर संसार हृदय थाम लेता है। बादल का प्रहार बड़े बड़े पहाड़ोंपर होता है और उन पर बिजली गिरा कर वह उन्हें क्षत विक्षत कर देता है। लेकिन छोटे पौधे हाथ हिलाकर उसे बुलाते हैं। उसकी विनाश लीला से उन्हें भय नहीं होता क्योंकि 'विप्लव रवसे छोटे ही है शोभा पाते।' कवि याद दिलाता है कि बादल का जीवनदान अट्टालिका और आतंक भवन के लिए नहीं होता। वह जल लांछित, पदमर्दित पंक में नये कमल खिलाता है—

> "क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से
> सदा छलकता नीर,
> रोग शोक में भी हँसता है
> शैशव का सुकुमार शरीर।"

जिनका कोष खाली हो गया है, उनकी मानसिक शान्ति भंग हो गई है। विप्लव का यह भैरव नाद सुनकर अंगना अंग से लिपटे हुए भी वे अपने सिंहासन पर काँप रहे हैं, लेकिन किसान अपनी निर्बल बाँह उठा-

कर उसका आह्वान करता है। सन् '२३ में ही निरालाने जन संघर्ष की ओर संकेत करते हुए यह अद्वितीय चित्र अंकित किया था—

"रुद्ध कोष है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर कांप रहे हैं
धनी वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढांप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार!"

श्रीमती महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि' सीरीज वाले संग्रहकी भूमिका-में छायावादी युग की सामाजिक और राष्ट्रीय कविताओं के बारे में लिखती है— "राष्ट्रीय भावनाओं को लेकर लिखे गये जय-पराजय के गान स्थूल धरा-तल पर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियों में जो मार्मिकता ला सके हैं वह किसी और युगके राष्ट्रगीत दे सकेंगे या नहीं इसमें संदेह है। सामाजिक आधार पर वह 'इष्टदेवके मन्दिर की पूजा-सी' में-तप पूत वैधव्यका जो चित्र है वह *अपनी दिव्य लौकिकता में अकेला है।"* उनका इशारा निरालाजी की प्रसिद्ध कविता विधवा की ओर है। छायावादी उपमाओं के बावजूद निराला जी की सामाजिक सहानुभूति स्पष्ट है। उन्होंने उसे दीपशिखा, कालताण्डव *की स्मृति रेखा, वृक्ष से छुटी हुई लता आदि कहा है। 'व्यथा की भूली हुई कथा'* में एक यथार्थवादी कवि का सच्चा स्वर बोल उठता है। इस तरहकी सामाजिक कविताएं 'परिमल' में काफी हैं। *'बहू'* कविता में भी उन्होंने सुन्दर उपमाएं दी हैं। *उसे सौन्दर्य सरोवर की तरंग और किसी विटप* के आश्रय में लिली हुई किसलय कोमल लता कहा है। एक उपमामें

व्यञ्जनाकी सरलता देखते ही बनती है—

'मोतियों की मानो है लड़ी
विजय के वीर हृदय पर पड़ी।'

इस तरह की प्राथमिक कविताओं में नारी की पर निर्भरता को आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। आगेकी कविताओं में यह भाव बदल गया है। इन कविताओं में एक बात यह भी देखने की है कि उर्दू के शब्दों का ही नहीं, प्रतीकों का भी उन्होंने बड़ी निर्भीकता से प्रयोग किया है। जैसे इस पंक्ति में—'जलती अन्धकारमय जीवन की वह एक शमा है।' वहू के लिए शमाका प्रयोग निरालाजी की मौलिक प्रतिभा ही कर सकती थी।

कलेजेके दो टूक करनेवाला भिक्षुक हिन्दीमें अपना सानी नहीं रखता। अपनी कोमल भावुकतामें वह बरबस पाठककी सहानुभूति खींच लेता है। उसका लकुटिया टेक कर चलना, फटी पुरानी झोली का मुंह फैलाना, साथ के बच्चोंका पेट मलना और हाथ फैलाना, और कुछ न मिलने पर आँसुओं के घूँट पीकर रह जाना ऐसे चित्र हैं जिनसे सभी पाठक परिचित हैं। कवि ने उसकी साधारणताको ही अपनी प्रतिभा से चमत्कारी बना दिया है। दलित कुसुम धूल में नजर गड़ाये रहता है और सभी पथिकों के सामने करुणा की झोली फैलाये रहता है। जिस लता में वह खिला था, वह आँधी से टूट गई है, 'तबसे यह नौबत आई है।' किसीने भी उसे देवी देवताओं पर नहीं चढ़ाया। उसे जर्जर देखकर पुजारियों ने जमीन पर फेंक दिया। शायद यह अच्छा ही हुआ क्योंकि इन पुजारियों का यह हाल था कि 'ढकें हृदयमें स्वार्थ लगाये ऊपर चन्दन' ये नदीश-नन्दिनी का अभिनन्दन करने जाते थे। फूल का सम्बन्ध इससे श्रेष्ठ मानव-व्यापार से रहा है। जब दो प्रेमी मिले थे तब उन्होंने इसी फूल से प्रीति की अर्चना की थी।

'रस्म अदा हुई थी मुझसे—
मैं ही था उनका आचार्य—

कोमल कर था मिला कमल कर से जब
सिद्ध हुआ मुझसे उनका कार्य।'

यहां पर कवि ने स्पष्ट रूप से देवताओं की आराधना से मनुष्यके प्रेम-सम्बन्ध को उच्चतर स्थान दिया है।

'कण' नाम की कविता में भी इसी तरह की प्रतीक-व्यजना दलितों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है। आकाश देखते हुए कणको न जाने कितने दिन बीत गये हैं।

'पड़े हुए सहते हो अत्याचार
पद पद पर सदियों के पद प्रहार।'

इस सहनशीलता के साथ उसके अनन्त प्रेमकी झलक दिखाकर उन्होंने कविता में रहस्यवाद का पुट दे दिया है। रज होने पर भी विरज (निराकार) के लिये वह सब कुछ सहने को तैयार है। विप्लवी बादलका विद्रोह यहाँ नहीं, जहाँ भी रहस्यवाद की पुट होगी, वहाँ यह विद्रोह दबा होगा। कवि विप्लव का राग भूल कर सहनशीलता और अनन्त में लय होने का उपदेश देने लगता है। जिन कविताओं को रहस्यवादी कहा जाता है, उन पर एक सरसरी निगाह डालने से भी यह स्पष्ट हो जायगा कि वे छायावादी युग का सबसे कमजोर पहलू है।

उनकी प्रसिद्ध कविता 'भर देते हो' में ईष्टदेव करुणा की किरणों से कविके क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हैं। वह अन्तर में आकर व्यथा-भार कम कर जाते हैं। अपने वज्र-कठोर अन्तर की बात भूल कर कवि अन्धकार में रोदन की बातें करने लगता है। फूलों से ढुलकते हुए ओस बिन्दुओं के समान उसके कपोलों पर आँसू की बूँदें ढुलकती हैं। इष्टदेव किरणों से आँसू पोंछ लेते हैं और उसके दुखी जीवन में नये प्रभातका प्रकाश भर देते हैं। जीवन चिरकालिक क्रन्दन की तुलना में यह व्यापार कितना अवास्तविक और काल्पनिक मालूम होता है। भक्त अपने कुसुम कपोलों पर 'लोल शिशिर-कण' की मधुर कल्पना पर मुग्ध है।

व्यञ्जनाकी सरलता देखते ही बनती है—

'मोतियो की मानो है लड़ी
विजय के और हृदय पर पडी।'

इस तरह की प्राथमिक कविताओं में नारी की पर-निर्भरता को आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। आगेकी कविताओं में यह भाव बदल गया है। इन कविताओं में एक बात यह भी देखने की है कि उर्दू के शब्दों का ही नहीं, प्रतीकों का भी उन्होंने बड़ी निर्भीकता से प्रयोग किया है। जैसे इस पंक्ति में—'जलती अन्धकारमय जीवन की वह एक शमा है।'वहू के लिए शमाका प्रयोग निरालाजी की मौलिक प्रतिभा ही कर सकती थी।

कलेजेके दो टूक करनेवाला भिक्षुक हिन्दीमें अपना सानी नहीं रखता। अपनी कोमल भावुकतामें वह बरबस पाठकको सहानुभूति खींच लेता है। उसका लकुटिया टेक कर चलना, फटी पुरानी झोली का मुंह फैलाना, साथ के बच्चोका पेट मलना और हाथ फैलाना, और कुछ न मिलने पर आंसुओं के घूंट पीकर रह जाना ऐसे चित्र हैं जिनसे सभी पाठक परिचित हैं। कवि ने उसकी साधारणताको ही अपनी प्रतिभा से चमत्कारी बना दिया है। दलित कुसुम धूल में नजर गड़ाये रहता है और सभी पथिकों के सामने करुणा की झाली फैलाये रहता है। जिस लता में वह खिला था, वह आंधी से टूट गई है, 'तबसे यह नौबत आई है।' किसीने भी उसे देवी देवताओं पर नहीं चढ़ाया। उसे जर्जर देखकर पुजारियो ने जमीन पर फेंक दिया। शायद यह अच्छा ही हुआ क्योंकि इन पुजारियों का यह हाल था कि 'ढके हृदयमें स्वार्थ लगाये ऊपर चन्दन' ये नदीश-नन्दिनी का अभिनन्दन करने जाते थे। फूल का सम्बन्ध इससे श्रेष्ठ मानव-व्यापार से रहा है। जब दो प्रेमी मिले थे तब उन्होंने इसी फल से प्रीति की अर्चना की थी।

'रस्म अदा हुई थी मुझसे—
मैं ही था उनका आचार्य—

जड पत्थर के भीतर भी वह अपनी तान भर देता है। इस तरह की शका कि चेतना का विकास जड प्रकृति से हुआ है अथवा जड प्रकृति मिथ्या है और चेतना ही सत्य है, उनके अन्य गीतो में भी मिलता है, विशेष कर 'शैन तम के पार रे कह', 'गीतिका' के इस गीत में।

'परिमल' की रहस्यवादी कविताओ को एक साथ पढने पर पता लगता है कि रवीन्द्रनाथ से अधिक कवि पर विवेकानन्द का प्रभाव है। इष्टदेव की मातृरूप में कल्पना को स्वामी विवेकानन्द ने ही लोकप्रिय बनाया था। 'देवि तुम्हें मै क्या दूँ', 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' आदि रचनाओ में यह प्रभाव स्पष्ट है। इन कविताओ की विशेषता यह है कि भावुकताके आँसुओंके बदले जीवनकी दारुण व्यथाको गहरे रगो में अकित किया गया है। और मातारूप में इष्ट देवी आनन्द से अधिक शक्ति की देवी है। वह कवि को पलायनवादी ससार में नही ले जाती, न सुनहली किरणो से उसके ओस जैसे आँसू पोछ लेती है। वह उसे दुखभार सहन करने के लिये प्रेरणा देती है और मानो कहती है कि यह भार वहन करना ही उसकी श्रेष्ट उपासना है। यह कल्पना 'गीतिका' में विकसित हुई है।

'परिमल' की कविता 'क्या दूँ' में कवि अपने विफल प्रयासो का उल्लेख करता है। वह उन रत्नहारो को देखता है जो अन्य कवियो ने श्यामा को पहनाये है। उसके पास ऐसे गीत है जिनसे लोग भयभीत थे। वह उन्ही को शक्ति भिक्त से देवी की ओर बढाता है। 'जब कडी मारें पडी, दिल हिल गया' आदि पक्तियो में यही दारुण व्यथा वाला भाव है। जिस खेत में उसने भाव की जड लगाई है उसे उसने दुखनीर से सीचा है। आशा की लता में फूल लगे थे लेकिन काल की चाल से वे मुरझा गये। उसके लिए अब शूल बाकी रह गये है, लेकिन उसे यह लाभ हुआ है कि अकूल सिन्धु के किनारे तक पहुँचने के लिए प्राणशक्ति मिल गई है।

सन '२४ म निराला जी ने स्वामी विवेकानन्द की कई रचनाओ का अनुवाद किया था। सरल भाषा के प्रवाह में वे मूल बँगला के ओज को भलीभाति सुरक्षित रख सके हैं। इन कविताओं में शृगार से विरक्ति

और इसमें प्रेम प्रकट किया गया है। छायावादी कवियों ने प्रलयकर रुद्र के ताण्डव के जो गीत गाये हैं, उनका श्री गणेश 'नाचे उस पार श्यामा' आदि कविताओं से होता है। निराला जी के अनुवाद में ओज की मात्रा देखिये—

> 'फोड़ो वीणा, प्रेम सुधा का
> पीना छोड़ो, तोड़ो, वीर
> दृढ़ आकर्षण है जिसमें उस
> नारी माया की जञ्जीर।
> बढ़ आयो तुम जलधि ऊर्मि से
> गरज गरज गाओ निज गान,
> आँसू पीकर जीना; जाये
> देह, हथेली पर लो जान।
> चूर चूर हो स्वार्थ, साध, सब
> मान, हृदय हो महा श्मशान,
> नाचे उस पर श्यामा, घनरण
> में लेकर निज भीम कृपाण।'

इन पंक्तियोंमें 'रामकी शक्ति पूजा' की कल्पना का मूल रूप हम देख सकते हैं। समाज के आर्थिक और राजनीतिक कारणों से जो घोर असन्तोष फैला हुआ था, उसे प्रकट करने के लिए कवियोंने इन प्रतीकों से काम लिया। निरालाजीके जीवनसे भी महा श्मशानके प्रतीक मेल खाते थे। दोनों में एक आतंरिक सम्बन्ध था और इसी कारण 'रामकी शक्ति पूजा' के प्रतीक इतने सबल और भावपूर्ण हैं और वे निराला के जीवन-सत्य को ऐसे नाटकीय रूप में प्रस्तुत करते हैं।'

रहस्यवाद छायावादका पहलू था, दोनों को एक मान लेने पर बहुत तरह के भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। अन्य रोमांटिक आन्दोलनों की तरह छायावाद में भी विरोधी प्रवृत्तियों और असंगतियोंका अभाव नहीं है। पलायन और अध्यात्मवादके साथ उनमें संघर्षका स्वागत और क्रान्तिकी

चाह भी है। पलायनका रूप अध्यात्मवादी संसार की कल्पना ही नहीं है; इतिहास से वे युग ढूंड निकाले जाते हैं जिनसे कविको आन्तरिक सहानुभूति होती है। 'दिल्ली' और 'खण्डहर' कविताओं में पुरातन वैभवके प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की गई है। 'शिवाजीका पत्र' और गुरु गोविन्द सिंह पर 'जागो फिर एक बार' नाम की कवितामें उस पुनर्जागरण के चिन्ह मिलते हैं जो शुरू में हमारे राष्ट्रीय जागरण का ही एक अंग था। 'यमुना' में उन्होंने पौराणिक ससार को नवीन जीवन दिया है। ब्रज और यमुना को देख कर अनेक आधुनिक कवियों ने नटनागर श्याम और पनघट पर गोपियोंकी मधुर प्रेम-लीला के जो चित्र अंकित किये हैं, उनका आरम्भ इसी कविता से होता है। 'पंचवटी प्रसङ्ग' में उन्होंने राम की गाथा को पुनर्जीवित किया है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास का भक्तिभाव उभर कर आया है। लक्ष्मण कहते हैं–

"मुक्ति नही जानता मैं, भक्ति रहे काफी है"।

उनका आदर्श यह है कि माता की तृप्ति के लिए वे अपना सर्वस्व निछावर करदें और वे अपनी समस्त तुच्छ वासनाओंका विसर्जन करके एक मात्र भक्ति की कामना कर सकें।

इस प्रकार 'परिमल' की रचनाओं में छायावाद की बहुमुखी प्रवृत्तियाँ अपनी रूपरेखा में स्पष्ट होकर पाठक के सामने आती हैं। द्विवेदी-युग की वैष्णवी श्रद्धा और सशंक नैतिकता के बदले पहले-पहल अविश्वास और मानवीय प्रेम और शृंगार के स्वर सुनाई पड़ते हैं। नैतिकता के प्रति उनके विरोध ने उच्छृङ्खलताका रूप नहीं लिया। नये कवियों ने व्यक्तित्व के पूर्ण विकासके लिए उस सामाजिक स्वाधीनताकी मांग की जिसे पिछले युग के सामाजिक बन्धन दबाकर रखना चाहते थे। इन कवियों ने नए ढङ्ग से प्रकृतिका चित्रण करना शुरू किया; इस तरह की कविता को उन्होंने लक्षण-ग्रन्थों की सीमाओंसे उबार लिया। उद्दीपन या उपदेश के लिये प्रकृतिका वर्णन काफी नहीं था। प्रतीक रूप में भी प्रकृति का उपयोग किया गया, लेकिन पहले-पहल हिन्दी कविता में उसके

यथार्थ चित्र देखने को मिले। सामाजिक रचनाओं में दलित वर्ग के प्रति भावुक सहानुभूति प्रकटकी तो साथ ही साथ सामाजिक ढांचा बदलने के लिये विप्लव और क्रान्तिकी मांग भी की। रहस्यवादी कविताओं में उन्होंने आनन्द और प्रकाश में इष्ट देव की कल्पना की लेकिन अपने जीवन की दारुण व्यथा को भी वे भुला नही सके। छन्द और भाषा में नए प्रयोग करके उन्होंने रीतिकालीन आचार्योंको बता दिया कि हिन्दी कविता में एक नये युग का प्रारम्भ हो गया है।

५

रीतिकालीन परम्परा और छायावाद

'परिमल' की रचनाओंमें क्या नवीनता थी, पुरानी परिपाटीसे वे कितना भिन्न थीं, यह हम देख चुके हैं। इस तरहके मौलिक कविके लिए यह आवश्यक होता है कि वह गद्यमें भी अपने विचारोंका स्पष्टीकरण करे। निरालाजीके गद्य लेख उनकी कविताओंसे पहले ही प्रकाशित होने लगे थे। 'सरस्वती' में बँगला और हिन्दीके व्याकरणकी तुलना करते हुए उन्होंने इस बातकी पहले ही सूचना दे दी थी कि बँगलाके माधुर्यके प्रशंसक होते हुए भी वे हिन्दीके सम्मानकी बराबर रक्षा करेंगे। उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण लेख बंगालके ही एक कवि श्री चण्डिदास पर था। 'प्रबन्ध प्रतिमा' में इसका रचना काल १६२० दिया गया है। इस निबन्धमें वैष्णव कविके जीवनके बारेमें प्रचलित अनेक किंवदन्तियोंका उन्होंने उल्लेख किया है। बङ्गालमें रवीन्द्रनाथ टाकुरके नतृत्वमें जो नवीन साहित्यिक आन्दोलन आरम्भ हुआ था उसका वैष्णव कवियोंसे अटूट संबंध था। इनके सरस गीतोंमें नए कवियोंको वह सहृदयता और मानवीय प्रेम मिलता था जो दरबारी कवियोंकी रचनाओंमें दुष्प्राप्य था। वैष्णव कवियोंपर रविबाबूने जो कविता लिखी है, उसमें उनकी भक्तिके इस मानवीय रूपकी ओर उन्होंने संकेत किया है। जिन कवियोंने राधा और कृष्णकी तन्मयताका ऐसा प्रभावशाली वर्णन किया था, उन्होंने अवश्य ही अपने जीवनमें उस तन्मयताका अनुभव किया होगा। इनमें चण्डिदास और रजक विधवा रामीका प्रेम तो भारत-प्रसिद्ध है। रविबाबूने इन पर कविताएँ और लेख ही नहीं लिखे, वरन् उनकी शैलीके अनुकरण पर 'भानुसिंहेर पदावली' की रचना कर

डाली थी। बङ्गलाकी रोमांटिक कविताका एक स्रोत यह वैष्णव कवि भी थे। हिन्दीके नए कवि जो बँगला भी जानते थे, अनिवार्य रूपसे इन कवियोंकी ओर आकृष्ट हुए। रवीन्द्रनाथकी प्रशंसाने उनके इस कार्यको सुगम बना दिया। निरालाजी अच्छी तरह जानते थे कि बंगालमें सभी मतों और विचारोंके कवि चण्डिदासके प्रशंसक थे। उन्होंने लिखा है, "बङ्गाल तो इनकी अमर कृतियोंका हृदयसे उपासक है। किसी दूसरे कविकी समालोचना करते समय बंगालमें चाहे पृथक्-पृथक् अनेक दल भले हो जायँ, परन्तु चण्डिदासके लिए सबके हृदयमें समान आदर, समान श्रद्धा और समान प्रेम है।" निरालाजीने वैष्णव कवियोंकी शृंगार साधनापर आगे चलकरभी लेख लिखे और गोविन्ददासके गीतोंका हिन्दीमें अनुवाद भी किया।

वैष्णव कविताका प्रेम रीतिकालीन परम्पराका विरोधी था, यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गई। 'काव्य साहित्य', 'बिहारी और रवीन्द्रनाथ' आदि लेखोंमें निरालाजीने इस बारेमें संदेहकी गुँजायश न रहने दी। चण्डिदास यदि रोमांटिक कविताके पुराने स्रोत थे, तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर उसके आधुनिक प्रतिनिधि कवि थे। उधर महाकवि बिहारीलाल रीतिकालीन परम्पराके मान्य आचार्य थे। हिंदीमें विवाद चला कि देव बड़े हैं या बिहारी। इस वाद विवादमें भाग लेनेवाले आलोचकोंने यह नहीं बताया कि देव और बिहारी एक ही साहित्यिक शृंखलाकी दो कड़ियाँ हैं। मध्यकालीन कवियोंमें चण्डिदासकी तरह तुलसी और सूर नए आन्दोलनको प्रभावित कर सकते थे परन्तु दरबारी परिपाटीसे उसका बैर था।

'बिहारी और रवीन्द्र' नामके लेखमें दो कवियोंका ही अन्तर नहीं दरसाया गया, यहाँपर रीतिकाल और छायावाद—इन दोनोंका परस्पर विरोध भी प्रकट किया गया है। निरालाजीने बिहारीपर आक्षेप किए हैं कि उनके भावोंमें नवीनता नहीं है, छन्दोंमें वैचित्र्य नहीं है, उनके साहित्यकी दुनिया बहुत संकुचित है, उक्तियोंमें एक प्रकारकी जड़ता है जो संकेतसे काम न लेकर हर चीज़को खुलासा कर देती है, बिहारीके भावों

से विकार पैदा होते हैं लेकिन रवीन्द्रनाथमें नवीनता, छन्द-वैचित्र्य, भाव-प्रसार, विचारोंकी संबद्धता आदि गुणोंके साथ मानवीय अनुराग है। 'तन्त्रीनाद, कवित्त रस, सरस राग रतिरंग। अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग।।'—इस दोहेको उद्धृत करके निरालाजी कहते हैं :—

'यह गुण बिहारीमें नहीं, रवीन्द्रनाथमें पाया जाता है। बिहारी तटस्थ रहते हैं, रवीन्द्रनाथ डूब जाते हैं।......बिहारी चित्रण कुशलता दिखानेकी फिक्रमें रहते हैं, परन्तु रवीन्द्रनाथ अपने विषयसे मिल जाते हैं।"

यहाँपर उन्होंने रोमांटिक कविकी तन्मयताको अपना आदर्श बनाया है। रीतिकालीन कवि अलंकार-सौंदर्यमें ऐसे उलझ जाते हैं कि रस तक उनकी पहुँच नहीं होती। यद्यपि रीतिकालमें रस शब्द को लेकर बहुत चर्चा हुई, फिरभी रसिकोंकी रचनाओंमें उसका स्रोत सूखा ही रहा। बादके आलोचकोंने अश्लीलताको ही सरसताकी संज्ञा दे दी। निराला जी टलाटलीवाले दोहेकी टीका उद्धृत करके उसे विकारपूर्ण कहकर उसकी निन्दा करते हैं :—"पतिदेव थोड़ी देरके लिए भी धैर्य नहीं रख सके। दूसरोंकी स्त्रियोंके बीचमें कूद पड़े और अपनी 'अर्जेंट' प्रार्थना सुना दी। समझमें नहीं आता कि इसमें कौन-सा चमत्कार है।" यह एक आश्चर्य की बात है कि इन सब दोहोंके रससे चटखारी लेने वाले आलोचक छायावादपर अश्लीलता का दोष लगाते थे। छायावादपर पं० पद्मसिंह शर्माका कोप समझमें आ सकता है जब हम इस लेखमें पढ़ते हैं :—"वृद्ध बिहारीकी कल्पना, उसपर पद्मसिंहजी भी कल्पना लड़ाते हैं। बहुत जगह चमत्कार पैदा करने में बिहारीसे जो कुछ कोर कसर रह जाती है उसे पद्मसिंहजी पूरा कर देते हैं।" नए कवि चाहते थे, स्त्रीको उसके सामाजिक और पारिवारिक रूपमें चित्रित किया जाय। रीतिकालीन कवियोंमें नारी को क्रीडा-कलाकी पुतली बनाकर मनुस्मृतिका श्राद्ध किया गया था। वे आलोचक शुद्ध प्रतिक्रियावादी थे जो भारतीयताकी दुहाई देकर स्त्रियों को रंगमहल या रसोईघरमें अपनी परिचारिका बनाकर

रखना चाहते थे। निरालाजीने एक वाक्यमें इस अन्तरको स्पष्ट कर दिया है —"बिहारी नायिका भेद बतलाते हैं परन्तु रवीन्द्रनाथ स्त्रियोंके स्वभाव का चित्रण करते हैं।"

अन्य छायावादी कवियोंके साथ निरालाजी भी विश्वव्यापी भावोंकी तलाशमें थे। विराट् चित्रोंके बिना उन्हें तसल्ली न होती थी। बिहारी-के दोहे और लघु-चित्र प्रसार चाहने वाले साहित्यके प्रतिकूल थे। परन्तु निरालाजीका आक्षेप रवीन्द्रनाथपर भी है कि बंग-बालाओंका चित्रण करनेके कारण उनमें कहीं-कहीं प्रांतीयता आ गई है। उनका आशय है, नारीको अप्सरा बनाकर उसे अनन्त सौंदर्य और अजर यौवनके प्रतीक रूपमें चित्रित न किया जाय तो विश्वव्यापी भाव संकुचित हो जायगा। वास्तवमें यह प्रश्न प्रांतीयता और सार्वभौमिकताका नहीं है बल्कि यथार्थ-वाद और काल्पनिकताका है। रीतिकालीन बन्धनोंसे नारीको स्वतंत्र करके छायावादी कवि उसे काव्यलोकमें उषाके सिंहासनपर ही बिठाकर दम लेना चाहते थे।

"काव्य-साहित्य" में निरालाजीने उन आलोचकोंकी खबर ली है जो छायावादपर विदेशी साहित्यके अनुकरणका दोष लगाते थे। ये लोग "अपने ही विवरके व्याघ्र बने बैठे रहते, अपनी ही दिशाके ऊँट बनकर चलते हैं।" युग बदल गया है लेकिन लोग समस्या-पूर्तिसे बाज नहीं आए। निरालाजीको अलंकारोंसे कम मोह नहीं है, परन्तु वह उनका मौलिक प्रयोग करते हैं। व्रजभाषाकी परम्परा और नयी काव्य-शैलीका अंतर दिख-लाते हुए कहते हैं : "हिन्दी साहित्यकी पृथ्वी अब व्रजभाषाका प्रलयपयोधि नहीं है, वह जलराशि बहुत दूर हट गई, राष्ट्रभाषाके नामसे उससे जुदा एक दूसरी ही भाषाने आँख खोल दी, पर 'घृतवानसिवेदम्' के भक्तों की नज़रमें अभी वहाँ वही सागर उमड़ रहा है। नहीं मालूम बेवक्तकी शहनाईके और क्या अर्थ हैं। एक समस्यापर बावन जिलेके कवि ढेर हो जाते हैं।" उन्हें इस बातसे संतोष होता है कि नए साहित्यिक आन्दोलनों का विरोध करनेवाले लोग हिन्दीमें ही नहीं हैं; वे अन्यत्र भी रहे हैं और

वहाँ असफल रहकर हिन्दीके उज्ज्वल भविष्यकी सूचना दे रहे हैं।

बावन ज़िलेके कवि किस बुरी तरहसे नए आन्दोलनका विरोध कर रहे थे, यह छायावादी कवियोंके क्रोधसे प्रकट होता है। निरालाजी इन्हें चुनौती देते हुए लिखते हैं—"हिन्दीके साहित्यिकोंका अन्याय सीमाको पार कर जाता है। उन्हें अपनी सूझके सामने दूसरे सूझते ही नहीं। हमें उनको आँखोंमें उँगली कर-करके समझाना है, और बहुत शीघ्र वैसे संकीर्ण विचारवालोंको साहित्यके उत्तरदायी पदसे हटाकर अलग कर देना है। तभी साहित्यका नवीन पौधा प्रकाशकी ओर बढ़ सकेगा।" छायावाद अभारतीय है और वह विदेशी साहित्यका अनुकरण करता है, इस तर्कको निरालाजीने एक ही वारमें खत्म कर दिया है। अपनी स्वाभाविक बोलचालकी शैलीमें उन्होंने ललकारा : "हज़ार वर्षसे सलाम ठोकते ठोकते नाकम दम हो गया, अभी मस्कृति लिए फिरते हैं।"

हिन्दीसे भिन्न भाषाओंके साहित्यके बारेमें उन्होंने घोषणा की कि जब तक भावोंका आदान-प्रदान न होगा, तब तक हिन्दीकी कूप-मडूकता भी दूर न होगी। कुछ नए साहित्यिक आन्दोलनपर अनुकरणका दोष लगाकर विरोधी आलोचक उसे जनतासे दूर रखनेकी कोशिश करते हैं। निरालाजीने इनका पैंतरा समझ लिया था, इसलिए उन्हींपर रूढ़िवाद-को सुरक्षित रखनेका आरोप लगाते हुए उन्होंने कहा —

"हिन्दीमें यदि चारों ओरसे परकोटा घेरकर अन्य देशों तथा अन्य जातियोंकी भावराशि रोक रखी गई, तो इस व्यापक साहित्यके युगमें हिन्दीका भाग्य किसी तरह भी नहीं चमक सकता और उसके साहित्यमें महाकवि तथा बड़े-बड़े साहित्यकोंके आनेकी जगह चिरकाल तक बनी रहे ठनी रहे होता रहेगा।"

छायावादका विरोध करने वाले पं० रामचद्र शुक्ल भी थे। साहित्य-में लोक संग्रहकी भावनाके वे समर्थक थे, इस प्रकार उन आलोचकोंसे उनका कोई सम्बन्ध न था जो कलाको दुनियासे दूर कल्पना लोककी चीज़ बना लेना चाहते हैं। छायावादपर उनके आक्षेपोंका यह आधार था कि

नयी कविता यथार्थसे दूर होती जा रही है और इसके बदले उसमें कल्पना-विलास बढ़ता जाता है। छायावादी कविताके सौंदर्यसे इनकार न कर पाने पर वह यह भी कहते थे कि इस तरहकी शैली तो पहलेकी अन्योक्ति वाली कवितामें भी है। वह इसे भी अस्वीकार न कर सकते थे कि नयी कवितामे लोक सग्रहकी भावना विद्यमान थी। वास्तवमें वह रहस्यवाद के विरोधी थे।

उनकी आलोचनाने यह रूप धारण किया कि रहस्यवाद भारतकी वस्तु नही है; उसे बाहर से उधार लिया गया है। 'काव्य-साहित्य' में निरालाजीने लिखा है —

"पडित रामचद्र शुक्लकी 'काव्यमें रहस्यवाद' पुस्तक उनकी आलोचनासे पहले उनके अहंकार, हठ, मिथ्याभिमान, गुरुडम तथा रहस्यवादी या छायावादी कवि कहलानेवालोके प्रति उनकी अपार घृणा सूचित करती है। ऐसे दुर्वासा समालोचक कभी भी किसी कृति-शकुन्तलाका कुछ बिगाड नही सके, अपने शापसे उसे और चमका दिया है।"

निरालाजी प्राचीन हिन्दी साहित्यके गौरवकी रक्षा करनेके लिए सदैव तत्पर रहे है। "पल्लव" की भूमिका पर उनका मूल आक्षेप यही था कि पन्तजीने इस गौरवका निरादर किया है। लेकिन इस गौरवके बहाने जो लोग नई प्रगतिका विरोध करते थे और पाठकोको यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि जो कुछ लिखना था वह तो ब्रजभाषाके कवि लिख चुके, नए कवि सिवा विदेशसे उधार लेकर बहकानेके अलावा कुछ नही कर सकते, उनके बारेमें निरालाजीने स्पष्ट कहा, "पुराना साहित्य हिन्दीका बहुत अच्छा था, पर नया और अच्छा होगा, इस दृष्टिसे उसकी साधना की जायगी।" उन्होने बताया कि ब्रजभाषाके प्रेमियोंसे किसीको द्वेष नही है लेकिन उन्हें अपने प्रेमसे नई संस्कृतिका बाधक न बनना चाहिए। ब्रजभाषाकी श्रेष्ठता जाहिर करनेके लिए अगर वे नई कविताके विरुद्ध झूठा प्रचार करते रहे तो "उन्हें प्रयत्न करके साहित्यके व्यापक मैदानसे हटा देना चाहिए। उनके द्वारा साहित्यका उद्धार नही हो सकता। वे

तो सिर्फ मनोरंजनके लिए काव्य-साधना करते हैं। किसी उत्तरदायित्व को लेकर नहीं।" छायावादी कवियोंने जिस तरह पुराने साहित्यका समर्थन या विरोध किया, उसमें उन्होंने ब्रजभाषाके प्रेमियोंसे अधिक उत्तर-दायित्व का परिचय दिया। वह यह माननेके लिए तैयार न थे कि विदेशी साहित्य की छाया पड़ते ही हिन्दीका चौका छूत हो जायगा। निरालाजीने कहा कि बहुत दिनोंसे एक ही तरहकी तस्वीरें देखते-देखते इनकी रुचि एक तरहकी बन गई है। यदि कोई भी उनके इस रूढ़िवादको धक्का देता है तो वे "अपनी अपार भारतीय संस्कृतिकी दुहाई देकर उसके देश-निकाले पर तुल जाते हैं।" अगर इन लोगोंसे पूछा जाता है कि भारतीय संस्कृति की कुछ ऐसी बातें बयान करें जो दूसरे देश में मिलती ही न हों तो जवाब देनेके बदले यह दुश्मनकी तरह देखने लगते हैं। निरालाजी अपनी आलो-चनामें लतीफोंका खूब प्रयोग करते थे। बनारसके एक गुजराती मित्रके पीताम्बरका जिक्र करतेहुए कहते हैं कि "पहलेके आदमी पीताम्बर पहनकर भोजन करते थे या दिगम्बर होकर, यह सब बतलाना बहुत कठिन है। पर अगर जरा अक्लका सहारा लिया जाय तो दिगम्बर रहना ही विशेषरूपसे सनातन धर्म जान पड़ता है, कारण सनातन पुरुषके बहुत बाद ही कपड़ेका आविष्कार हुआ होगा।" इसलिए भारतीय संस्कृतिकी रक्षाके लिए यह जरूरी नहीं है कि हम दिन पर दिन उसे और संकुचित करते जायें। ऐसा करने वाले उसके प्राणघातक शत्रु हैं। उसकी रक्षा तभी हो सकती है जब उसे और व्यापक बनाया जाय।

आलोचकोंका मुँह बन्द करनेके लिए उन्हींके गढ़में घुसकर मार-काट मचानेकी नीति भी निरालाजीने अपनाई। आलोचक कहते थे, तुम्हें भाषा लिखना नहीं आता, तुम्हें छन्दोंका ज्ञान नहीं, तुम्हारे भाव उधार लिए हुए और शब्द निरर्थक हैं। निरालाजीने कहा, पहले तुम्हारे साहित्यकी बानगी देखी जाय। तुम लोग हिन्दीके बड़े-बड़े सम्पादक हो, देखें, किस तरहकी भाषा लिखना सिखाते हो। इस युद्धके लिए "मतवाला" की "चाबुक" काममें आई। छद्म नामोंसे निरालाजी इस

स्तम्भमें हिन्दीके धुरन्धरोंके पैरोंके तलेकी जमीन खिसका देते थे। 'शारदा' में प्रकाशित एक कविताकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि पास, हास आदि अनुप्रास बड़े ढंगसे सजाए गए हैं क्योंकि "आजकलके तुक्कड़ तो बस अनुप्रासकी पूंछ पकड़कर कविता-वैतरणी पार होते हैं, भाषा और भावोंके सगठनपर चाहे पत्थर ही पड़ें।" इसके बाद उद्धरण देकर वह साबित करते हैं कि भाषा और भावोंपर किस तरह पत्थर पड़े हैं। अन्तमें कविताकी पैरोडी करते हुए लिखते हैं :—

"तुकबन्दी के लिए तुम्हें हम
धन्यवाद देते कविराज।
किन्तु, प्रार्थना, कविजी रखना
भाषा भावों की भी लाज॥"

"सरस्वती" को द्विवेदीजीने श्रेष्ठ पत्रिका बनाया था जो अंग्रेजीके "मॉडर्न रिव्यू" और बंगलाके "प्रवासी" से टक्कर लेती थी। निरालाजीने हिन्दी लिखना उसीसे सीखा था। लेकिन श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी-की भाषामें निरालाजीको "यत्र-तत्र नहीं, प्रायः सर्वत्र दोष ही दोष दीख पड़ते हैं।" इसी प्रकार "माधुरी" सम्पादकोंकी भी खबर ली गई। निरालाजीकी भाषा-संबंधी आलोचनाका एक नमूना यह है। 'माधुरी' में लाहौरपर एक लेख छपा था जिसकी पहली पंक्ति यों शुरू होती थी, "पुरातनकालसे चली आने वाली पंजाबकी राजधानी लाहौरने जितने परिवर्तन देखे हैं . ...।" निरालाजी "चली आनेवाली" टुकड़ेको लेकर कहते हैं, "श्रीमती लाहौरके पैर बड़े मजबूत हैं क्योंकि पुरातन कालसे चलती ही आ रही हैं। कहीं बैठी नहीं, विश्राम जरा भी नहीं किया। न जाने अभी कब तक चलना पड़े। उनसे प्रार्थना है कि हिन्दी संसारमें इस तरह मनमानी चाल न चलें, क्योंकि इस वनमें बबूलके कांटोंकी कमी नहीं है। छिद जायेंगे तो निकालनेमें आफत होगी। उनके सपूत पंजाबी उन्हें चलाते हों तो वे चलावें, पर लखनवी संपादक, नज़ाकतकी राजधानीमें रहनपर भी इतने बेदर्द हो जायें कि उन्हें चलनेसे न रोकें, यह

बड़े परितापकी बात है।"

अगर किसीके हृदयमें "पल्लव" शूलकी तरह चुभा हो, तो इसमें आश्चर्य क्या? निरालाजी बबूलका काँटा लिए हुए सभी हिन्दी सम्पादकोंका स्वागत करनेके लिए तैयार थे।

पंडित रूपनारायण पाण्डेय बँगलाके अनुवादक भी थे; निरालाजीको एक अस्त्र और मिला। एक जगह "फुलकी" का अर्थ पाण्डेयजीने "रोटी" लिखा था, जबकि उसका अर्थ चिनगारी था। बँगलाके वाक्यका अर्थ है, उसका तरुण हृदय आगकी चिनगारीकी तरह चारों ओर फैल रहा था। (ताहादेर भावप्रवण तरुण हृदय आगुनेर फुलकीर मतनेई स्वाधीन आनन्देर उज्ज्वलनाय क्षणे क्षणे आपनादिगके चारिदिके विकीर्ण करिते थाकितो)। पाण्डेयजीने अनुवाद किया था :—"उसका भाव-प्रवण तरुण हृदय सिक रही फुलकी (रोटी) की तरह ही स्वाधीन आनन्दकी तरह फूल फूल उठता था।" पाण्डेयजीके अनुवादपर टीका करते हुए निरालाजी कहते हैं :—"खूब! पण्डितजी, जान पड़ता है, जिस समय आप अनुवाद कर रहे थे, उस समय भूख बड़े जोरोंकी लगी थी, नहीं तो रोटी क्यों सेंकते? यहाँ न कहीं रोटी है न दाल, फुलकी है सो वह भी चिनगारी है रोटी नहीं।..... कल्पना भी कैसी! मूलमें तो है 'विकीर्ण करिते थाकितो' और अनुवादमें फूल फूल उठता था।'..........फूल-फूल उठना रूपनारायणजीकी रोटीके लिए ही उपयुक्त है। अच्छा है, सेंकिए रोटी।" यहाँपर यह कह देना आवश्यक है कि आगे चलकर निरालाजी पाण्डेयजीके प्रशंसक बन गए और उनके अनुवादोंकी बराबर दाद देते रहे।

युद्धभूमिमें यों ललकारे जानेपर हिन्दीके महारथी पीछे हटनेवाले न थे। पत्रिकाओंमें एक जबर्दस्त आन्दोलन शुरू हो गया कि निरालाके भाव चोरीके हैं और भाषाको दुरूह बनाकर वह जबर्दस्ती हिन्दीवालों पर रोब जमाना चाहते हैं। हिन्दीके महारथी दूध पीते बच्चे नहीं हैं जो यों रोबमें आ जायँगे। हिन्दीके जितने साहित्यकोंने निरालाजीका विरोध किया, उन सबका उल्लेख किया जाय तो साहित्यिकोंकी अच्छी खासी

स्तम्भमें हिन्दीके धुरन्धरोंके पैरोंके तलेकी जमीन खिसका देते थे।
में प्रकाशित एक कविताकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि प
आदि अनुप्रास बड़े ढंगसे सजाए गए हैं क्योंकि "आजकलके तु
बस अनुप्रासकी पूंछ पकड़कर कविता-वैतरणी पार होते हैं, भा
भावोंके संगठनपर चाहे पत्थर ही पड़ें।" इसके बाद उद्धरण दे
साबित करते हैं कि भाषा और भावोंपर किस तरह पत्थर पड़े हैं।
कविताकी पैरोडी करते हुए लिखते हैं :—

> "तुकबन्दी के लिए तुम्हें हम
> धन्यवाद देते कविराज।
> किन्तु, प्रार्थना, कविजी रखना
> भाषा भावों की भी लाज।।"

"सरस्वती" को द्विवेदीजीने श्रेष्ठ पत्रिका बनाया था जो अँग्रेजीके "मॉडर्न रिव्यू" और बँगलाके "प्रवासी" से टक्कर लेती थी। निरालाजीने हिन्दी लिखना उसीसे सीखा था। लेकिन श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीकी भाषामें निरालाजीको "यत्र-तत्र नहीं, प्रायः सर्वत्र दोष ही दोष दीख पड़ते हैं।" इसी प्रकार "माधुरी" सम्पादकोंकी भी खबर ली गई। निरालाजीकी भाषा-संबंधी आलोचनाका एक नमूना यह है। 'माधुरी' में लाहौरपर एक लेख छपा था जिसकी पहली पंक्ति यों शुरू होती थी, "पुरातनकालसे चली आने वाली पंजाबकी राजधानी लाहौरने जितने परिवर्तन देखे हैं ....।" निरालाजी "चली आनेवाली" टुकड़ेको लेकर कहते हैं, "श्रीमती लाहौरके पैर बड़े मजबूत हैं क्योंकि पुरातन कालसे चलती ही आ रही हैं। कहीं बैठी नहीं, विश्राम जरा भी नहीं किया। न जाने अभी कब तक चलना पड़े। उनसे प्रार्थना है कि हिन्दी संसारमें इस तरह मनमानी चाल न चलें, क्योंकि इस वनमें बबूलके काँटोंकी कमी नहीं है। छिद जायेंगे तो निकालनेमें आफत होगी। उनके सपूत पंजाबी उन्हें चलाते हों तो वे चलावें, पर लखनवी संपादक, न
राजधानीमें रहनेपर भी इतने बेदर्द हो जायँ कि उन्हें चलनेसे न रोकें

रविबाबूकी पहली चरखा विरोधी दलील यह थी कि विधाताने मनुष्योंको इसलिए पैदा नहीं किया कि वे मक्खियोंकी तरह एक ही नमूने का छत्ता बनाएँ। निरालाजी पूछते हैं कि विधाताकी यही इच्छा है, यह आपको कैसे मालूम हुआ? हिन्दू समाजके चार मुँह वाले विधाता अपनी राय सुना गए थे, या ब्राह्म-समाजके बिना नाक-कानवाले परमपिताने ही किसी खास तरीके से यह ध्वनि अदा की थी। निरालाजीकी रायमें यह युग उन लोगोंका है जो संघशक्तिमें विश्वास रखते हैं, और उसीके द्वारा संसारमें बड़े-बड़े कार्य संपन्न करना चाहते हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का पक्ष लेकर रविबाबू बेवक्तकी रागिनी छेड़ रहे हैं। संघ बद्ध होनेसे समष्टि और व्यष्टि दोनोंका ही फायदा पहुँचता है। सब आदमियोंका, अपनी दुर्दशा दूर करनेके लिए, एक ही कार्यमें सम्मिलित होना पाप नहीं है। "हम पुण्य उसे ही मानते हैं जिसमें अधिक संख्यक मनुष्यों को लाभ हो जिससे वे सुखी हों।"

निरालाजी मानते हैं कि कवि समाजका उतना ही उपकार करता है जितना कि राजनीतिक नेता। लेकिन चरखेके खंडनमें कविवर युक्ति से बाहर पहुँच गए हैं। अपने अज्ञानको ईश्वरके अस्तित्वका साक्षी न मान लेना चाहिए। एकाध जगह कविवरमें अपनी श्रद्धा भूलकर निरालाजी उनके वर्गपर प्रहार कर बैठे हैं, "भोजन-वस्त्रका सवाल किसी एक के लिए नहीं है। अनेकोंको उसके हल करनेकी आवश्यकता है—सिर्फ आप जैसे जमींदारोंको छोड़कर।" जो स्वतंत्रता संघ-कार्यमें बाधक होकर मनुष्यको वास्तविक स्वतंत्रता पानेसे रोकती है, उसका रूप निरालाजी ने अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। वह कहते हैं, "दरअसल जिसे आप व्यक्तिगत स्वतंत्रता कहकर चरखेका विरोध करना चाहते हैं, वह स्वतंत्रता के नकाबमें ढकी हुई घोर परतंत्रता और हठधर्मी है जबकि उससे व्यक्तिगत फायदेके बदले नुकसान होता है—असंगठित रहनेके कारण।"

यह लेख एकसे अधिक अंकोंमें निकला था, एक जगह उन्होंने अपनी बीमारीका जिक्र किया है जिससे लेख पूरा होनेमें विलम्ब हुआ।

अपनी स्थिति साफ करते हुए उन्होंने लिखा है कि विवादियोंमें अमृ और विष दोनों है। समय न मिलनेसे वह "गाँधीजीका जहर" निका कर जनताके सामने नही रख सके। सामाजिक विकासके पश्चिमी सिद्धा का खण्डन करते हुए वह भारतकी वर्ण-व्यवस्थाका समर्थन करते हैं छोटे-बडेके प्रश्नपर वह कहते हैं कि दर्शनशास्त्रमें सिर और पैरका भे नही माना गया। बौद्ध धर्म इसीलिए उखड़ गया कि वर्णाश्रम धर्मक विरोधी था। उन्होने रविबाबूके इस मतका खण्डन किया है कि युगो द्विज लोग शूद्रोंको धोखा देते रहे हैं और उनका शोषण करते रहे हैं आगे चलकर 'तुलसीदास' आदि कविताओंमें उन्होने इसी शोषण प्रभावशाली चित्र खीचे हैं। उनका वर्णाश्रम धर्म का यह समर्थन क्रमः निर्बल पड़ता गया।

इस लेखमें विचारोका एक सिलसिला नही बँध पाया। उनका लक्ष है कि हिन्दू-शास्त्रोंकी बुनियादपर रवीन्द्रनाथके मतका खंडन करें औ गाँधीजीके तर्कोंकी निर्बलता भी सिद्ध कर दें। इस महान् कार्यमें शास्त्रो निरालाजीकी उचित सहायता नही की।

इस लेखका महत्व इस बातमें है कि निरालाजीने मुक्त कंठसे समाज सेवाका महत्व स्वीकार किया और उस "स्वतंत्रता" का विरोध किया ज सभी मनुष्योंके सम्मिलित सुखी जीवनमें बाधक हो। पुरानी संस्कृति अभी इतना प्रभाव बाकी था कि वे वर्णाश्रम धर्मका समर्थन करें। इसक फल यह हुआ कि छायावादकी काल्पनिकता उनके यथार्थवादपर अपना र चढाने लगी। जिन करोड़ों दीन, किसानों का उन्होने जिक्र किया थ उनकी कहानी न लिखकर वे "अप्सरा" उपन्यासमें अपने ही अभावोंक सुखमय पूर्ति करने लगे। सन् '२५ से लेकर लगभग ८ वर्ष तक उन साहित्यमें इस कल्पनावादी प्रवृत्तिका जोर रहा। लेकिन इस पूर्तिसे उ कभी संतोष नही हुआ। काल्पनिक पूर्तिसे असंतोष और बढ़ता ही गया सन् '३३-'३४ के लगभग उनके साहित्यमें एक नयी यथार्थवादी धाराक जन्म हुआ।

६

नया कथा-साहित्य

सन् '३१ के आरम्भमें निरालाजीका पहला उपन्यास 'अप्सरा' प्रकाशित हुआ। भूमिकामें उन्होंने हिन्दीके सभी उपन्यासकारोंको ललकारा। उपन्यासकी तारीफ करते हुए कुछ लोगोंने उन्हें विक्टर ह्यूगो और तॉलस्तोयके बराबर गद्दी दी और कुछ लोगोंने कहा कि गंगा-ग्रंथागार ऐसी ही रचनाएँ प्रकाशित करेगा तो कुछ दिनमें कूड़ागार हो जायगा।

अप्सरा यानी कनक एक नर्तकी की लड़की है। एक महाराजकुमार गैरकानूनी तौरपर उसके पिता थे। एक दिन कनक कलकत्तेके ईडन गार्डेनमें बैठी हुई थी, तभी एक अंग्रेजने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। अप्सरा उसके यमपाशमें फँसनाही चाहती थी कि एक भारतीय नवयुवकने पीछेसे साहबको दबोच लिया। तरुण युवक कसरत-कुश्तीका शौकीन था, वह रियाज आखिर किस दिन काम आता? छूटकर फिर हुई तो साहब चित्त आए। कौन ऐसा युवक होगा जो एक सुशिक्षिता और सुन्दरी तरुणीके सामने एक गौरांग आततायीको धराशायी करके इस प्रकार अपना शौर्य प्रदर्शित न करना चाहता? वह युवक कल्पनामें जिस परिस्थितिकी तस्वीर देखा करता होगा, वह अचानक सामने आ गयी। वह कुछ-कुछ हिन्दीका लेखक भी था। रंगमंचसे उसे बड़ा प्रेम था, यद्यपि हिन्दीके रंगमंचसे उसे बड़ा असंतोष था। वह अपने अभिनय द्वारा एक महान् परिवर्तन करके एक नए रंगमंचकी नींव डालना चाहता है।

कनक महाराजकुमारकी लड़की थी और युवक भी कम-से-कम नाममें राजकुमार है। शकुन्तला नाटकमें वह दुष्यंत बनता है। शकुन्तलाका पार्ट लाजमी तौरपर कनक करती है। इस रहस्यको राजकुमार स्टेज

घर ही जान पाता है। अपनी कल्पना-लोककी आदर्श तरुणी अभिनेत्री के रूपमें देखकर रंगमंचके लिए उसका सारा उत्साह ठंडा पड जाता है, कनकके प्रति उसके हृदयमें घृणा उत्पन्न हो गई। शायद नाटक बिगड जाता लेकिन तभी पुलिस सुपरिण्टेंडेंटन आकर राजकुमारका उद्धार किया। यह वही महाशय थे जिन्होंने कनकका हाथ पकडा था और जिनपर राजकुमारने अपने खास दाँव रखाँ किए थे। किसी तरह पार्ट पूरा करनेकी मोहलत मिली और वह हिरासतमें ले लिया गया।

कनकके प्रति राजकुमारके हृदयमें भले ही घृणा रही हो, कनकके हृदयमें तो उसके लिए प्रेमका समुद्र उमड रहा था। उसने त्रिया-चरित्र का वह जाल फैलाया कि सुपरिण्टेंडेंट हैमिल्टन उसकी धोती पहनकर नाचने लगे। दारोगा साहब अलग कमरेमें बित्त हुए और मैजिस्ट्रेट रॉबिन्सन साहब वहाँ आकर यह सब देखते ही रह गए। इस तरह कनकने उस प्राचीन भठियारिनकी परम्पराको निबाहा जिसने दारोगाके मुँहमें कालिख लगाकर उन्हें दीवट बनाया था और कोतवाल साहबको लहँगा पहनाकर उनसे चक्की पिसवाई थी।

कनक अपने प्रेमीको छुडाकर घर ले आती है लेकिन देश-सेवाका व्रत लेनेके कारण वह प्रेमीके दर्जे तक नहीं पहुँचता। Traveller must you go ? (पथिक ! क्या जाओगे ही ?) की नायिकाकी तरह अपने बाहुपाशमें वह उसके चरणोंकी गति बाँध रखना चाहती है लेकिन राजकुमार पथिकसे भी अधिक कठोर-हृदय होकर उसका हाथ झटक देता है और चूडियोंके टूटनेसे कनककी कोमल कलाईसे रक्तकी बूँदें टपकने लगती हैं। -क्रांतिकारी राजकुमार अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करता हुआ वहाँ से भाग निकलता है। उसका साथी चन्दनसिंह पकड लिया गया है, इसलिए इस निष्ठुर बिदाईके लिए उसे कुछ बहाना भी मिल जाता है।

राजकुमार कनकके यहाँसे चन्दनकी भाभीके यहाँ पहुँचता है और अपने साथीकी क्रांतिकारी पुस्तकें वहाँसे हटाता है। - फिर भाभीको लेकर

मायके छोड़ने चल देता है। उधर कनककी माँ सर्वेश्वरी एक कुँअर साहबसे बयाना लेकर पुत्री सहित वहाँ जा पहुँचती हैं जहाँ चन्दनकी भाभी का मायका है। कनक बुरी तरह घिर जाती है और इस बार चंदन उसकी रक्षा करता है। पुनर्मिलन होना स्वाभाविक था। सब लोग कलकत्ते आते हैं और राजकुमार तोबा तोड़कर कनकसे विवाह कर लेता है। उसके नाम गिरफ्तारीका वारंट भी है। उसका साथी चन्दन अपना नाम राजकुमार बताकर अपने को पकड़ा देता है और इस तरह कनक और राजकुमार का मार्ग निष्कंटक हो जाता है।

"अप्सरा" में आजकलके सिनेमा-कथानकोंके बहुतसे गुण मौजूद हैं। रोमांसके साथ देशसेवाका आवश्यक पुट विद्यमान है। नायक पढ़ा-लिखा, देखने-सुननेमें सजीला और देशका सेवक भी होना चाहिए। अगर वह क्रांतिकारी हो तो देशसेवामें घटना-वैचित्र्य भी आ जाता है। नायिका धनी हो और उसे नायकके त्यागमय जीवनसे सहानुभूति हो, इससे अधिक मनोहर दृश्य और क्या होगा? विरोधियोंकी आशंकाओंके विपरीत 'अप्सरा' को काफी लोकप्रियता मिली और निरालाजीने अन्य कथाओंमें नायक-नायिकाओंकी एक चित्रावली तैयार कर दी जिनकी शक्ल-सूरत कनक और राजकुमारसे मिलती-जुलती है।

राजकुमार साहित्यिक है, कुश्ती-कसरतका शौकीन है, क्रिकेटमें सेंचुरी मार चुका है, एम. ए. का विद्यार्थी है, काफ़ी अमीर है हालांकि कमरेमें बीड़ीके टुकड़ोंका ढेर है। अपने पुराने संस्कारोंके कारण वह वैवाहिक जीवनको पथसे भटकना समझता है। वह उसी राहपर चलना चाहता है जिसपर शंकराचार्यसे विवेकानन्द तकके ब्रह्मचारी साधु चले थे। उसे वेश्या-पुत्री कनक मिलती है जो एक प्रसिद्ध भजन गाती है— 'श्री रामचंद्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणम्।' उसका ऐश्वर्य, रूप, शिक्षा सभी अनुपम हैं। हिन्दी ही नहीं, अंग्रेज़ीकी भी उसे ऐसी शिक्षा मिली है, कि सुनकर अंग्रेज मॅजिस्ट्रेट भी प्रभावित हो जाता है। ये सब कार्य उसने सोलहकी अवस्थामें ही संपन्न कर लिए हैं। 'गीतिका

में जिन सुन्दरियोका गौरवगान किया गया है, मानो यहाँ गद्यमें उन्हीकी विस्तृत व्याख्या की गई है। "कनक धीरे-धीरे सोलहवें वर्षके चरणमें आ पडी। अपनी देहके वृन्तपर अपलक खिली हुई, ज्योत्स्नाके चन्द्र-पुष्पकी तरह, सौंदर्योज्ज्वल पारिजातकी तरह एक अज्ञात प्रणयकी वायुसे डोल उठती है।" उपन्यासके अन्तमें यह भावना नही है कि विवाह करने से राजकुमार का पतन हुआ। देशका काम तो उसने चन्दनके लिए छोड दिया है और वह मनमें सोचता है, "मैंने परिपूर्ण पुष्प देह देकर सम्पूर्ण स्त्री-मूर्ति प्राप्त की, आत्मा और प्राणोंसे सयुक्त, साँस लेती हुई, पलकें मारती हुई, रससे ओत-प्रोत, चन्चल, स्नेहमयी।" उपनिषदके एक मन्त्रमें कहा गया है कि ब्रह्मकी प्राप्तिसे वैसे ही सुख मिलता है, जैसे स्त्री और पुरुषको परस्पर मिलने से। निरालाजीने इस मन्त्रको उलटकर यो पढा है, "ब्रह्म मिलनेपर जिस तरह सतोष होता है, राजकमारको वैसी ही तृप्ति हुई।"

उपन्यासमें घटनाओंकी प्रधानता है और घटनाएँभी इस असाधारण कोटिकी है कि उनपर सहसा विश्वास नही होता। राजकुमारका मानसिक द्वद्व सीधा सादा और बचकाना है। चन्दन उसीका दूसरा रूप है और एक व्यक्तित्वके दो टुकडे करके ही निरालाजी विवाह और देशसेवाकी गुत्थी सुलझा सके है। चन्दन काफी विलम्बसे उपन्यास में प्रवेश करता है और उसके आनेसे राजकुमार का रग फीका पड जाता है। चन्दन और राजकुमार—दोनो ही के चरित्रोंमें युवकोचित कल्पनाओं को आदर्श रूप दिया गया है। ये ऐसे व्यक्ति है जो साधारणत नवयुवकोके कल्पना-लोकमें निवास करते है और यथार्थकी ठोस धरती पर चलते फिरते कम दिखाई देते है। इसके विपरीत साधारण पात्रोका चित्रण बहुत ही सजीव हुआ है। जैसे कुँअर साहब जिनका नाम "प्रतापसिंह था; पर थे वे बिलकुल दुबले-पतले। इक्कीस वर्षकी उम्रमें ही सूखी डालकी तरह हाथ-पैर, मुँह सीपकी तरह पतला हो गया था। आँखों-के लाल डोरे अत्यधिक अत्याचारका परिचय दे रहे थे।" नाटक देखने-

वालो और कचहरीके वकीलोका वर्णन करते हुए निरालाजीने अपनी *व्यग्यपूर्ण शैलीका परिचय दिया है। गाँवकी स्त्रियोकी बातचीत भी बडी* स्वाभाविक है। यहाँ उस यथार्थवादका सकेत मिलता है जिसे अपनाकर निरालाजी अधिक सजीव कलाके उदाहरण दे सके।

"अलका" उपन्यासके नाममे "अप्सरा"की झकार है। नामसे यह नही मालूम होता कि इस उपन्यासका सबध किसानोके जीवनसे भी होगा। "अलका" का वास्तविक नाम शोभा है और इन्फ्लुएजामे परिवार नष्ट हो जानेके कारण वह स्नेहशकरके यहाँ आश्रय पाती है। अप्सराकी तरह अलका भी "पिताके सुखकर वृन्तपर प्रस्फुट कली सी कल्पनाके समीर से अपनी ही हद मे हिल रही है—सरोवरके वृक्षपर फलित एक किरण उसमे नवीन जीवनकी चपलता।" यह रोमास अब कितना नीरस हो रहा था, इसका प्रमाण यह है कि वृन्तपर खिली कलीके सिवा निराला-जीको और कोई उपमा ही न मिलती थी। इसका नायक एक विद्यार्थी है जिसे "अप्सरा"के राजकुमारकी तरह राजनीतिसे दिलचस्पी है। जैसे अप्सरा ने पुलिस सुपरिण्टेंडेंटको प्रभावित कर लिया था, वैसे ही विजय भी डिप्टी-साहबके सामने पेश होकर उन्हे प्रभावित कर लेता है। उसका छद्मनाम प्रभाकर है और इसी नामका एक और नायक एक अगले उपन्यास "चोटी की पकड" मे आता है। ताल्लुकेदार मुरलीधरके गुर्गे गाँवकी बहू शोभा को पकडकर उसे मालिककी नजर करना चाहते है। उसका पति विजय कलकत्ते के बजाय बम्बईमे विद्यार्थी है। कलकत्तेके चित्रणमे ईडन गार्डेन वगैरह का जिक्र था, लेकिन बम्बईका सिर्फ नाम ही नाम है। विजयको न तो हम मेरीन ड्राइव पर टहलते देखते है और न जुहू बीच-पर किसी अप्सरा पर आक्रमण करने वाले किसी गोराग आततायीको वह पछाडता है। पतिके पास रहते समय शोभाके मायके और ससुरालके परिवार इन्फ्लुएजामे नष्ट हो जाते है। वह एक आदर्श जमीदार स्नेह-शकरके यहाँ आश्रय पाती है। वह परम ज्ञानी और साधु पुरुष है यद्यपि वे लगान कैसे वसूल करते है, इसकी कोई ज्ञानमय पद्धति निरालाजीने नही

बताई। उनके रामराज्यमें ज़मीदार और किसान दोनो ही खुश है। विजय बम्बईसे लौटकर किसानोमें काम करता है और इसके लिए उसे साल भर की सजा भी होती है। छूटनेके बाद वह मजदूर-आन्दोलन की तरफ खिंचता है और कुलियोमें जाकर काम करने लगता है। शोभा भी बिना पतिको पहचाने इस सेवा-क्षेत्रमें उससे भेंट करती है। प्रीति पुरातन लखै न कोई दोनो एक दूसरेकी तरफ खिंच जाते है। पड़ोसमें खलनायक मुरली बाबू भी आकर ठहरते है और अन्तमें अलकाकी गोली खाकर इस असार ससारसे विदा हो जाते है। अलका और प्रभाकर अपने मौलिक रूपमें शोभा और विजय बनकर अपने विवाहित जीवनका मूल और अविवाहित रोमासका ब्याज वसूल करते है। चन्दनका दूसरा रूप अजित है जो विजयसे कहता है : "तुम्ह वही किसान फिर बुला रहे है भाई।" पता नही, राजकुमारकी तरह वह भी परमतत्वका आनद लेता रहा या फिर किसानोका सगठन करने गया।

सन् '३० में जो आन्दोलन चला था, उससे किसानो की स्थितिमें कोई मौलिक परिवर्तन न होगा, यह निरालाजीने देखा था। लेकिन जो भी परिवर्तन होगा वह किस तरह होगा, इसकी साफ तसवीर "अलका" में नही आई। स्नेहशकर को देखकर तो मालूम होता है कि अगर इसी तरहके सभी ज़मीदार हो तो ज़मींदारी प्रथाके होते हुए भी किसानोके लिए रामराज्य हो जाय। स्नेहशकर कहते है "जनता वाह वाह करती है और बजानेवाले देवताको पुष्पमाला लेकर यथाभ्यास जैसा सुझाया गया, पूजनेको दौड़ती है।" इसमें सदेह नही कि बहुत से नेता जनता को भ्रममें डाल देते है, परन्तु यह भ्रम बहुत दिनो तक नही चलता। किसान अपने अनुभवसे सच और झूठका भेद समझ लेते है। स्नेहशकर किसानो में शिक्षा-प्रचार पर ज़ोर देते है लेकिन उन्हें क्या सिखाया जाय, यह नही बताते। इसी प्रकार विजय किसानोका सगठन करने तो जाता है लेकिन वे सगठित होकर किसके खिलाफ और कैसे लड़ेंगे यह वह साफ-साफ नही बताता। यह स्पष्ट है कि यह उपन्यास निरालाजीके जीवनमें सक्रमण-कालका द्योतक है,

वे इस बातका अनुभव करने लगे हैं कि उनकी रोमासकी दुनिया ज्यादा दिन न चलेगी। अपनी कलाके विकासके लिए जनताके दुख-दर्दकी तस्वीरें खीचना जरूरी है।

उपन्यासके प्रारम्भमें उन्होंने पहले महायुद्धके बाद अवधकी दुर्दशा का प्रभावशाली वर्णन किया है। गगाके किनारे उन्होंने जो लाशोका जमघट देखा था, उसे उन्होंने कथाकी पृष्ठभूमि बनाया है। आगे चलकर उन्होंने 'कुल्लीभाट' में इसी दृश्यका और विस्तार से वर्णन किया। 'अलका' में लिखा था "गगाके दोनो ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट हैं, उनमें हरएक पर एक एक दिनमें दो-दो हजार लाशें पहुँचती हैं। जल-मय दोनों किनारे शवोसे ढँके हुए, बीचमें प्रवाहकी बहुत ही क्षीण रेखा, घोर दुर्गन्ध दोनो ओर एक-एक मील तक रहा नही जाता।" इसके साथ लडाईमें जीतनेकी खुशियाँ हैं खुशियाँ मनानेके लिए किसानोपर अत्याचार होता है और इस अत्याचारका मुकाबला करनेके लिए किसानोंमें बहुत हल्की-सी प्रतिक्रिया होती है। गदरमें जिन लोगोने देशके प्रति विश्वास-घात किया था, वे विदेशी प्रभुओके साथ मिलकर किसानोके शोषक बन गए। इसी तरहके ताल्लुकदार बाब मुरलीधर है। निरालाजी ने इन्हें एक ही वाक्यमें अमर कर दिया है "जबसे मुरलीधर पैतृक सिंहासनपर अपने नामकी मुरली धारण कर बैठे, बराबर सनातन प्रथाके अनुसार सरकारी अफसरोकी सुहावनी सोहनी छेडते जा रहे हैं।" इस व्यग्यपूर्ण शैलीमें निरालाजीका कौशल अद्वितीय है।

गाँवके किसानोंमें स्वराज्यको लेकर बडा मनोरजक विवाद होता है। इस समस्याके सभी यथार्थवादी पहलू उनके सामने हैं और उनसे नजर चुरा-कर वे समस्याके हल करनेमें विश्वास नही करते। उनकी समझमें नही आता कि पुलिस तोपवाली सरकार किसानोंका राज कैसे बन जाने देगी। एक किसान चमत्कारोका सहारा लेकर कहता है कि "गधी महरानी" के प्रताप से पुलिस और फौजके हाथ बंधे रह जायेंगे। तभी बेगार न करने के लिए बुधुआ किसान पर मार पडती है और यह चमत्कारवाद वहीं समाप्त

हो जाता है।

"अलका" के कथानकमें कई एक सूत्र हैं और कहीं-कहीं तो वे एक दूसरेसे छूट भी जाते हैं। अजित और वीणाका एक गुट है, स्नेहशंकर और शोभा का दूसरा, मुरलीमनोहर और उनके गवैया तीसरा। इतने पात्रोंको खुलकर बढ़ने और विकसित होने का अवसर नहीं मिलता। शोभा ज्योति की पुतली बनी रहती है मानो उसकी रचना इसीके लिए हुई है कि लोग उसे देखें तो बस देखते ही रह जायें। उसके चरित्रमें प्रकाश और छायाका नाटकीय सम्मिश्रण, भावोंका उतार-चढ़ाव, मानव-सुलभ दुर्बलता और संघर्ष, इन सबका अभाव है। उपन्यासके यथार्थवादी वातावरणमें शोभा ऐसे चित्रित की गई है जैसे कँटीले झाड़ोंके बीच जुहीकी कली खिली हो। लेकिन उन कँटीले झाड़ोंके ही कारण निरालाजीके साहित्यिक विकासमें यह एक नया कदम है।

निरालाजीकी छायावादी कहानियाँ मानो उनके उपन्यास "अप्सरा" का ही छोटा प्रतिचित्र हैं। बड़े कैनवसके बदले जैसे कागजके छोटे-छोटे टुकड़ोंपर वॉटर कलरसे रंगामेजी की हो। कहानीकी हीरोइनें प्रायः सभी सोलहवें सालकी अधखुली कलियाँ हैं और हीरो या तो बड़े बापका बेटा है या पढ़ लिखकर खुद उतनाही बड़ा बन जाता है। राजनीतिमें उसका झुकाव आतंकवादकी ओर होता है और देश-सेवा के लिए वह रामकृष्ण मिशनके साधुओंकी तरह ब्रह्मचर्यको भी आवश्यक समझता है। लेखकके सामने देशकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याएँ आती हैं लेकिन इनका समाधान कभी वह अध्यात्मवादसे करता है, कभी ऐसे यथार्थ-वाद से जो अध्यात्म-तत्त्व की ही तरह आदमीकी पहुँचसे बाहर है।

उनकी हीरोइनोंके कुछ चित्र देखिए। यथा,—"चन्द्रमुखपर षोडश कलाकी शुभ्र चन्द्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुंजकी कली-सी, प्रणयके वासन्ती मलय-स्पर्शसे हिल उठती, विकासके लिए व्याकुल हो रही है।" ज्योतिर्मयी—"नील पलकोंके पंखोंमे युवतीकी आँखें अप्स-

रात्री-सी प्रकाशकी ओर उड़ जाना चाहती है, जहाँ स्नेहके कल्प-वसन्तमें मदन और रति नित्य मिलते हैं।" कमला—"सोलहवें सालकी अध-खुली धुली मलिका है। हृदयका रस अमृत-स्नेहसे भरा हुआ, खिली नावों-सी आँखें, चपल लहरोंपर अदृश्य प्रियकी ओर परा और अपराकी तरह बही जा रही है।" आभा—"आजकी शरत्‌की तरह अपनी सारी रंगीनियोंको धोकर शुभ्र हो रही—श्वेत शेफाली-सी रँगे प्रभातके रश्मि-पात मात्रसे वृन्तच्युत—जैसे केवल देवार्चनके लिए चुनी हुई। पर, प्राणोंके नीचे डंठलमें जो रंग लगा हुआ है, वह तो शरत्‌का नहीं, वसन्तका है।"

हिन्दी कहानी-साहित्यमें निरालाजीने इन छायावादी हीरोइनोंका गृहप्रवेश कराया। इन आकाशकी ओर उड़ती आँखों, अम्लान शुभ्र, चन्द्रिका और मलय-स्पर्शके आगे पुरानी नायिकाएँ उन्हें फीकी लगी हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? "लिली" कहानी-संग्रहकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है : "मुझसे पहलेवाले हिन्दीके सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक इस कला को जिस दूर उत्कर्ष तक पहुँचा चुके हैं, मैं पूरे मनोयोगसे समझने का प्रयत्न करके भी नहीं समझ सका। समझता, तो शायद उनसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता और पतनके भय से इतना न घबराता।" निरालाजी हिन्दी कहानियोंके उत्कर्षको क्यों नहीं समझ पाए, इसका कारण उनकी छायावादी हीरोइनोंका अनुपम उत्कर्ष ही है।

"पद्मा और लिली" कहानी का हीरो राजेन्द्र जजका बेटा है, विला-यतसे बैरिस्टरी पास करके देश-सेवाके काममें लग जाता है। पद्मा के पिता ऑनरेरी मजिस्ट्रेट हैं और वह राजेन्द्रके साथ कॉलेजमें पढ़ती है। दुर्भाग्यसे पद्मा ब्राह्मण है और राजेन्द्र क्षत्रिय। पिता मरते-मरते कह गए कि बेटी दूसरी जातिमें ब्याह न करे। इस सामाजिक समस्याका *समाधान या तो दोनोंमें से एकके मरनेसे हो सकता था या फिर जाति-बन्धन* तोड़कर दोनोंके ब्याहमें। निरालाजीने एक तीसरा समाधान ढूँढ़ निकाला।

जजका बेटा और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेटकी बेटी दोनों ही अखंड ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करके देशकी सेवा में लग जाते हैं।

"सखी" कहानी का नायक आई० सी० एस० है। निर्धन लीला एम० ए० में पढ़ती है और ट्यूशन करके किसी तरह अपना खर्च चलाती है। लखनऊमें भैसाकुण्डकी सड़कपर गुण्डे उसका पीछा करते हैं, तभी उसके कल्पना लोकका आई० सी० एस० सड़कपर आकर उसकी रक्षा करता है।

"न्याय" कहानीका हीरो एक घायल आदमीको घर लानेके कारण पुलिसके चगुलमें फँस जाता है। अप्सराकी तरह उसकी सहपाठिनी प्रेमिका अपनी विलक्षण बुद्धिसे उसे छुड़ा लाती है।

"सफलता" का नायक साहित्यिक नरेन्द्र है। पैसोंका मोहताज है, इसलिए प्रेमिका आभाको साथ नहीं रख सकता। सोचता है कि नाटक मंडली चलानेसे बहुत-सा पैसा हाथ आ सकता है और फिर तो धूर्त प्रकाशको की अक्ल भी ठिकाने लगाई जा सकती है। वह आभाको संगीत की शिक्षा देता है और बढ़ते-बढ़ते अभिनेतासे कम्पनीका धनी मालिक बन जाता है। इधर उसका पुराना प्रकाशक भी पुस्तकोंकी बदौलत सिनेमा साहित्यका उद्धार करनेके विचारसे "पवित्रा" नामकी एक रंगशाला बनवा लेता है। नरेन्द्रकी कम्पनी उसके नगरमें पहुँचती है तो प्रकाशक उससे अपनी रंग-शालामें अभिनय करनेके लिए कहता है। शर्त तय न होने पर नरेन्द्र पुरानी कसर निकालता है और कहता है . "बाबू धनीराम जी ! मैं छः महीनेमें एक किताब लिखता था पर उसके लिए आपने मुझे पन्द्रह रुपया सैकड़ा भी नहीं दिया।" यों प्रकाशकसे बदला लेकर नरेन्द्र बाहरकी पृथ्वीमें प्रकाशकी तरह प्रसिद्ध हो जाता है।

इसी तरहका प्रतिशोध "श्यामा" के नायकने अपने विरोधियोंसे लिया है। वह ब्राह्मण है लेकिन लोधकी लड़कीसे ब्याह करता है। पढ़-लिखकर डिप्टी-कलेक्टर हो जाता है और फिरतो यह लाजमी था कि उसीकी अदालतमें उसके पुराने दुश्मन पंडित दयारामका मुकदमा

पेश हो। इसकेबाद पंडित दयाराम हाकिमके बँगलेपर सौ रुपएकी डाली सजाकर पहुँचते हैं। श्यामा ने पिताके अपमानको याद करके हुए अपने अर्दलीको आज्ञा दी : "डाली समेत इसे कान पकडकर बाहर निकाल दो।"

एक प्रतिशोधकी कहानी और भी लीजिए। 'कमला" के पति एक झूठे अपवादके कारण उसे छोड देते हैं लेकिन वह एक सच्ची पतिव्रताके समान पतिदेवकी आराधनामें लगी रहती है। उसकी तपस्याके प्रभावसे या दैवगतिसे पतिदेवकी ही बहन ऐसी परिस्थितिमें पड जाती है कि गाँवके लोग उनसे किसी तरहका व्यवहार नहीं रखना चाहते। न्याय ठुकराई हुई पत्नीके यहाँसे पतिदेवको भीख मँगवाता है। भिक्षुक पतिको कमला पहचान लेती है और उनके अपराध ही क्षमा नहीं करती वरन् जातिसे निकाली हुई उनकी बहनके ब्याहके लिए अपने भाईको भी पेश कर देती है। परन्तु कमला फिर पतिके पास नहीं आती। "स्त्रियाँ उसे देवीके भावसे मन-ही-मन अपना आदर्श मानकर पूजती हैं।" इस कहानीमें समस्या का समाधान नहीं हुआ। परित्यक्ता नारी स्त्रियोंसे पूजे जानेपर भी फिर अपने गृहणीके स्थानको नहीं पा सकी। ऐसी ही एक समस्याका काल्पनिक समाधान "ज्योतिर्मयी" में है। वह बाल-विधवा है लेकिन ससुराल कभी नहीं गई और उसे पतिका स्मरण तक नहीं। वह विजयसे ब्याह करना चाहती है लेकिन विधवा होनेके कारण समाज उसके आडे आता है। यह गुत्थी सुलझानेके लिए विजयका मित्र वीरेन्द्र अठारह हजार रुपए खर्च कर देता है। वह अपने बापका इकलौता बेटा है, इसलिए पिताजी उसके किसी काम में दखल नहीं देते; फिर यह तो धरमका काम था। वीरेन्द्र अपने मैनेजर को लडकीका बाप बनाकर उससे कन्यादान करा देता है। इसपर रुद्राक्ष की माला पहनने वाले और रक्तचन्दनका टीका लगाने वाले विजयके पिता को भी कोई आपत्ति नहीं होती।

"अर्थ" की समस्या शीर्षकके अनुसार ही आर्थिक है। पिताकी मृत्युके बाद सीधासादा युवक रामकुमार लोगोंके बहकानेमें आकर सारी

पूंजी योंही उडा देता है। युवती पत्नीका भार अलग सभालना है। अन्त में वह भरतजीसे सहायता लेने का निश्चय करता है। विश्व भरण पोषण कर जोई उसीका नाम हो भरत है। उसे विश्वास है कि जप पूरा होने पर भरतजी अपना नाम अवश्य सार्थक करेंगे। पूजाके उपरान्त वह भावी धन प्राप्तिका सुख-संवाद पत्नीको सुनाने जाता है। भरतजीसे कोरा जवाब मिलने पर दफ्तरोंमें अर्जियां देता है। अन्तमें चित्रकूटके पते राजा रामचन्द्रके दरबारमें अर्जी लगाता है।

डी० एल० ओ० से होती हुई चिट्ठी वहां से भी लौट आई। त उसने खुदही चित्रकूट जाकर इंटरव्यू करनेका इरादा किया। झाड़ झखाडोंमें उलझने और पत्थरोंपर फिसलनेके बाद उसने रामचन्द्रजीके दर्श किए। उसके मन ने शंका की, क्या भगवान यही हैं? माथेके ऊपर आवाज आई, "हैं, हैं!"। उसने आंख उठाकर ऊपर देखा, एक सुग्गा बैठ हुआ टें-टें कर रहा था। विश्वास हो जानेपर पृथ्वी सचमुच ही चक्क खाने लगी। घूमते घूमते प्रकृति आकाशमें विलीन हो गई। अन्त उसे अपने शरीरका बोधही न रहा। होश आनेपर फिर सोचा, —"ज कुछ देखा है, क्या वह सच है?" फिर सुन पडा—"हां, हां।" सुग्गा फि उड गया। उसका मन अज्ञानवाले कोठेमें जाना ही चाहता था कि किसी कहा—"उठ उठ!" चरवाहे लडकोंने उसे एक गांवमें भेजा जह एक पुराने मित्रसे मुलाकात हुई। रातमें उसने सपना देखा कि उसका मि सूर्यकी तरह प्रकाशमान, धनुषबाण धारण किए साक्षात् रामचन्द्र हैं। व कह रहे हैं —"तुमने अर्थके लिए बडा परिश्रम किया, मैंने तुम्हें दिया। इस प्रकार भगवानकी कृपासे अर्थकी समस्या स्वप्नमें हल हो गई। भग को नौकरी मिल गई; फिर वह उपन्यास लेखक हो गया। यह ठ्र है कि पहला उपन्यास मुफ्त ही छपने देना पडा। "चार ही सालमें व उपन्यास-साहित्यकी चोटीपर पहुंच गया। कई हजार रुपए उसने एक घर लिए। सारा ऋण चुकादिया और अब विद्याके साथ सुखपूर्वक रहता है

जैसे इनके दिन बहुरे वैसे राम करें, सभी उपन्यास-लेखकोंके बहुरें।

यह तो आर्थिक समस्याका समाधान हुआ, इसी तरह देशकी राजनीतिक समस्या भी हल की गई है। "भक्त और भगवान" का युवक प्रश्न करता है, "ये गरीब मरे जा रहे हैं इनके लिए क्या होगा ?" और महावीरजी उत्तर देते हैं, "इन्हें वही उभाड़ेगा, जो वहाँके राजाको उभाड़ता है। तुम अपनेमें रहो, दूर मत जाओ।"

भक्तके पिता रियासतके नौकर हैं। भक्त इस बातको जानता है, फिर भी उसके मनपर इस दासताका प्रभाव नहीं है। संसारका ताप पिता रूपी वृक्षपर है, भक्तके लिए केवल छाँह। वह विद्यार्थी-जीवन बिता रहा है। भक्तिके गीत सुनकर उसके हृदयमें मानो पूर्व संस्कार जाग उठते हैं। गाँवके बाहर पीपलके नीचे महावीरजीकी मूर्ति है। उन्हें देखकर वह सोचने लगता है कि तुलसीदासजीकी सिद्धिके कारण महावीरजी हैं। यलकी लतासे फूल तोड़कर वह महावीरजीको माला पहनाता है। उसका विवाह हो गया है। घर लौटकर आया तो पत्नीकी आँखोंमें राज्यश्री उसका अभिनन्दन करती है लेकिन वह समझ नहीं पाता। दूसरी बार कमलके फूल चढ़ाता है। रातको स्वप्न देखता है। महावीरजी शिकायत कर रहे हैं कि कमलनालके काँटे सरमें चुभ गए हैं। फिर देखता है कि सिन्दूरके रूपमें पत्नीही सिर पर महावीरजीको धारण किए हुए है। भक्त अर्थ पूछता है, पत्नी उत्तर देती है, "अर्थ सब मैं हूँ—मुझे समझो।" तीसरी बार वह देवताको लाल गुलाबके फूलों से सजाता है। सिन्दूर पर गुलाबकी शोभा चढ़ी। घरमें पत्नी ने भी गुलाबी साड़ी पहनी थी। उसने कहा, "मेरा नाम सरस्वती है, पर मैं सजकर जैसे लक्ष्मी बन गई हूँ।" सरस्वतीके उपासककी आर्थिक समस्या यों सुलझी।

फिर महामारीका प्रकोप हुआ। सारा परिवार नष्ट हो गया। पत्नीका भी स्वर्गवास हुआ। भक्त महावीरजीकी सेवामें लग गया। उन्हें रामायण पढ़कर सुनाने लगा। तभी रामकृष्ण मिशनके साधु स्वामी

प्रेमानन्दजी राज्यमें पधारे। भक्तने स्वामीजीको मालाओं से ढक दिया। फिर उसने उन्हें रामायण पढ़कर सुनायी। पिताके न रहने पर अब उस पर संसारका ताप भी पड़ने लगा। जैसे-जैसे वह राज्यका कामकाज देखता वैसे ही उसके हृदय में जैसे साँप काटते। "हर चोट महावीरजीकी याद दिलाने लगी। मनमें घृणा भी हो गई। राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है। प्रजाका रक्तशोषण ही उसका धर्म है।" उसने तय किया कि नौकरी छोड़ देगा। स्वप्नमें उसने महावीरजीको वीरवेष में देखा, उनकी मूर्तिसे भारतका चित्र बन जाता था। स्वप्नमें ही स्वामी प्रेमानन्दजीने कहा, "यह सूक्ष्म भारत है, इसका प्रसार समझके पार है।" फिर भक्तने गरीबोंके बारेमें प्रश्न किया और महावीरजीने उसे अपने ही भीतर रहने का आदेश दिया। आकाशकी लतामें सूर्य, चंद्र और नक्षत्रों के फल खिले दिखाई देते है। स्वर्गीया पत्नी माथे पर सिन्दूर धारण किए हुए आती है और महावीरजी कहते हे, "यह मेरी माता देवी अजना है।" देवी सरस्वती ने पूछा —"अच्छे हो!" इसके बाद आँखें खुल गईं।

पत्नीके सिन्दूरमें भारत मूर्ति महावीरकी अर्चना करके भक्त प्रजाके रक्तशोषणकी समस्याका समाधान करता है।

७

गीत

रोमांटिक कविताकी एक विशेषता यह होती है कि वह गेय होती है। रोमांटिक कवि अपनेको गीतकारके रूपमें कल्पित करता है जिसके हृदयमें बरबस गीत फूट पड़ते हैं। वह उस तन्मयताको अपना आदर्श मानता है जहाँ आँखोंसे उमड़कर कविता अनजानमें बह चलती है। निरालाजीकी कविता गीतात्मक नहीं है, उन्होंने हिन्दीमें गीतोंकी नयी परम्पराको भी जन्म दिया है। जैसे उनकी प्रारम्भिक कविताओंपर जहाँ-तहाँ ब्रजभाषा की छाप है और उन्होंने ब्रजभाषामें रचनाएँ भी की हैं, उसी तरह उनके गीतोंपर भी ब्रजभाषाके पदोंका प्रभाव दिखाई देता है। 'परिमल' की कविताओंमें यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन उसके बाद मानो वह इस ओरसे चौकन्ने हो जाते हैं। सन् '२६ के बाद वह एक नयी शैलीके गीत लिखनेकी चेष्टा करते हैं। 'गीतिका' की भूमिकामें उन्होंने अपना मत प्रकट किया है। वह कहते हैं : "हिन्दी गवैयोंका समपर आना मुझे ऐसा लगता था, जैसे मजदूर लकड़ीका बोझ मुकामपर लाकर धम्मसे फेंक-कर निश्चिन्त हुआ।" इसके विपरीत उन्होंने स्वरको प्रसार दिया। उनके गीतोंका निर्माण इस तरह हुआ है कि उनमें स्वर-विस्तारके सौंदर्यकी विशेष गुंजायश है। केवल निर्माणके ढंगमें नहीं, उनके भावोंमें भी अन्तर है। निरालाजीने उसी भूमिकामें लिखा है कि छायावादके प्रारम्भ-काल में या तो ऐसे पद सुनाई देते थे जैसे 'ऐसो सिय रघुवीर भरोसो' या फिर इस नए ढंगके गीत थे जैसे 'तोप तीरें सब धरी रह जायेंगी मगरूर सुन।' इनसे भिन्न निरालाजीने एक नयी शैली चलायी।

कविताके अन्य अंगोंकी अपेक्षा गीतोंका समाजसे सीधा सम्बन्ध है। साहित्य स्वयं एक सामाजिक क्रिया है; गीत तो और भी। निरालाजीके गीतोंको ऐसी लोकप्रियता नहीं मिली। इसका एक कारण तो यह है कि उन्हें वे साधन नहीं मिले जो सिनेमा स्टारोंको सुलभ हैं, सिनेमाका एक-एक गीत रेडियो और रिकार्डों द्वारा जनताके एक बहुत बड़े हिस्से तक पहुँचता है। लेकिन एक दूसरा कारण गीतोंका अनोखापन है जो शायद ही जनताकी चीज हो पाए। इस अनोखेपनका एक कारण निरालाजी पर बँगला और अँग्रेजी संगीतका प्रभाव भी है। 'गीतिका' की भूमिकामें कहते हैं: "यद्यपि मुझे पश्चिमके किसी प्रसिद्ध देशमें अधिक काल तक रहनेका सुयोग नहीं मिला फिर भी मैं कलकत्ता और बंगालमें उम्रके बत्तीस साल तक रह चुका हूँ और कलकत्तामें आधुनिक भावोंके किसी आकारसे अपरिचित रहनेकी किसीके लिए वजह न होगी अगर वह अपने कामसे ही काम न रखकर परिचय भी करना चाहता है।" जिस तरह घरमें अनथके सस्कार तैयार हो रहे थे, उसी तरह बाहरके वातावरण में भी नए संस्कार बने "जिनसे हिन्दी साहित्य और हिन्दू संस्कृतिको मेरे साहित्यके समझदारोंके कथनानुसार गहरा धक्का पहुँचा।"

जिस तरह रीतिकालीन परम्पराको तोड़कर छायावादने एक नई और सजीव साहित्यिक धाराको जन्म दिया, उसी तरह इन गीतोंमें भी हिन्दी पाठकों परसे पुरानी गायकीका प्रभाव कम किया। इनके अनुकरणपर अन्य कवियोंने सैकड़ों गीत लिखे और वे काफी लोकप्रिय हुए। लेकिन छायावादी कविताकी तरह इन गीतोंकी भी सीमाएँ हैं। बिना छायावादसे मुक्ति पाए उन गीतोंकी रचना न हो सकती थी जो लोगोंकी जबानपर चढ़ जायें। निरालाजीने 'बेला' और 'नए पत्ते' में नए ढंगके गीत लिखे हैं जो हमारे जन-गीतोंसे मिलते जुलते हैं। इनमें वह सस्कार नहीं मिलता जिसे निरालाजी हिन्दी साहित्यके लिए कभी बहुत शुभ समझते थे।

शृंगारके गीतोंमें उन्होंने 'जुही की कली' की तरहके सुन्दर चित्र अंकित किए हैं और उस कविताकी तरह यहाँ भी प्रेम की परिणति पूर्ण-

तृप्तिमें दिखाई है। 'जागो फिर एक बार' की किरणके समान 'यामिनी जागी' गीतमें नैश-जागरणके बाद प्रभातकालमें रमणीका चित्रण किया है। जैसे सरोवरमें कमल अरुणको देखकर खिल उठते हैं, वैसे ही उसके अलसाए हुए पकज-दृग अपने प्रियका तरुण मुख देखकर अनुरागसे खिल उठे हैं। उसके खुले हुए केश पीठ और बाहोंपर फैल गए हैं, उनके बीचमें वह ज्योतिकी-सी तन्वी मालूम होती है जिसे देखकर बिजली भी क्षमा माँगे। वह प्रियके हृदयपर स्नेहकी जयमालाके समान है। वह वासनाकी मुक्ति है जो मुक्ताके समान त्यागके धागेसे बँधी हुई है। इसी प्रकार एक दूसरे गीतमें रमणी अपने प्रियतमको याद दिलाती है, मेरे तपके तुम्ही अमर वर हो और तृष्णाके तृप्तिरूपी सरोवर हो। 'मेरी तृष्णाके करुणाकर, तृप्ति प्रेमसर हे!'

एक दूसरे गीतमें प्रिय-पथपर चलने वाली नायिकाके नूपुरोंकी ध्वनिमें प्रेमका स्वर न सुनकर लोग उसे शृगार कहकर बदनाम करते हैं। लेकिन वह सोचती है कि इस ध्वनिसे यदि प्रियतमको उसके आनेकी सूचना मिल गई है तो वह कैसे लौट सकती है। उसी स्वरमें उसके हृदयके सब तार झकृत हो रहे हैं। दृगोंकी नई कलियाँ रूपके इन्दु से सुधा बिन्दु पाकर और खिल उठती हैं। प्रणय-श्वासके मलय-स्पर्शसे वे हँस पड़ती हैं। तरुण प्रियतम की ज्योतिसे उनका मुख तप्त हो गया है। स्नेहके सरोवरमें नहाकर वे एकान्तमें प्रियतमके ध्यानमें डबी हुई बैठी रहती हैं। प्रियतमके चले जाने पर ससार सूना हो जाता है। जो राग गाया था, वह बह गया, अब उँगली मे मिजराब ही रह गया है। प्रेमिका 'तृष्णामें भरकर' अपने आपमें मरकर रह जाती है।

'स्पर्शसे लाज लगी'— इस गीतमें मानवीय वासनाके समस्त व्यापार और उनकी स्नेहमय परिणतिका चित्र अंकित किया गया है। हृदयसे जो नए रागकी लहर उठतीहै वह जैसे छलकती हुई अलकों और पलकोंमें छिप जाती है। चुम्बनसे चौंककर वह मुँह फेरकर छल करती है, कभी हास कभी त्रास कभी गहरी साँस लेकर वह हाव-भाव दिखाती है। स्नेह

भरे नयनोंकी पलकें उठाकर वह प्रियका अधरासव यों पान करती है मानो नागिन अमृत पीती हो। स्नेहका मेह बरसनेके बाद अमर अंकुर फूटता है जिससे सांसारिक भय दूर हो जाते हैं :—

"प्रेम चयनके उठा नयन नव
विधु चितवन, मनमें मधु कलरव
मौन पान करती अधरासव
कण्ठ लगी उरगी।
मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर
बरस गए रस निर्झर झर झर
उगा अमर अंकुर उर भीतर
ससृति भीति भगी।"

हिन्दीमें ऐसे गीत कम लिखे गए हैं जहाँ रूपकमें इतनी पूर्णता हो जहाँ भावोंमें ऐसी सम्बद्धता हो, और जहाँ मनुष्यकी सहज भावनाओं को इतना ऊँचा स्थान दिया गया हो। रीतिकालीन कवियोंने नारीको अपदस्थ करके उसे काम-केलि के लिए क्रीत दासी बना दिया था। अध्यात्मवादी कवियोंने उसे सहज अपावन कहकर ठुकरा दिया था या जगदम्बिका भवानीके अमानवीय रूपमें आसमान पर चढा दिया था। छायावादी कवियोंने भी उसे अप्सरा बनानेमें कसर नहीं रक्खी। इन गीतों में उसका वह मानवीय रूप मिलता है जो अभी तक हिन्दी साहित्यमें दुर्लभ था।

ब्रजभाषासे नाता तोडनेपर भी पुराना असर जाते ही जाते जाता है। कुछ गीतोंकी पंक्तियाँ तो ऐसी बन गई हैं जैसे गीतावली या विनय-पत्रिकासे उठाकर सीधे रख दी गई हों। 'देख दिव्य छवि लोचन हारे' ऐसी ही पंक्ति है। 'हारे' क्रियाका प्रयोग भी ब्रजभाषाके अनुरूप ही हुआ है। 'नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली' पुराने ढँगका ऐसा गीत है कि मेरे एक मित्रने प्रशंसामें यहाँ तक कह डाला कि इसे तो सीधे सिनेमामें रक्खा जा सकता है। 'स्नेह' के बदले 'सनेह' ने नयी

सरसता ला दी है। 'स्पर्श' के बदले 'परस' ने एक नया वातावरण पैदा कर दिया है। 'अनबोली' पर छायावादका प्रिय शब्द 'मौन' निछावर है। 'खुले अलक मुँद गए पलक दल, श्रमसुखकी हद होली'—इस एक पंक्तिमें ऐसा पूर्ण चित्र देना किसी विरले कलाकार का ही काम है। अन्तमें 'रही यह एक ठठोली' कहकर निरालाजीने होलीका समा बाँध दिया है।

बहुत से प्रकृति-संबंधी गीतोंमें भी उन्होंने शृंगार-भावनाका आरोप किया है। यहाँ भी उनका उद्देश्य प्रेमकी सफल परिणति चित्रित करना है। "रूखी री यह डाल"—इस गीतमें रूखी डाल वासन्ती वसनकी आशा में तप करती है। मधुव्रतमें संसारको वह मधुर फल देगी और सारा संसार उससे नेग माँगेगा। श्लेषसे यह रूपक पार्वतीपर घटाया गया है। शैलसुता शिवके लिए तपस्या करती है। उन्हें जो फल मिलेगा उसमें स्वाद और संतोष दोनोंके फल होंगे। आशुतोष शिवकी कृपासे गरल और अमृत—वासना और प्रेम—दोनोंके संयोगसे इस फलकी सृष्टि हुई।

"मेघके घन केश" धारण किए चपलाके चकित नयनोंसे विश्व को चमत्कृत करती हुई वर्षा शिखरपर आकर बैठती है। हवासे उसका पट लहराता है, उसकी वाणी सारे प्रदेशमें छा जाती है। वह अपनी नश्वरता भूलकर रसकी सृष्टिमें मग्न होकर मनुष्यों और देवताओंको एक नया संदेश देती है। शेफालीकी तरह अपनेको निःशेष देखकर उसे जीवनकी पूर्णताका बोध होता है।

"रंग गई पग-पग धन्य धरा" में पग-पग पृथ्वी रँग जाती है। वृक्षके हृदयकी अरुणिमा कलियोंके रूपमें फूट पड़ती है। कोयलका पंचम स्वर गूँज उठता है और सुन्दर वनश्री सुखके भयसे काँप उठती है।

एक अन्य गीतमें प्रकृति और मानवके व्यापारोंको एक कर दिया गया है। प्रेमके समीरसे दो विटप हिल उठते हैं। इसी वायुसे जीवन रूपी सर लहरा उठता है। नए प्रकाशकी किरण गात चूमकर चली जाती है।

इसीसे सीमाओंमें बँधी हुई भावनाएं मुक्ति पा जाती है। सुख चाहने वाली दृष्टि छिपे हुए रहस्योंको जान लेती है। दोनों प्रेमी जान लेते हैं कि रागसे ही मुक्ति मिलती है। ज्ञान और प्रेममें वे ऐसे ही बँध जाते हैं जैसे अनठी उक्तिके दो चरणोंसे श्लोक बन गया हो। पूरे गीतमें भावोंका उतार-चढाव देखिए —

"नयनों का नयनों से बन्धन,
काँपे थर-थर थर-थर युग तन।
समझे रो हिले विटप हँस कर,
चढे मजु खिले सुमन खस कर,
गई विवश वाय बाँध बश कर,
निर्भर लहराया सर-जीवन।
शात रश्मि भात चूम रे गई,
बँधी हुई खुली भावना नई,
गई दूर दृष्टि जो सुखाशयी,
छिपे वे रहस्य दिखे नूतन।
समझे युग रागानुग मुक्ति रे—
ज्ञान परग, मिले चरम युक्ति से,
सुन्दरताके, अनुपम उक्ति के
बँधे हुए श्लोक पूर्ण कर चरण।"

नवीन शृंगारकी कलाको निरालाजीने खूब ही सँवारा है। अन्य छायावादी कवियोंमें प्रेम और शृंगारके एकांगी चित्र हैं। उनमें यह वैविध्य और सरसता नहीं है जो निरालाजीके गीतोंमें है। यह सही है कि प्रेमकी वेदनाके स्वर जहाँ-तहाँ लगे हैं और वे उतने सच्चे नहीं लगे जितने संयोग शृंगारके। लेकिन इस तरहके गीतोंमें कविने यह दिखाया है कि पूर्ण सुखकी कल्पना क्या होती है। निश्चय ही वह नई हिन्दी कविताको मानव जीवनके अधिक निकट लाया है। उसमें वह मांसलता है जिसके

अभावने अन्य छायावादियोको यथेष्ट अपकीर्ति दी। इन गीतो में उसके सजीव व्यक्तित्वकी छाप है। अभावोके बावजूद उसने अपने जीवनका इस तरह उपयोग किया है कि सूक्ष्म सौंदर्यकी मरीचिकाके पीछे दौडनेवाले उससे स्पर्द्धा कर सकते हैं।

थे। क्योंकि "दार्शनिकताकी मात्रा यो भी दिमागमें बहुत ज्यादा थी, जी घबरा उठता था।" उन्होंने निश्चय किया था कि बोलकर बेवकूफ न बनेंगे। बाहरके विद्वानोकी बातचीत ऊटपटांग मालम होती थी। एक दिन प्रश्न कर दिया, "यह ससार मुझमें है या मैं इस ससारमें हूँ ?" स्वामीजीने सीधे उत्तर न देकर कहा, "इस तरह नही।"

निरालाजीने लिखा है कि बचपनमें ही ऐसे सस्कार बन गए थे कि सन्तों और ईश्वर पर भक्ति हो गई थी। सो जानेपर स्वप्नमें देवता आते थे और उनसे लम्बी बातचीत चलती थी। लेकिन जाग्रत अवस्थामें देवताओके न आनेसे शकाएँ भी होने लगी। वह "घोर नास्तिक, शकित चित्त" हो गए। इससे प्रकट है कि भक्तिके पुराने सस्कारो और नए सदेहो में सघर्ष छिड़ा हुआ था। स्वामीजीसे भी इन्होंने कहा कि सो जाने पर देवता बातचीत करते है। एक दिन दोपहरको सोते हुए देखा कि सारदानन्दजी ही ध्यानमें मग्न है। वे कमलासनसे बैठे हुए है, आँखें मुँदी हुई है और मुँहपर एक दिव्य ज्योति छाई हुई है। पृथ्वीकी सारी चीजें ऊपर उठती हुई मालूम होती है। इसी समाधिकी अवस्थामें एक सन्यासी उनके सामने रसगुल्ले लाया। महाध्यानमें होते हुए भी सारदानन्दजीने कविवर की ओर इशारा किया और सन्यासीने रसगुल्लोका कटोरा इनके सामने कर दिया। खुद खानेके बदले यह जाकर एक रसगुल्ला स्वामीजीको खिला आए। इसके बाद नीद खुल गई। उन्होंने यह महाज्ञानका प्रत्यक्ष प्रमाण देखा। विरोधी शक्तिको दार्शनिक प्रहारोसे दबाते रहे। जब प्रहार करते हुए थकान होती थी तो सारदानन्दजी "मुझे रगीन छायाकी तरह ढँककर हँसते हुए तर कर देते थे।" निरालाजी कहते है कि उन्होंने एक से एक कवियो, दार्शनिको और पडितोको देखा है लेकिन "इस महादार्शनिक, महाकवि, स्वय, मनस्वी, चिरब्रह्मचारी, सन्यासी महापडित, सर्वस्वत्यागी साक्षात् महावीरके समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है।"

मिशनके साधुओंका प्रभाव निरालाजीको भौतिक वास्तविकतासे दूर चमत्कारवादके किस कल्पना-लोकमें खींचकर ले गया था, इसका प्रमाण स्वामी सारदानन्दजी पर उनका यह लेख है। जिन सन्यासीने रसगुल्ले का कटोरा बढ़ाया था, उन्होंने इनसे मंत्र लेनेको कहा लेकिन इन्होंने तन्त्र-मंत्रपर अविश्वास प्रकट किया। अन्तमें स्वामी सारदानन्दजीने अपनी उँगलीसे इनके गलेपर एक बीजमंत्र लिख दिया। पढ़नेकी चेष्टा करनेपर भी मंत्र समझमें न आया। मंत्रका यह प्रभाव पड़ा कि कुछ ही दिनोंमें उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि "मेरा निचला हिस्सा ऊपर और ऊपर वाला नीचे हो गया है। और रामकृष्ण मिशनके साधु मुझे खींच रहे हैं।" बाबू महादेवप्रसाद सेठसे इन्होंने शिकायतकी कि साधू लोग जादूगर जान पड़ते हैं। उसके बाद स्वप्नमें प्रकाशका समुद्र दिखाई दिया और मालूम पड़ा कि कविवर श्यामा की बाँह पर मस्तक रखे हुए लहरोंमें हिल रहे हैं। फिर इतने चमत्कार देखे कि बड़े बड़े कवियों और दार्शनिकोंकी चमत्कारोक्तियों पर हँसी आने लगी। और वह गले वाला मंत्र भी आग सा चमकता हुआ आँख के सामने आया और उसे उन्होंने पढ़ लिया।

इस प्रभावका उल्लेख करनेका कारण यह है कि संसार और समाजकी जिस व्याख्याको "भारतीय" कहा जाता है, उसका अवैज्ञानिक और चमत्कार-वादी रूप प्रकट हो जाय।

वर्तमान धर्मकी व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा था, भारत में "सृष्टि-तत्त्व ज्ञानसे कहा गया है। डार्विनके विकासवादकी तरह बन्दरका क्रम परिणाम मनुष्य नहीं। मनुष्य ही मनुष्यका परिणाम है। मन, बुद्धि और अहंकारसे हुई त्रिगुणात्मिका सृष्टि अपर जीवोंकी तरह मनुष्यकी ही है, ऐसा कहते हैं। इसीलिए सृष्टि अमैथुनी मानी गई है और मानी इस-लिए गयी कि बाह्य जड प्रमाणका योग अपने ही मन, बुद्धि और अहंकार में आजानेसे छूट जाता है।" इस युक्तिके अनुसार ज्ञानका विकास नहीं होता वरन् सृष्टिके पूर्वका ज्ञान सृष्टिके अज्ञानके साथ खेल किया करता है।

थे। क्योंकि "दार्शनिकताकी मात्रा यों भी दिमागमें बहुत ज्यादा थी, जी घबरा उठता था।" उन्होंने निश्चय किया था कि बोलकर बेवकूफ न बनेंगे। बाहरके विद्वानोंकी बातचीत ऊटपटांग मालूम होती थी। एक दिन प्रश्न कर दिया, "यह संसार मुझमें है या मैं इस संसारमें हूँ?" स्वामीजीने सीधे उत्तर न देकर कहा, "इस तरह नहीं।"

निरालाजीने लिखा है कि बचपनमें ही ऐसे संस्कार बन गए थे कि सन्तों और ईश्वर पर भक्ति हो गई थी। सो जानेपर स्वप्नमें देवता आते थे और उनसे लम्बी बातचीत चलती थी। लेकिन जाग्रत अवस्थामें देवताओंके न आनेसे शंकाएँ भी होने लगीं। वह "घोर नास्तिक, शंकित चित्त" हो गए। इससे प्रकट है कि भक्तिके पुराने संस्कारों और नए संदेहोंमें संघर्ष छिड़ा हुआ था। स्वामीजीसे भी इन्होंने कहा कि सो जाने पर देवता बातचीत करते हैं। एक दिन दोपहरको सोते हुए देखा कि सारदानन्दजी ही ध्यानमें मग्न हैं। वे कमलासनसे बैठे हुए हैं, आँखें मुँदी हुई हैं और मुँहपर एक *दिव्य ज्योति छाई हुई है। पृथ्वीकी सारी चीजें ऊपर* उठती हुई मालूम होती हैं। इसी समाधिकी अवस्थामें एक सन्यासी उनके सामने रसगुल्ले लाया। महाध्यानमें होते हुए भी सारदानन्दजीने कविवर की ओर इशारा किया और सन्यासीने रसगुल्लोंका कटोरा इनके सामने कर दिया। खुद खानेके बदले यह जाकर एक रसगुल्ला स्वामीजीको खिला आए। इसके बाद नींद खुल गई। उन्होंने यह महाज्ञानका प्रत्यक्ष प्रमाण देखा। विरोधी शक्तिको दार्शनिक प्रहारोंसे दबाते रहे। जब प्रहार करते हुए थकान होती थी तो सारदानन्दजी "मुझे रंगीन छायाकी तरह ढँककर हँसते हुए तर कर देते थे।" निरालाजी कहते हैं कि उन्होंने एक से एक कवियों, दार्शनिकों और पंडितोंको देखा है लेकिन "इस महादार्शनिक, महाकवि, स्वयं, मनस्वी, चिरब्रह्मचारी, सन्यासी महापंडित, सर्वस्वत्यागी साक्षात् महावीरके समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है।"

मिशनके साधुओंका प्रभाव निरालाजीको भौतिक वास्तविकतासे दूर चमत्कारवादके किस कल्पना-लोकमें खींचकर ले गया था, इसका प्रमाण स्वामी सारदानन्दजी पर उनका यह लेख है। जिन सन्यासीने रसगुल्ले का कटोरा बढाया था, उन्होंने इनसे मन्त्र लेनेको कहा लेकिन इन्होंने तन्त्र-मन्त्रपर अविश्वास प्रकट किया। अन्तमें स्वामी सारदानन्दजीने अपनी उँगलीसे इनके गलेपर एक बीजमन्त्र लिख दिया। पढनेकी चेष्टा करनेपर भी मन्त्र समझमें न आया। मनका यह प्रभाव पडा कि कुछ ही दिनोंमें उन्हें ऐसा जान पडने लगा कि "मेरा निचला हिस्सा ऊपर और ऊपर वाला नीचे हो गया है। और रामकृष्ण मिशनके साधु मुझे खींच रहे हैं।" बाबू महादेवप्रसाद सेठसे इन्होंने शिकायतकी कि साधु लोग जादूगर जान पडते हैं। उसके बाद स्वप्नमें प्रकाशका समुद्र दिखाई दिया और मालूम पडा कि कविवर श्यामा की बाँह पर मस्तक रखे हुए लहरोंमें हिल रहे हैं। फिर इतने चमत्कार देखे कि बडे बडे कवियों और दार्शनिकोंकी चमत्कारोक्तियों पर हँसी आने लगी। और वह गले वाला मन्त्र भी आग सा चमकता हुआ आँख के सामने आया और उसे उन्होंने पढ लिया।

इस प्रभावका उल्लेख करनेका कारण यह है कि संसार और समाजकी जिस व्याख्याको "भारतीय" कहा जाता है, उसका अवैज्ञानिक और चमत्कार-वादी रूप प्रकट हो जाय।

वर्तमान धर्मकी व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा था, भारत में "सृष्टि-तत्त्व ज्ञानसे कहा गया है। डार्विनके विकासवादकी तरह बन्दरका क्रम परिणाम मनुष्य नहीं। मनुष्य ही मनुष्यका परिणाम है। मन, बुद्धि और अहंकारसे हुई त्रिगुणात्मिका सृष्टि अपर जीवोंकी तरह मनुष्यकी ही है, ऐसा कहते हैं। इसीलिए सृष्टि अमैथुनी मानी गई है और मानी इस-लिए गयी कि बाह्य जड प्रमाणका योग अपने ही मन, बुद्धि और अहंकार में आजानेसे छूट जाता है।" इस युक्तिके अनुसार ज्ञानका विकास नहीं होता वरन् सृष्टिके पूर्वका ज्ञान सृष्टिके अज्ञानके साथ मेल किया करता है।

निरालाजीने उर्दू कवि अकबरकी तरह बन्दरका नाम लेकर विकासवाद पर हल्का मजाक किया है। सृष्टिके भौतिकवादी रूपको अस्वीकार करने के बाद वे सामाजिक विकासमें कोई नियम नहीं देखते; वह भी ब्रह्मकी लीला हो जाता है। "हमारा समाज" में संसार शब्दके अर्थसे उसे गतिशील माननेके बाद वे कहते हैं, "एक ही शरीरमें जिस तरह भली-बुरी क्रीड़ाएँ होती रहती है, कभी इसकी विजय होती है कभी उसकी, इसी प्रकार समाजके व्यापक शरीरमें भी उत्थान पतन होते रहते हैं।" इसी तरह महादेवीजी कहती है, "यह क्रम प्रत्येक युगके परिवर्तनमें कुछ नए उलटफेरके साथ आता रहा है, इसीसे आधुनिक ज्ञानके साथ भी इसे जाननेकी आवश्यकता रहेगी।" इस प्रकार मानवीय इतिहास एक आध्यात्मिक पहेली बन जाता है। विज्ञान और भौतिक प्रगति एक मजाक मालूम पडते हैं क्योंकि ज्ञानकी पूर्ण सत्ता तो सृष्टिके पहले ही थी। आध्यात्मवादीके लिए ज्ञानकी खोजका यह मतलब होता है कि वह इतिहास और समाजके अन्य व्यापारोंको भूल जाय और उस ज्ञान को ढूढ ले जिस पर सृष्टि अज्ञानका पर्दा बन कर पडी हुई है। यही वह दार्शनिक आधार है जो अपने निर्जन अदृश्य शिखर पर छायावादी स्वप्नकको विश्राम करनेके लिए बुलाता है। इसी ज्ञानकी मशाल लेकर छायावादी कविको निष्क्रिय संस्कृति और निष्प्राण सामाजिकतामें ही अपना पथ खोजना पडता है।

"शून्य और शक्तिमें" निरालाजी सृष्टिका आदि और अन्त शून्यको मानते हैं। वैज्ञानिक समझते हैं कि वे तरक्की कर रहे हैं लेकिन वे नहीं जानते कि उन्हें पहुँचना शून्य तक ही है।. यह शून्य क्रिया-रहित होग और तब उनके तमाम आविष्कार "एक युगकी जोती-बोई हुई जमीनव परती पडजानेकी तरह शून्यफल हो जायेंगे।" निरालाजी पंचके नियति वादीकी तरह कहते हैं, "ऐसा ही हुआ है, ऐसा ही होगा।" फिर किर्स अगले युगमें उसी शून्य से आविष्कार होंगे। शक्ति शून्यका ही रूप है शून्य रूपमें उसका कम्पन बन्द हो जाता है और शक्ति रूपमें कम्पनका बोध होता है। इस कम्पन-क्रिया का नाम सृष्टि या विकास है। विज्ञान भी

प्रसार चाहता है, निरालाजी कहते है कि हम इस जड विज्ञानका उत्तर अपने ज्ञानके प्रसारसे देगे। "चरखा" नामके निबन्धमें तो उन्होने रवि बाबू पर आक्षेप किया था कि क्या विधाता और ईश्वरसे चरखेके सम्बन्धमे कविवरकी कोई वातचीत हो चुकी है ? यही प्रश्न शून्य और शक्तिके बारेमें कविवर निरालाजीसे भी किया जा सकता है।

"अधिकार समस्या" मे उन्होने सम्पूर्णानन्दजीकी तरह वर्णाश्रम व्यवस्था को चिरन्तन माना है। वे हिन्दू समाजको ही नही, समाज मात्र को इसके अन्तर्गत मानते है। अपने प्रसिद्ध लेख "वर्तमान धर्म" में उन्होंने इसी पुराने धर्मको वर्तमान कहकर प्रतिष्ठित किया है। उसकी शैलीसे विरोधियोंको यह अवसर मिला कि वे निरालाके समूचे साहित्य और छाया-वादका विरोध करें। लेकिन "वर्तमान धर्म" की टीका से यह स्पष्ट है कि निरालाजीने कोई ऐसी बात नही कही जो पहले लोग न कह गए हो। टीका में एक विशेषता अवश्य है कि निरालाजीने पौराणिक गाथाओंकी नयी व्याख्या करनेकी कोशिश की है।

शून्यवाद और चमत्कारवादमें पूर्ण श्रद्धा रहते हुए भी सदेहकी आग कभी मन्द नही हुई। निरालाजीका अभ्युदय-काल हमारे देशमें पूँजीवादी नेतृत्वमें चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनका भी अभ्युदय-काल रहा है। वे इस सत्यसे इन्कार न कर सकते थे कि यद्यपि ससार का ज्ञान भारतीय शास्त्रोमें सुरक्षित था, फिरभी नए युगमें उन्ही प्रदेशोने सबसे पहले उन्नति की, जहाँ नयी शिक्षाका पहले प्रचार हुआ था। एक साहित्यिकके नाते वे चाहते थे कि बगालकी तरह उनका प्रदेश भी नए और महान् साहित्यकी सृष्टि करे। उन्होंने यह भी देखा कि भौतिक विज्ञानने मनुष्यको जो सुवि-धाएँ दी हैं, उनसे साहित्यका हित होता है। उन्होने इस बातको "काव्य में रूप और अरूप" नामके निबन्ध में स्पष्ट स्वीकार किया है। उन्होने *लिखा है, "ससारकी भौतिक सम्पत्तिके सब देशोंके युक्त आनेके कारण* ससार भर के लोगोंको आत्मिक लाभ पहुँचा। फलस्वरूप कलामें देश-

भावकी जो सकीर्णता थी, आदान-प्रदानकी सहृदयताने उसे तोड दिया । कला की सृष्टि व्यापक विचारोंसे होने लगी और जातिकी उत्तमतासे प्रेम सबध जोडकर लोग उससे अपनी जातीय कलाको प्रभावित करने लगे ।" हम देख चुके है कि छायावादी कवियोने रीतिकालीन साहित्यके बन्धनोको तोडनेका भरसक प्रयास किया । वे बन्धन सामन्तवादी समाजके बन्धनोका ही सास्कृतिक रूप थे । भारतीय पूंजीवाद अपनी वैज्ञानिक प्रगतिके कारण एक हद तक सामन्तशाहीके बन्धन भी ढीले कर रहा था । इसलिए यह अनिवार्य था कि रीतिकालका विरोधी नई भौतिक प्रगतिका समर्थक हो। लेकिन हिन्दुस्तानका पूंजीवाद ब्रिटेनकी छत्रछायामें बढा और पला । उसने सामन्तवादको एक धक्का जरूर दिया लेकिन उसे बिल्कुल खतम नही कर सका । यह उलझी हुई परिस्थिति साहित्यमें भी देखनेको मिलती है । एक ओर निरालाजी सृष्टिको अमैथुनी मानकर चमत्कारवादका समर्थन करते है तो दूसरी ओर देशकालके बन्धन तोडनेके लिए वे भौतिक विकास का भी स्वागत करते हैं ।

अपने लेखोंमें उन्होने परिवर्तन और प्रसारके लिए आवाज बुलन्द की । उन्होने बताया कि युग-धर्मके तकाजेपर पुरानी राहें अपना रूप बदलना चाहती हैं । इसके साथ ही साहित्य भी परिवर्तनके द्वारा ही जीवन पा सकता है । "साहित्य यही काम करता हुआ अपनी शक्तिके परिचयसे जीवित कहा जाता है, अन्यथा मृत या पश्चात्पद ।" वे मानते है कि पुरानी बातें किसी जमाने में अच्छी लगती थी और तबके लिए वे नई भी थी । लेकिन उनकी रक्षाके लिए आज भी लोग सर पटकते रहें तो साहित्य में सृष्टि नही हो सकती और वह साहित्य जीता हुआ भी मर जायेगा । मध्य-कालमें धर्मके नामपर स्वार्थी वर्गोंने अपना पैर जमाए रक्खा । आज तो मध्यकालके ठाकुरजी विज्ञानके प्रसारके आगे हतप्रभ होकर किसी तरह भी समाजको ऊँचा नही उठा सकते । नए विज्ञान ने मनुष्यको प्रसारकी भावना दी है । वह दुनिया भरके मनुष्योंसे मिलना चाहता है, उनसे अपना भाईचारा क़ायम करना चाहता है । धर्म इसमें बाधक होता है । विज्ञान

के प्रसारसे धर्मकी सीमाओंकी तुलना करते हुए निरालाजी कहते हैं, "हमारे ठाकुरजी तो मन्दिरके अहाते के बाहरभी नही निकल पाते,न हमारे ज्ञानसे, न अपने कर्मों द्वारा।" उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया कि नए विज्ञान और नई संस्कृति को अपनाने से ही बँगला साहित्यने अभूत-पूर्व उन्नति की। रविबाबूके विराट् चित्रोंके उदाहरण देकर उन्होंने कहा, "काव्यमें साहित्यके हृदय को दिगन्तव्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यंत आवश्यक है।"

पन्तजी ने "पल्लव" की भूमिका में ब्रजभाषा पर आक्षेप इसी आधार पर किए थे कि उसमें नए कविके लिए यथेष्ठ प्रसार नही है। हिन्दुस्तान में नए पूँजीवादने, उद्योग धंधोंके प्रारम्भिक विकासमें विज्ञानके नए संपर्क ने कैसी हलचल मचा दी, इसका सबसे अच्छा निदर्शन 'पल्लव' की भूमिका है। नए कविकी प्रसार-भावना इतनी प्रबल है कि उसमें पूर्वी तथा पश्चिमी गोलार्द्ध, वन पर्वत, ज्योति-अन्धकार, उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक प्रकृतिका विभिन्न सौंदर्य, उष्ण और शीत सभी देशोंके वनस्पति फल-फूल और पौधे, वहांकी जलवायु, आचार-व्यवहार—यह सभी कुछ वह नए साहित्यमें चाहता है। ब्रजभाषाके पास वह साहित्य नही है न वे शब्द हैं, जिनमे "वात-उत्पात, वन्य-बाढ, उल्का-भूकंम्प सब कुछ समा सके; जिसके पृष्ठों पर मानव जाति की सभ्यताका उत्थान-पतन, वृद्धि-विनाश, बाँधा जा सके आवर्तन-विवर्तन, नूतन-पुरातन सब कुछ चित्रित हो सके, जिसकी अलमारियोंमें दर्शन विज्ञान, इतिहास-भूगोल, राजनीति-समाज नीति, कला-कौशल, कथा-कहानी, काव्य-नाटक सब कुछ सजाया जा सके।" इससे मालम होता है कि इस नए युगने साहित्यके विकासके लिए नया मार्ग प्रशस्त किया था। कवि बार-बार विराट्-विराट्की पुकार करता था और उसे पुराने चित्र संकुचित और क्षुद्र मालूम होते थे।उसने मांग की कि यदि रीतिकालीन बन्धनोंको न तोड़ा गया तो साहित्यकी गति रुद्ध हो जायगी और उसमें समाज भी निष्प्राण हो जायगा। 'गीतिका' की भूमिकामें

भावकी जो सकीर्णता थी, आदान-प्रदानकी सहृदयताने उसे तोड दि
कला की सृष्टि व्यापक विचारोसे होने लगी और जातिकी उत्तमतासे
संबध जोडकर लोग उससे अपनी जातीय कलाको प्रभावित करने लगे .
हम देख चुके है कि छायावादी कवियोने रीतिकालीन साहित्यके बन्धनोंव
तोड़नेका भरसक प्रयास किया। वे बन्धन सामन्तवादी समाजके बन्धनोंका
ही सास्कृतिक रूप थे। भारतीय पूँजीवाद अपनी वैज्ञानिक प्रगतिके कारण
एक हद तक सामन्तशाहीके बन्धन भी ढीले कर रहा था। इसलिए यह
अनिवार्य था कि रीतिकालका विरोधी नई भौतिक प्रगतिका समर्थक हो।
लेकिन हिन्दुस्तानका पूँजीवाद ब्रिटेनकी छत्रछायामें बढा और पला।
उसने सामन्तवादको एक धक्का जरूर दिया लेकिन उसे बिल्कुल खतम नही
कर सका। यह उलझी हुई परिस्थिति साहित्यमें भी देखनेको मिलती
है। एक ओर निरालाजी सृष्टिको अर्मयुनी मानकर चमत्कारवादका
समर्थन करते है तो दूसरी ओर देशकालके बन्धन तोड़नेके लिए वे भौतिक
विकास का भी स्वागत करते हैं।

अपने लेखोंमें उन्होंने परिवर्तन और प्रसारके लिए आवाज बुलन्द की।
उन्होने बताया कि युग-धर्मके तकाजेपर पुरानी राहें अपना रूप बदलना
चाहती है। इसके साथ ही साहित्य भी परिवर्तनके द्वारा ही जीवन पा
सकता है। "साहित्य यही काम करता हुआ अपनी शक्तिके परिचयसे
जीवित कहा जाता है, अन्यथा मृत या पश्चात्पद।" वे मानते हैं कि पुरानी
बातें किसी जमाने में अच्छी लगती थी और तबके लिए वे नई भी थी।
लेकिन उनकी रक्षाके लिए आज भी लोग सर पटकते रहे तो साहित्य में
सृष्टि नही हो सकती और वह साहित्य जीता हुआ भी मर जायेगा। मध्य-
कालमें धर्मके नामपर स्वार्थी वर्गोंने अपना पैर जमाए रखा। आज तो
मध्यकालके ठाकुरजी विज्ञानके प्रसारके आगे हतप्रभ होकर किसी तरह
भी समाजको ऊँचा नही उठा सकते। नए विज्ञान ने मनुष्यको प्रसारकी
भावना दी है। वह दुनिया भरके मनुष्योंसे मिलना चाहता है, उनसे अपना
भाईचारा कायम करना चाहता है। धर्म इसमें बाधक होता है। विज्ञान

ही है, न कि रवीन्द्रनाथके छंद। लगे हाथ उन्होंने पंतजीकी पंक्तियाँ उद्धृत करके यह भी सिद्ध कर दिया कि पन्तजीने ही चोरीके माल से अपनी दूकान सजाई है।

पन्तजीका आक्षेप कितना भ्रामक था, उसका उत्तर सदियोंसे चली आती हुई कवित्त छंदकी लोकप्रियता है। इसके अलावा सम्मेलनों और सभाओं में अपने मुक्त छंदका पाठ करके निरालाजीने यह दिखा दिया था कि उसका रंग जम जाता है। फिर पन्तजीने उसका आधार रवीन्द्रनाथके तुकान्त छंदोंको बताया, गिरीशबाबूके अतुकान्त छंदका उल्लेख करते तो बात भी थी। निरालाजी ने उनके प्रभावको स्वीकार भी किया है। अपने पक्षके समर्थनमें निरालाजी कवित्तकी स्वाभाविकता और मुक्त छंदके प्रभाव-शाली प्रवाहका समर्थन करते, यह बिलकुल न्यायकी बात थी। सारी चीज साफ तौरसे न रखनेसे गलतफहमी फैलती और नई कविताका अपकार होता। लेकिन बात इतनी ही नहीं थी।

निरालाजीने लिखा, "मैं जानता हूँ, एक मार्जित सुहृदपर मैंने तलवार चलाई है।" उनके दर्दसे जाहिर है कि तलवार उन्होंने तभी उठाई जब दिल को बड़ी ठेस लगी, उन्हें यह चीज अखरी कि मित्र होते हुए भी पंतजीने उन से बिना सलाह किये ही उन पर आक्षेप किये। आक्षेप भी किया उस मुक्त छंद पर जिसको लेकर निरालाजी ने जीवन-मरणकी लड़ाई लड़ी थी। आक्षेप का आधार भी यह कि उन्होंने बंगला से नकल की है। वही आक्षेप जो जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदीसे लेकर पंडित रामदास गौड़ तक नक्काल नक्काल चिल्लाकर किया करते थे। निरालाजी ने लिखा कि "पल्लवमें मेरी कविता पर कुछ लिखने से पहले उचित था कि पंतजी मेरी सलाह ले लेते, जब कि वह मेरे मित्र थे और इस सलाह से उनके व्यक्तित्व को किसी तरह नीचा देखना पड़ता, यह तो मैं अब तक भी सोच कर नहीं समझ सका।" उन्होंने यह भी बताया कि लोग सब तरह की कमजोरियाँ बर्दाश्त कर लेते हैं लेकिन अकल के मामले में कोई भी अपने को घटकर नहीं समझता।

पतजीको कमजोर साबित करने में अपराध जरूर हुआ है लेकिन "उनके अपराध की गुरुता को मैं सिर्फ इसलिये नही सहन कर सका कि प्रतिभा के युद्ध में उन्होने बेकसूर निराला को मारा है और अपने सम्बन्ध में सब कुछ पी गये। यह सब मुझे निहायत असयत अन्याय के रूप में दिखलाई पडा।"

निरालाजीके चुटकुले बहुत ही सजीव है जिनमें उन्होने सरस्वतीके सुकवि किंकर महाशय द्वारा छायावादी कवियोंकी लागलोमें आग लगा देने की बात लिखी है। अपने सबधमें उन्होने और भी जो बातें लिखी है, विशेषकर पहले के विरोध और समर्थनकी बातें उनका ऐतिहासिक महत्त्व है। कवित्त छदको भारतीय प्रकृतिके अनुकूल सिद्धि करनेके लिए उन्होने साहित्य और सगीत दोनोंसे तर्क दिए हैं। अपने पुरुषत्वका आरोप उन्होंने मुक्त छदमें भी किया है। उसे मात्रिक छदोकी तरह स्वर-प्रधान न होकर व्यजन-प्रधान बतलाया है। और "वह कविताकी श्री सुकुमारता नही, कवित्वका पुरुष गर्व है।" छदोकी तुलना करते हुए कवियोके व्यक्तित्व का अन्तर भी उनके सामने आ गया।

भाषा-विज्ञान और दर्शनके बारेमें निरालाजीने जिस दृष्टिकोणको भारतीय कहकर उपस्थित किया, आगे चलकर उसके विपरीत भी उन्हे बहुत-सी बातें करनी पडी। पहले उन्होने वर्णभेदको समाजकी आदर्श व्यवस्था कहा था लेकिन वर्तमान हिन्दू समाजमें उनके विचार से उच्चवर्ण वालोका उन्माद द्वापरसे ही बढता रहा है। ब्राह्मणोमें तीव्र स्पर्द्धा जागृत हुई। निरालाजीके शब्दोमें ब्राह्मण आस्तिक थे परन्तु वे हृदय-हीन थे। शकरके समय अधिकार-भेद खडा हो गया था। शूद्रोके प्रति उन्होने कठोर अनुशासन बनाए। उनके बाद रामानुज आदि सतोने हृदय-धर्मको स्थापित किया। अनेक देवी-देवताओकी उपासनाके साथ भारतवासियो का पतन होता गया। द्विजाति भी अपनी निरक्षरताको दूर करनेके लिए गगामें डुबकी लगानाही काफी समझते रहे। दूसरे मनुष्यको मनुष्य न

समझना अब तक अट्ठानवे फ़ीसदी लोगोंकी धारणा बनी हुई है। दूसरी जातियोंसे नफ़रत करके भारतवर्षका पतन होता जाता है। निरालाजी मानो अपने ही ब्रह्मवादको चुनौती देकर कहते हैं, "रहते संसारमें थे; पर उससे लापरवाह रहकर ही जीना चाहते थे।" और वर्णाश्रम धर्मपर भी इससे अच्छी और टीका क्या होगी कि शूद्र शक्ति दिन-पर-दिन पीड़ित होती गई और वह हिन्दू समाजके पतनका कारण हुई। निरालाजीने विश्वासके साथ कहा है, "शूद्र शक्तियोंसे यथार्थ भारतीयताकी किरणें फूटेंगी, वे ही भविष्यके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं; और ब्राह्मण क्षत्रिय आदि दृप्त जातियाँ शूद्र! ....भारत तभी तक पराधीन है जब तक वे नहीं जागते।"

आजकी जाति-प्रथाके बारेमें उन्होंने लिखा है कि आठ सौ वर्षोंके शासनके बाद भी ब्राह्मण और क्षत्रिय बचे हैं, यह समझना भूल है। दासता में न ब्राह्मणत्व रहता है न क्षत्रियत्व। वे असवर्ण विवाहका स्वागत करते हैं। आजके वैषम्यसे इसी प्रकार साम्यका जन्म होगा।

"वर्णाश्रम धर्मकी वर्तमान स्थिति" में शंकराचार्यका समर्थन करनेपर भी वह इसी नतीजेपर पहुँचे हैं कि नए भारतमें यहाँकी दलित जातियों का अभ्युत्थान होगा। उन्होंने भविष्यवाणी की है, "क्रमशः यही अंत्यज और शूद्र, यज्ञकुण्डसे निकले हुए अदम्य क्षत्रियोंकी तरह अपनी चिर-कालकी प्रसुप्त प्रतिभाकी नवीन स्फूर्तिसे देशमें एक अलौकिक जीवनका संचार करेंगे। इन्हींकी अजेय शक्ति भविष्यमें भारतको स्वतंत्र करेगी।" यही वह क्रांतिकारी निराला हैं जिसने आगे-चलकर "कुल्ली भाट" और "चतुरी चमार" में सहज सहानुभूतिसे द्रवित होकर दलित जातियोंके अनुपम चित्र दिए।

'मेरे गीत और कला' में कला कलाके लिएकी हाँकको हड़कानेवाली गला गलासे मिलाकर उन्होंने शुद्ध कलावादको समाप्त कर दिया। फिर कविता-कामिनीका सौंदर्य वर्णन करते हुए वे अपना उद्देश्य प्रकट करते

पतजीको कमजोर साबित करने में अपराध जरूर हुआ है लेकिन "उनके अपराध की गुरुता को मैं सिर्फ इसलिये नही सहन कर सका कि प्रतिभा के युद्ध में उन्होने बेकसूर निराला को मारा है और अपने सम्बन्ध में सब कुछ पी गये। यह सब मुझे निहायत असयत अन्याय के रूप में दिखलाई पड़ा।"

निरालाजीके चुटकुले बहुत ही सजीव है जिनमें उन्होने सरस्वतीके सुकवि किंकर महाशय द्वारा छायावादी कवियोकी लागलोमें आग लगा देने की बात लिखी है। अपने सबधमें उन्होने और भी जो बातें लिखी है, विशेषकर पहले के विरोध और समर्थनकी बातें उनका ऐतिहासिक महत्त्व है। कवित्त छदको भारतीय प्रकृतिके अनुकूल सिद्धि करनेके लिए उन्होने साहित्य और सगीत दोनोंसे तर्क दिए है। अपने पुरुषत्वका आरोप उन्होने मुक्त छदमें भी किया है। उसे मात्रिक छदोकी तरह स्वर-प्रधान न होकर व्यजन प्रधान बतलाया है। और "वह कविताकी स्त्री सुकुमारता नही, कवित्वका पुरुष गर्व है।" छदोकी तुलना करते हुए कवियोके व्यक्तित्व का अन्तर भी उनके सामने आ गया।

भाषा विज्ञान और दर्शनके बारेमें निरालाजीने जिस दृष्टिकोणको भारतीय कहकर उपस्थित किया, आगे चलकर उसके विपरीत भी उन्हे बहुत-सी बातें करनी पड़ी। पहले उन्होने वर्णभेदको समाजकी आदर्श व्यवस्था कहा था लेकिन वर्तमान हिन्दू समाजमें उनके विचार से उच्चवर्ण वालोका उन्माद द्वापरसे ही बढ़ता रहा है। ब्राह्मणोमें तीव्र स्पर्द्धा जागृत हुई। निरालाजीके शब्दोमें ब्राह्मण आस्तिक थे परन्तु वे हृदय-हीन थे। शकरके समय अधिकार-भेद खड़ा हो गया था। शूद्रोके प्रति उन्होने कठोर अनुशासन बनाए। उनके बाद रामानुज आदि सतोने हृदय धर्मको स्थापित किया। अनेक देवी-देवताओकी उपासनाके साथ भारतवासियों का पतन होता गया। द्विजाति भी अपनी निरक्षरताको दूर करनेके लिए गगामें डुबकी लगानाही काफी समझते रहे। दूसरे मनुष्यको मनुष्य न

समझना अब तक अट्ठानवे फ़ीसदी लोगोंकी धारणा बनी हुई है। दूसरी जातियोंसे नफ़रत करके भारतवर्षका पतन होता जाता है। निरालाजी मानो अपने ही ब्रह्मवादको चुनौती देकर कहते हैं, "रहते संसारमें थे; पर उससे लापरवाह रहकर ही जीना चाहते थे।" और वर्णाश्रम धर्मपर भी इससे अच्छी और टीका क्या होगी कि शूद्र शक्ति दिन-पर-दिन पीड़ित होती गई और वह हिन्दू समाजके पतनका कारण हुई। निरालाजीने विश्वासके साथ कहा है, "शूद्र शक्तियोंसे यथार्थ भारतीयताकी किरणें फूटेंगी, वे ही भविष्यके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं; और ब्राह्मण क्षत्रिय आदि दृप्त जातियाँ शूद्र !............भारत तभी तक पराधीन है जब तक वे नहीं जागते।"

आजकी जाति-प्रथाके बारेमें उन्होंने लिखा है कि आठ सौ वर्षोंके शासनके बाद भी ब्राह्मण और क्षत्रिय बचे हैं, यह समझना भूल है। दासतामें न ब्राह्मणत्व रहता है न क्षत्रियत्व। वे असवर्ण विवाहका स्वागत करते हैं। आजके वैषम्यसे इसी प्रकार साम्यका जन्म होगा।

"वर्णाश्रम धर्मकी वर्तमान स्थिति" में शंकराचार्यका समर्थन करनेपर भी वह इसी नतीजेपर पहुँचे हैं कि नए भारतमें यहाँकी दलित जातियोंका अभ्युत्थान होगा। उन्होंने भविष्यवाणी की है, "क्रमशः यही अंत्यज और शूद्र, यज्ञकुण्डसे निकले हुए अदम्य क्षत्रियोंकी तरह अपनी चिर-कालकी प्रसुप्त प्रतिभाकी नवीन स्फूर्तिसे देशमें एक अलौकिक जीवनका संचार करेंगे। इन्हींकी अजेय शक्ति भविष्यमें भारतको स्वतंत्र करेगी।" यही वह क्रांतिकारी निराला हैं जिसने आगे चलकर "कुल्ली भाट" और "चतुरी चमार" में सहज सहानुभूतिसे द्रवित होकर दलित जातियोंके अनुपम चित्र दिए।

'मेरे गीत और कला' में कला कलाके लिएकी हाँकको ठुकरानेवाली गला गलासे मिलाकर उन्होंने शुद्ध कलावादको समाप्त कर दिया। फिर कविता-कामिनीका सौंदर्य वर्णन करते हुए वे अपना उद्देश्य प्रकट करते

कि साड़ी देखने वालोंकी साड़ी पहिननेवालोंसे भी आँखें चार हो जायें
श्रीमती महादेवी वर्माके साथ छायावादके चार चरण पूरे करके उन्होंने
उसे चौपाया बनाया है और लिखा है कि "दुमकी कसर पंडित बनारसी
दास चतुर्वेदी ने पूरी कर दी।" निरालाजीको शिकायत तो यह है कि
"चौबेजी साबित कर रहे हैं कि काव्यके चतुष्पद तत्त्वोंमें उनकी पूंछका ही
महत्त्व सबसे ज्यादा है।"

यहाँ निरालाजीने बैसवाड़ीके आगे संस्कृत शब्दावलीको तिलाज
दे दी है। बंगाल मेरी मातृभूमि है, यह भूलकर अपनी ग्रामीण भ्रव
के लिए लिखा है, "मेरी बैसवाड़ी माता पिताकी दी वाग्विभूति जिससे स
रसोंके स्रोत मेरे जीवनमें फूटकर निकले हैं, साहित्यिकोंमें प्रसिद्ध है
ठाकरके समय में जिन लोगोंने संस्कृतका प्रचार किया, उससे उन्होंने केव
अपना मत प्रतिष्ठित किया, "जातिकी जीवनी शक्तिका वर्द्धन नहीं—
समय की भाषाका उद्धार नहीं।" निर्जीव भाषाके लिए निरालाज
मुक्त छंदकी मशीनगन दी जिससे "जहाँ धड़ाधड़ मुक्त छंदके गोले निकल
शुरू हुए कि भाइयोंकी समझ में आ गया कि हाँ, कुछ पढ़ा जा रहा है

पन्तजी और अन्य छायावादियोंकी शब्दावलीको निरालाजीने
रूपमें 'शणवल' नाम दिया है। हिन्दी की प्रकृति 'श' को 'स', 'ण'
'न', 'व' को 'ब', कहनेकी है। 'ल' को तो लोग 'ल' ही कहते हैं लेकि
'शणवल' के साथ मिलकर उसमें क्लीवता आ जाती है। यहाँपर निराला
संस्कृत उच्चारणके विपरीत ब्रजभाषा और ग्रामभाषाओंकी प्रकृति
समर्थन कर रहे थे। छायावादी कवियोंने अक्सर जनसाधारणकी भाष
उपेक्षा करके काल्पनिक सौंदर्यके लिए एक असाधारण शब्दावली गढ
थी। निरालाजीने यह लेख सन् '३५ में लिखा था और उसके बाद उ
क्रमशः यह प्रवृत्ति जोर पकड़ती गई है कि गद्यमें ही नहीं, पद्यमें भी स
मुहावरेदार भाषाका प्रयोग करें। छायावादी चतुष्पदके स्वयं एक र
होनेके कारण वे उसकी कमजोर नसको पहचानते थे। इसलिए उन

चार भरपूर बैठा। लेकिन पन्तजी पर ही नही, वह वार उनकी अपनी रचनाओंपर भी है। 'विजन वन वल्लरी' में 'व' ही बोलता है और 'तुलसीदास' का आरम्भ 'शत शत शब्दोका सध्याकाल' से होता है। बात-चीतमें वह कहते थे कि यह शपाशप कालिदासके प्रभावके कारण हो गई है।

गीतोकी व्याख्या करते हुए उन्होंने भावोके तारतम्य और उनके सबद्ध विकासपर जोर दिया है। छायावादी कवियोपर असबद्धताका दोप लगाया जाता है, उसका दूसरा पहलू इस लेखमें पेश किया गया है।

छायावादका सबध विरह और अनन्तसे जोडा गया है। इस सबध को लेकर न जाने कितने व्यग्य लेख और कविताओंकी पैरोडी लिखी गई है। अनन्तकी ओर दौडने और अज्ञात प्रेमीके लिए आहें भरनेसे हिन्दीके साधारण पाठकोको कभी प्रेम नही रहा। लेकिन छायावादके इस कमजोर पहलूपर भी सबसे पहले निरालाजीने ही वार किया। "कलाके विरहमें जोशी बन्धु" नाम के व्यग्यपूर्ण लेखमें उन्होंने अनन्त और विरह की वह छीछालेदर की है कि उसके आगे कुछ कहना नामुमकिन है। आरम्भ ही में हिन्दीके आचार्योंको स्मरण किया है जिन्होने अपनी नाक कटाकर दूसरो का सगुन बिगाडनेकी शिक्षा दी थी। विरोध बढनेपर कविवरने सोचा कि किसीका शिकार करना चाहिए। शिकारके नामसे शेरकी याद आई लेकिन उन्हें याद आया कि विधवा से शादी करना शेरके शिकारसे भी बढकर है।

"मारो शेरे बबर से न डरना कभी
पर विधवासे शादी न करना कभी।"

इसलिए साहित्यकी विधवाकी तलाश करने लगे और जोशी बन्धुओंके लेख तक पहुँचे। विश्ववादके नामपर हृदयकी सकीर्णता दूर की और जो भावोंमें विधवा हो, उसीको विधवा मानकर लेख शुरू किया। इसके लिए उन्हें प्रमाण भी जोशी-बन्धुओंके लेखके आरम्भ ही में मिल गया। उन्होने रवीन्द्रनाथकी पक्तियाँ उद्धृत कीं —

"आमार माझारे जे आछे से गो
कोनो विरहिणी नारी।"

इसी तरह जोशी-बन्धुओंके अन्दर भी विरहिणी विधवा की मूर्ति प्रतिष्ठित हो गई और निरालाजीने जोशी-बन्धुओं पर ही नहीं, विरहवादके मूल प्रचारक विश्वकवि पर भी आक्रमण कर दिया।

सृष्टि और ज्ञानके संबंध में निरालाजीने वही पुरानी बातें कही हैं लेकिन कला और समाज के घनिष्ट संबंध पर वह जोर देते हैं। सामाजिक हिताहितकी चिन्ता न करके मनमाना साहित्य लिखना वैसा ही है जैसा महमूद मियांका अपने बकरेके पूँछकी तरफ से ज़िबह करना। "इसी तरह ज़बान हरएककी अपनी है, चाहे वह विषयका वर्णन सिरेकी तरफसे करे, चाहे पूँछकी तरफ़से।"

यह कहना कि सृष्टिके रोम-रोम में विरहका भाव व्याप्त था, साँपका विष झाड़नेका मंत्र पढ़ना है। निरालाजीने पैरोडी अस्त्रका प्रयोग करते हुए लिखा है :—

"अनमिल आखर अरथ न जापू।
जोशी युग कृत प्रकट प्रतापू॥"

जोशी बन्धुओंने लिखा कि समस्त शून्य मंडल नारीत्वके प्रभावसे भरा हुआ है। इसपर निरालाजीने गदाधरके गद्यकाव्यको स्मरण किया है। गदाधर लिख रहे थे, "हे सखि, मैं जो मर रहा हूँ, यह सब तुम्हारी ही करुणा है। मेरे जीवनकी हरी हरी डालियाँ......" इतना ही लिख पाए थे कि कविवरने उनसे कागज़ छीन लिया और पूछा, तुम्हारे मरने से सखीकी करुणा का क्या संबंध? उत्तर मिला, कुछ नहीं। अनन्तमें विरहको व्याप्त करनेसे ऐसे ही साहित्यकी सृष्टि होती है। सृष्टिके केन्द्र-स्थित अनन्त-व्यापी विरहकी अनुभूति आदि निरर्थक शब्दावलीकी ओर इंगित करके निरालाजी कहते हैं, "कैसी अद्भुत शब्द-मरीचिका है कि भावका प्यासा भटकता ही मर जाय। और सत्य कितना उज्ज्वल? दीपककी तरह अपने ही नीचे अन्धकार। धन्य है, धन्य है। जिस सृष्टिके केन्द्रमें

ब्रह्म है, आनन्द है, सत्य है, ज्ञान है वहाँ अनन्त व्यापी विरह, अनन्त वियोग, अनन्त अज्ञान, अनन्त दु ख ! क्या बात, क्या कहने !"

जोशी-बन्धुओने गोस्वामी तुलसीदासका यो उल्लेख किया था कि विरहवादी विश्वकविके सामने वे हेठे लगे। निरालाजीने तुलसीदासके जीवनकी कठोर तपस्या और निश्छल सत्यपरतासे अर्थोपार्जनसे निश्चित होकर ब्रह्मवादी कविता करने वाले विश्वकविके जीवनकी तुलना की। लेख काफी लम्बा है लेकिन अन्तमें निरालाजीको यह अफसोस ही रह गया कि साहित्यिकता और विरहके बारेमें वे एक पक्ति भी न लिख पाए। कटूक्तियोंके लिए क्षमा माँगते हुए लिख दिया है कि "अज्ञानका इतना बडा ज्ञानाडम्बर मेरी प्रसन्न-प्रकृतिको असह्य हो रहा था।" यह लेख उन्होंने सन् '२८ में लिखा था।

सन् '२६ से '३४ तक का समय निरालाजीके जीवनमें सक्रमणका युग कहा जा सकता है। वह अब भी रोमाटिक और छायावादी ढगकी रचनाएँ कर रहे थे लेकिन पुराने आदर्शोंमें उनकी वह श्रद्धा न रह गई थी। वे अब भी सोचते थे कि वर्ण-व्यवस्था सही है, शकराचार्यने जिस ब्राह्मणत्वका आदर्श प्रतिष्ठित किया था, वह श्रेयस्कर है लेकिन वे यह देख रहे थे कि इस व्यवस्थाके कारण समाजका एक बहुत बडा भाग दासताके बन्धनमें पडा हुआ न स्वय उन्नति कर सकता था और न समाजको ही आगे बढनेका अवसर देता था। वे देख रहे थे कि रीतिकालीन रूढियाँ साहित्यके विकासको रोके हुए थी, इन्हें तोडकर अन्य देशोके भावोसे आदान-प्रदान करनेकी उन्होंने माँग की। उन्होने अपनी कवितामें नए भावोके साथ नए रूप भी चलाए और अपने प्रिय मित्रो तक का आक्षेप होने पर वे भरपूर उत्तर देनेसे कभी नही चूके। इतिहासके प्रति उनके दृष्टिकोणमे एक निश्चित परिवर्तन हुआ। समाजमें वे पहले से ही विद्रोही थे लेकिन यह विद्रोह अब उन्हें समाजके निम्नस्तरोकी ओर खीच लाया। इसी प्रवृत्ति का परिणाम 'देवी', और 'चतुरी चमार' नामके युग प्रवर्तक रेखा-चित्र है। इसके साथ भाषाके प्रति भी उनके विचार बदले। नए सांस्कृतिक

उत्थानके लिए भाषा और भाव दोनोंमें ही परिवर्तन होना आवश्यक था। लेकिन यह परिवर्तन अकस्मात् नही हो गया। छायावादसे जो मोह था, उससे संघर्ष करना पडा और इस संघर्षकी छाया उनकी नई कविताओंपर पडी। 'तुलसीदास' और 'रामकी शक्ति पूजा' में छायावादकी कलाको चरम शिखर पर पहुँचाकर मानो उन्होंने विराम किया।

८

तुलसीदास और राम की शक्ति-पूजा

'तुलसीदास' में निरालाजीने इतिहास पर नई दृष्टि डाली है। मध्यकालमें समाजका जो पतन हुआ और पतनमें शूद्रोंपर जो अत्याचार हुए, वह इस कथाकी पृष्ठभूमि है। मूलचित्र गोस्वामी तुलसीदासके अन्तर्द्वन्द्व का है। वे अपनी साधनासे समाजको मुक्त करना चाहते हैं लेकिन मनकी दुर्बल वासना इसमें बाधक होती है। अन्तमें गृह त्यागनेपर उन्हें नारीका तेजोमय रूप दिखाई देता है और बाधक होनेके बदले वह उनके जीवनकी महान् प्रेरणा बन जाती है। निरालाजीकी रचनाओं में यह एक अत्यंत सुगठित कविता है और इतनी लम्बी कविता उन्होंने पहली बार लिखी थी। छंद भी ऐसा चुना है कि पढ़ने पर तरंगों-से भंग पाठकोंको आगे बहाते चलते हैं। दो पंक्तियाँ छोटी और तीसरी बड़ी मिलकर आधा बन्द बनाती हैं। इसीको दोहरानेसे एक पूरा बन्द बनता है। मुक्त छंदके अलावा छंद-बद्ध कवितामें निरालाजी ऐसा ओजगुण पहले न ला सके थे। उनकी कलामें यह एक नया विकास था। चित्र सौंदर्यमें यह कविता अनूठी है। इतिहास और मनोविज्ञान, दोनोंसे ही भाव लेकर उन्हें सुरंग मूर्त रूप दिया गया है।

आरम्भमें शताब्दियोंके सांध्यकालका चित्रण किया गया है। बादलों की तरह भवें टेढ़ी किए यह सांध्यकाल भारतके आकाश पर छाया हुआ है। पंजाब, कोसल, बिहार, धीरे-धीरे सभी प्रांत इस कालिमाके नीचे आ गए। मूसलाधार वृष्टिसे मुगलों और पठानोंके आक्रमणकी तुलना सांध्यकालकी पृष्ठभूमिमें सार्थक बैठती है। बादलोंसे वज्र टूटकर गिरता है और नीचे

जल-प्रवाहका प्रखर वेग असह्य है। बुन्देलखंड, कालिंजर आदिका पूर्व गौरव नष्ट हो गया है। वीर बन्दी बने हुए हैं और किंपुरुष आनन्द मना रहे हैं। जो सच्चे राजपूत थे वे स्वर्ग गए, जो रह गए हैं, वे नृपवेश सूत बन्दीगण हैं। इनका कार्य आक्रमणकारियोंकी कीर्ति-गान ही रह गया है। जातीय जीवनकी नदियाँ एक नई संस्कृतिके सागरकी ओर बह चलती हैं।

पहली मूसलाधार वृष्टिके बाद धरतीपर शांति छा गई। बादलोंके बरस जानेसे आकाश धुल गया है। हवा सबको स्नेह सुखद स्पर्श देने लगी। चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे पृथ्वीका चुम्बन करने लगा। समय सुन्दर छंदोंमें बँधा हुआ लघु गति और नियंत्रित पदोंसे चलने लगा। संस्कृतिका सूर्य डूबनेपर सुन्दरियाँ अपने कर कुमुदोंसे समयकी गति पर ताल देने लगीं। बिरला ही कोई ऐसा होगा जो हाथ मल रहा हो। विलासकी धारामें मदासक्त होकर देश बह चला। नदी का जल छलछल शब्द करके लोगोंको सावधान करता था लेकिन वे किनारेके पाषाणकी तरह मंत्रमुग्ध होकर कल-कल शब्द ही सुन रहे थे।

इसी समय राजापुरमें सुन्दर प्रतिभा और पुष्ट शरीर वाले युवक तुलसीदास काव्य शास्त्रका अध्ययन करके जीवनमें प्रवेश कर रहे थे। एक दिन मित्रोंके साथ वे चित्रकूट गए और वहाँ मनमें कुछ नए ही भाव पैदा हुए। जैसे उषाको कुहरेका जाल घेरे हो, उसी तरह प्रकृति भी एक ऐसी भाषामें बातें कर रही थी जो पूरी तरह समझमें न आती थी। तुलसीदासको अपने मनमें संस्कारोंका निःशब्द सागर दिखाई देता है जिसके उस पार सत्यकी अस्फुट छवि दीख रही है। प्रकृति कहती है कि सूर्यका प्रचण्ड ताप उसे जला रहा है। ऋतुएँ आती हैं अपना प्रभाव छोड़-कर चली जाती हैं, उन्हें उसके सुख-दुखसे ऐसे ही वास्ता नहीं है, जैसे पेट भरने वाले लोग देशमें आते जाते रहते हैं और अपने स्वार्थके आगे उन्हें प्रजाके कष्टोंका ध्यान नहीं रहता। जातीय संस्कारोंकी पृथ्वीपर असुर चल रहे हैं। कविको चाहिए कि वह त्याग, साधना और मुक्तिके गीत गाए। जैसे रामने अपने स्पर्शसे अहल्याका उद्धार किया था वैसे ही तुलसी-

दासको अपनी साधनासे जड़ भारतका उद्धार करना है। उस चेतनाके स्पर्शसे ही पाषाण-खंड हार बनतेहैं, नही तो प्रकृतिमें झरने, झाड़ी, नदी, कगार, पशु-पक्षियोंके विहारको छोड़कर और कुछ नही है। देशमे ऐसा युग आया है जब कामदेवके बाण से झरती हुई केशर पृथ्वी और आकाशको रँगे हुए हैं। प्रत्येक मानसपर उसीकी छाया है। इसलिए छविकी मूर्ति दिखाई नहीं देती। लोग भ्रमवश सुप्तिको ही जागरण समझ बैठे हैं।

प्रकृतिकी वाणी सुनकर तुलसीका मन-विहंग आकाशमें उड़ चलता है। अपनी उड़ानमें वह रंग-रंगकी तरंगें पार करता है। ये सब सामाजिक और व्यक्तिगत संस्कार हैं। इन्हें पार करनेपर उन्हें भारतकी वास्तविक दशा दिखाई देती है। जैसे सूर्यको राहुने ग्रस लिया हो और उसकी आभा मन्द पड़ जाय, उसी तरह कुसंस्कारोंकी छायामें देश-काल बँधा हुआ है। देशमें छोटे-छोटे सम्प्रदाय, मत-मतांतर परस्पर संघर्षमें लगे हैं। वर्ण-व्यवस्था विशृंखल हो गई है। क्षत्रिय रक्षा नही कर सकते, ब्राह्मण चाटुकार हो गए हैं। शूद्र वर्ण-व्यवस्थाके चरण बनकर दूसरे वर्णोको ऊँचा उठाए हैं। इसके बदले उन्हें केवल अपमान मिलता है।

"चलते फिरते पर निस्सहाय
वे दीन क्षीण कंकाल काय
आशाकेवल जीवनोपाय उर उर में;
रणके अश्वोंसे शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों दलके दल
शूद्रगण क्षुद्र जीवन संबल, पुर पुरमें।
वे शेष-श्वास, पशु, मूक भाष,
पाते प्रहार अब हताश्वास;
सोचते कभी, आजन्म ग्रास द्विजगणके
होना ही उनका धर्म परम,
वे वर्णाधम, रे द्विज उत्तम,
वे चरण, चरण बस, वर्णाश्रम रक्षणके।"

इन शूद्रोपर वर्ण व्यवस्था के चरण उच्च वर्गोंके अत्याचारके ही कारण थे। देशका सास्कृतिक पतन हुआ और भारतके नभमडलमे दासता का अन्धकार छा गया। तुलसीदासने समझ लिया कि इस अन्धकारको पार किए बिना सत्यके दर्शन नही हो सकते और न जीवन में नया प्रवाह आ सकता है। इसलिए विरोध से द्वद्व-समर करनेके लिए वे तैयार होते है।

कविकी चेतनाकी ऊर्मियाँ भारतका अन्धकार दूर करनेके लिए उमड कर कविके मनोद्वारोंसे टकराती है। लेकिन इसी समय उस छायाके ऊपर तारिका सी चमकती हुई रत्नावली दिखाई देती है। तुलसीदास क्षण-भर उसका सौदर्य देखते रह जाते है; फिर वह अदृश्य हो जाती है और मन धीरे-धीरे नीचे उतरने लगता है। रत्नावलीकी छविमें रँगी हुई प्रकृति अब सुन्दर दिखाई पडती है। वह मित्रोके साथ पचतीर्थ होते हुए पयस्विनीमे स्नान करते है और इसी तरह और कुछ दिन घूमनेके बाद वह घर लौट आते है।

तुलसीदासको अब सारा ससार अबलामय दिखाई देता है। नीला आकाश उसका अलकजाल है, चद्रमा मुख, चद्रमा का कलक भौहे और उसका प्रकाश प्रेमकी तरह कविको ढके हुए है। तुलसीदासका मन-चकोर उसी चद्र-छविको देखता रहता है। यहाँ पर 'सुकुलकी बीवी' में निरालाजीके वे वाक्य याद आते है जिसमें उन्होने ससारको अबलामय देखनेकी बात कही हैं, "घोर सुषुप्तिके समयको छोडकर बाकी स्वप्न और जागृतिके समस्त दड ब्रह्माडको अबलामय देखता था।" तुलसीदासभी नयनोकी मुग्ध दृष्टिमें बधे हुए उस अर्थको न जान पाए जो पलकोंके उस पार छिपा था। सौंदर्यमें बँधे हुए चद्र, सूर्य, तारे, ग्रह, उपग्रह एक दूसरेके पीछे चलते दिखाई देते है। सौदर्य बन्धन भले हो, लेकिन इस बधनके बिना प्रगति ,असभव है। फूल विकास-पथकी बाधाओंको पार करके दिनका मुँह देखता है। गन्धवाला फल जड होनेपर भी अपने गुणके कारण पृथ्वीमें व्याप्त होता है। इसी प्रकार प्रियाके साथ बँधे होनेपर भी तुलसीदास ससारमें अपनी व्याप्ति

देखते हैं। उन्होंने यह नहीं सोचा कि युवतीके रूपमें कामदेव पुरुष-देश को जीतकर वहाँ अपनी विजय पताका उड़ा रहा था। जैसे सूर्यकी किरणों से बादल रंग-बिरंगे हो जाते हैं, उसी तरह रत्नावलीके संसर्गसे युवक तुलसी-दासके मनोभाव भी रंगीन हो उठे।

रत्नावली पतिको प्रसन्न रखनेवाली नामानुरूप सुन्दरी है। अज्ञानके अन्धकारमें सत्यकी यष्टिकी तरह वह प्रियको पार ले जाने वाली है। श्रद्धाकी प्रतिमाकी तरह वह माया के घरमें प्रियकी निद्राकी सीमाएँ बाँधे हुए है। पति जब सोता है, वह जागती रहती है। पति जब प्रेमकी फाग खेलता है, वह उसीमें छिपी हुई त्यागकी अग्नि-शिखाकी तरह जलती रहती है। पति जड़ पृथ्वीके दो कगारों जैसा है और उसकी बाहोंमें बँधी हुई रत्नावली आकाशकी गंगाकी तरह प्रवाहित है।

रत्नावलीके भाई आकर उससे माता-पिताका संदेसा कहते हैं। माता उलाहना देती है और पिता कहते हैं: "जोगी रमता मैं अब तो।" भाभी ने कुंकुम-शोभाको लानेको कहा। सबने अपने मनकी बातें कहीं लेकिन माँका करुण विलाप अकथनीय था। समाजमें उसके भाई और पिताका अपमान भी होता है। क्या पैर इसीलिए पूजे थे कि वे उस देहरीकी ओर फिर लौटकर न आएँ? रत्नावलीको अपने धर्म और मर्यादाका ज्ञान होता है। भावोंके घने बादलोंने पति-स्नेहके उपवनको ढक लिया। वह चलने को तैयार हो गई मानो सीता जिस पृथ्वीसे निकली थी, मर्यादाकी रक्षाके लिए फिर उसीमें विलीन होनेको चली हो।

'तुलसीदास बाजारमें खड़े सोच रहे थे कि इस बार सालेको किस घाट उतारें। एक बार कन्यादान कर दिया तो अब क्यों पीछे पड़े हैं? ऐसे आ धमकते हैं जैसे हम रनी दो दिनको उधार लाये हैं। पर लौटते समय अनेक रंगोंके फूल खिले हुए देखे। प्रातःकालीन सूर्य आकाशमें चढ़ रहा था। लेकिन उनका गृह-पद्म मुरझाया हुआ था। सांसारिक व्यवहारका ज्ञान न रहा; ससुरालकी ओर पैर उठ ही तो गए। रास्ते में प्रकृति सुखमें

डूबी हुई दिखाई दी। किसीको गायें चराते हुए देखकर वृन्दावनमें कृष्ण और गोपियोंकी याद आई। ससुरालमें बड़ी खातिर हुई। लोग कानाफूसी भी करने लगे। भाभीने कहा, यह रत्नावलीसे अपने प्रेमका परिचय दिया है। भाभीके व्यंग्यसे रत्नावली जल उठी परन्तु अपनी ज्वाला को भीतरही छिपाये रही। उसे लगा कि पतिके मन में बैठा हुआ चोर उसे निरावरण करना चाहता है; वह ईश्वरसे लाज बचानेकी प्रार्थना करने लगी। घरमें आँधी उठनेके पहलेकी निस्तब्धता छा गई। भोजन कराके भाभी तुलसीदासको शयन-गृहमें छोड़ आईं। प्रियका चन्द्र-मुख देखकर रत्नावलीके हृदयमें आज उल्टा ज्वार बह चला। जिस तरह हवा से उड़ाई हुई मेघमाला अन्तरमें बिजली छिपाए पर्वतके पास आकर ठहरती है, उसी तरह रत्नावली पतिके पास आई। जैसे चन्द्रकोंसे अंकित पूँछ फैलाकर मोर नाच उठता है, वैसे ही मेघमाला-सी रत्नावलीको देखकर तुलसीदासका मन-मयूर नाच उठा। रत्नावलीके बाल खुल गए, आँखोंकी पलकोंने गिरना बन्द कर दिया। उसके मोहके बन्धन टूट गए; वह अरूप का ध्यान करती हुई योगिनीकी तरह उठकर खड़ी हो गई। कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी की तरह रत्नावली बोली :—

"धिक् आये तुम यों अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ कुलधर्म धूत
रामके नहीं, कामके सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ,—हाड़-चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आये।"

तुलसीदासके पूर्व संस्कार जागे। उसी क्षण उनका काम भस्म हो गया। उन्हें सामने स्त्री नहीं, आगकी जलती हुई प्रतिमा दिखाई दी। वह उन्हें विश्व-हंस पर स्थित नीलवसना शारदा-सी लगी। उसकी दृष्टि से बँधकर एक बार उनका मन फिर ऊपर उठा; आकाशके बहुरंगी स्तर, एक क्षणमें पार कर गया। और संस्कारोंके धूसर समुद्रके ऊपर फिर एक

नवीन तारिका चमक उठी। उसीमें शारदाका वह रूप लीन हो गया। केवल अरूपकी महिमा रह गई। आकाश निस्तब्ध रह गया। ज्ञानसे खुले हुए नेत्र बाहरसे मुँद गए। जिस कलीमें कविका मन बन्द था, वह सरस्वती बनकर छंदकी सुरभि लिए हुए उसीके भीतर खुल गई।

जब अपनेपनका बोध हुआ तब बाहर चलनेका विचार आया। अव-रोधोंसे मुँह मोड़कर जीवनधारा प्रतिकूल दिशामें बह चली। पुनः लहरोंका शब्द सुन पड़ने लगा। नए भावोंसे पूर्ण शब्द सुनाई पड़ने लगे। असुरों से पीड़ित ऋषियोंको हर्ष हुआ। पार्थिव ऐश्वर्य और अज्ञानकी रात बीत गई। पूर्वाचलपर ज्योतिका प्रपात झरने लगा। तुलसीदासकी चेतना में भारतकी सोई हुई महिमा जागी। एक बार जड़से चेतनाका, अन्धकार से प्रकाशका, पराधीनताका स्वाधीनतासे संग्राम होगा। एक ओर कवि की सरस्वती होगी, दूसरीओर प्रजा-पीड़कोंका छल प्रपंच। जैसे सूर्य एक-एक बिन्दु जल जोड़कर वर्षाके बादल बनाता है, वैसेही मत मतान्तरोंमें बँटे हुए जनोंको मिलाकर कवि नए समाजका निर्माण करेगा। आज देशकालके शरसे विद्ध होकर अक्षेप छविशाली कवि जागा है। पापकी रागनियाँ निस्पंद होकर सो रहेंगी। संसारकी वीणाके पुराने तारोंपर नए प्रकाशकी धारा पड़ी है। कविके स्पर्शसे नवजीवनके गीत साकार होकर जनमात्रकी संपत्ति बनेंगे।

कहाँ क्या हो रहा है, कविने कानोंसे कुछ न सुना। वह अपना भाव मनमें ही गुनता रहा। सामने देखा, पत्नी खड़ी है, आँखें छलछला आई हैं। भाववीणाकी सभी तानोंसे वह अधिक भावमयी थी। कविने अपने दाम्पत्य जीवनका अन्तिम वाक्य कहा, "तुमने जो प्रकाश दिया है, उससे अब घरमें रहनेका तनिक भी अवकाश नहीं। मैंने इस समय जीवनका जो व्रत लिया है, उससे फिर इस ओर कभी देखूँगा भी नहीं।"

धीरे-धीरे वह बाहर आए। हृदयमें वही परिचित मूर्ति थी। अपना क्षुद्र रूप छोड़कर वह विश्वका आश्रय बन गई थी। सुखके जलपर तिरती हुई कमलाके रूपमें सामने आई। कविताके आरम्भमें भारतका जो सांस्

सूर्य अस्त हो गया था, वह पुन उदय हुआ और रत्नावली ही "प्राची दिगन्त उरमें पुष्कल रवि रेखा" बन गई।

इस कवितामें निरालाजीने नए चरित्र चित्रण और नाटकीय घटना-सगठनका परिचय दिया है। इसके पहले किसी भी छायावादी कविने इस तरहकी गाथा न लिखी थी। चरित्र चित्रणके साथ उन्होने ऐतिहासिक पृष्ठभूमिका ध्यान बराबर रक्खा है। मध्यकालीन समाजकी मूल समस्याको उन्होने अच्छी तरह पहचान लिया था। मुगल आक्रमण के पहले ही जातीय जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। तृष्णोद्धत सगर्व क्षत्रिय देशकी रक्षा करनेमें असमर्थ हुए। शूद्रोका विशाल वर्ग उच्च वर्गों द्वारा इस तरह रौंद डाला गया था जिस तरह लहलहाते पौधोको फौजी घोडे रौंद डालते है।

इस परिस्थितिमें तुलसीदासका जन्म होता है। उसके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी उनके व्यक्तित्वका विकास होता है। विलासिताका वातावरण उन्हे भी मोहित कर लेता है। रत्नावलीमें उनकी आसक्ति व्यक्तिगत कामुकता न होकर सामाजिक ह्रासका प्रतीक बन जाती है। चित्रकूटमें जाकर जब वह प्रकृतिका नया सदेश सुनते है, तब मानो सामाजिक कष्टो से द्रवित होकर भारतीय सतोके ज्ञान-नेत्र खुलते है। रत्नावलीके शब्दोमें तुलसीदासको नही, वरन् साहित्य और सस्कृतिकी समस्त रीतिकालीन परम्पराको धिक्कारा गया है। उसके योगिनी रूपमें मध्यकालीन नारीका नायिका भेद वाला रूप जलकर भस्म हो गया है। तुलसीदास सत और भक्त होते हुए भी बहुत बडे समाज-सुधारक थे, इसमे आज किसीको सदेह नही रह गया। लेकिन उनके हृदयमें मनुष्योके दलित वर्गके लिए कितनी सहानुभूति थी, इसे हम अपने वर्तमान सस्कारोके कारण बहुधा भूल जाते है। यदि किसीको निरालाजीकी कवितामें उनका चरित्र अस्वाभाविक लगे, तो उसे रामचरितमानसमे 'बिन अन्न दुखी सब लोग मरै' आदि कलियुगका वर्णन पढ लेना चाहिए। इसलिए कवितामें क्षोप-श्वांस,

पशु मूकभाष' आदिका उल्लेख नितान्त सार्थक है। और तुलसीदास ही ने लिखा था —

'कत विधि सृजी नारि जग माँही।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाही॥'

किस मध्यकालीन कविने नारीके प्रति ऐसी सवेदना प्रकट की है जैसी तुलसीदास ने ? और कौन कह सकता है कि —

'मानहु मदन दुन्दुभी दीन्ही।'
'खजन मजु तिरीछे नैननि।'

आदि पक्तियाँ लिखते हुए तुलसीदासके ज्ञान-नेत्रोंके सामने प्रेममूर्त रत्नावली ही का चित्र नही था ? इसलिए जब निरालाजी कहते हैं कि तुलसीदास अन्तरमें रत्नावलीकी छवि लिए हुए घरसे निकले और उसकी मूर्ति विश्वका आधार बन गई तो वह एक सार्थक कल्पना करते है।

कविताके आदि और अन्तमें कथाकी जैसी चित्रमय पृष्ठभूमि है, वैसा ही उदात्त चरित्र-चित्रण भी है। कथोपकथनमें वैसा ही ओजगुण और स्वाभाविकता है। छन्दका प्रवाह लगभग छ सौ पक्तियोंमें पाठकके मन को कविताके साधारण स्तरसे बराबर ऊँचा उठाए रखता है। भारतीय स्थापत्यकलामें अलकरणके लिए सुन्दर मूर्तियोंके समान उपमाओं और रूपकों की छटा देखते ही बनती है। वे जितनी सुन्दर है, उतनी ही सार्थक। रत्नावलीके केशजालको मेघमाला बनाकर तुलसीदासके मनको मयूर बनाना निरालाजीका ही काम था। आरम्भके छन्दमें सास्कृतिक सूर्यास्तके चित्रण से अन्तिम छन्दमें पुष्कल रवि रेखाकी झाकी तक सपूर्ण कविता एक विशाल रूपकम बँधी हुई है। ऐसा निर्माण-सौंदर्य नई हिन्दी कविताके लिए अतद्भुत था। शब्दावली कठिन है, भावोंमें जहाँ-तहाँ दुरूहता है, लेकिन कविका प्रयास यह रहा है कि मध्यकालीन समाजके सत्य तक हमें पहुँचाए। नि सदेह छायावादी कलाको उसने यहाँपर अत्यत पुष्ट और विकसित रूपमें दिखाया है।

'तुलसीदास' से मिलती-जुलती कविता 'रामकी शक्ति-पूजा' है। पहली रचनामें रामचरित्रके निर्माता कवि तुलसीदासका चित्रण था, इस कवितामें रामही नायक हैं। पहली कवितामें उन्होंने मध्यकालीन समाजका सत्य दिया था, इस कविताकी पृष्ठभूमि पौराणिक है परन्तु उसका सत्य कविके इसी जीवनका है।

"धिक जीवनको जो पाता ही आया विरोध", यह पंक्ति पूरी कविताका सूत्र है। कहना न होगा कि यह पंक्ति स्वयं कविके जीवनपर खूब घटित होती है। राक्षस, वानर, लंका, समुद्र तट, यह सब एक विशाल सैटिंग मात्र है, वास्तविक संघर्ष रामके हृदयमें है। वह शक्तिकी साधना कर रहे हैं और प्रश्न है कि वह विजयी होंगे या नहीं। 'तुलसीदास' में कवि एक हद तक तटस्थ है, 'रामकी शक्ति पूजा' पर कविकी अपने व्यक्तित्वकी छाप है।

रवि अस्त हो गया लेकिन ज्योतिके पत्रपर राम-रावणके अपराजेय समरका इतिहास सदाके लिए अंकित हो गया। इस युद्धमें प्रतिपल व्यूह परिवर्तित किए गए हैं, वानर गण भयानक 'हूह' शब्द करते हुए राक्षसों पर टूट पड़े हैं, रामचन्द्र रावणपर छोड़े हुए अपने बाणोंके व्यर्थ होनेसे अग्नि-नयन हो उठे हैं। लंकापति उद्धत होकर वानर-दलका मान मर्दन कर चुका है, सुग्रीव, अंगद, गवाक्ष, नल, आदि मूर्छित हो गये हैं, युद्धके समुद्र-गर्जनमें केवल हनुमानकी चेतना स्थिर रही है, वही जानकीके हृदयको आशा बँधाए हुए हैं।

संध्या होने पर दोनों दल अपने शिविरोंको लौटे हैं। 'तुलसीदास' में असुरों द्वारा संस्कारोंकी पृथ्वी मली गई थी, यहाँ भी राक्षसोंकी पद-चाप से पृथ्वी हिल उठती है। तमोगुणका प्रतीक आकाश—जो रावणके इष्टदेव शंकरका निवास है—दानवीय विजयसे उल्लसित और विह्वल हो उठता है। वानरोंकी सेना वैसे ही खिन्न हो रही है। रामके धनुषकी प्रत्यंचा ढीली पड़ गई है। जटा-मुकुट खुलकर पृष्ठपर, बाहुओं और वक्षपर इस तरह फैल गया है जैसे दुर्गम पर्वतपर रात्रिका अंधकार फैल गया हो।

इस निराशाकी तामसीमें दूर चमकती हुई तारिकाओंकी तरह उनके दो नेत्र दीप्त हो रहे हैं।

समुद्रके किनारे पर्वत हैं; वहींपर वानरी सेना एकत्र हुई है। अमावस्याकी रातमें आकाश मानो अँधेरा उगल रहा था। हनुमानके पिता पवनदेव स्तब्ध थे। विशाल समुद्र अप्रतिहत स्वरमें गरजकर शांति भंग कर रहा था। पर्वत ऐसे निश्चल था मानो ध्यानमग्न हो। प्रकाशके लिए केवल एक मशाल जल रही थी। रामचंद्रके मनमें संशय हो रहा था कि रावणको जीत पायेंगे या नहीं। जो मन आज तक अशांत न हुआ था, वही असमर्थ होकर अपनी हार मान रहा था। तुलसीदासने मनोदेशमें ऊपर उठते हुए जैसे रत्नावलीकी छवि देखी थी, वैसेही रामको अचानक स्वयंवरके दिनोंकी जानकीका स्मरण हो आता है। उपवनका वह मिलन, नयनोंका नयनोंसे संभाषण, जानकी का वह प्रथम कम्पन—वह सब याद आते ही क्षण भरको वह अपनी स्थिति भूल जाते हैं और शिवका धनुष-भंग करनेके लिए उनका हाथ फिर अपने आप उठ जाता है। फिर उन्हें अपने दिव्य शर याद आतेहैं जो देवदूतोंके समान उड़ते हुए ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसोंको भस्म कर चुके हैं। उन्हें वह शक्तिकी मूर्ति याद आती है जो आज युद्धमें समस्त आकाशको छाए हुए थी। रामके सभी अस्त्र उस महानिलयमें बुझकर लीन हो गए। उनके नेत्रोंमें सीताके राममय नेत्रोंकी छवि अंकित हो गई। तभी उनके दैन्यको तिक्त करनेके लिए रावण भयानक स्वरमें अट्टहास कर उठा, पराजित रामके नेत्रोंसे मुक्ता जैसे दो अश्रु-विन्दु ढुलक पड़े।

महावीर हनुमान अस्ति और नास्तिके रूप रामके दोनों चरणोंको देख रहे हैं। अश्रु-विंदु देखते ही उनका मन अस्थिर हो उठा। पिता-पक्षसे उञ्चासों पवन डोल उठे। समुद्रमें पहाड़ जैसी तरंगें उठकर गिरने लगी। हनुमान अट्टहास करते हुए महाकाशमें पहुँच गए। रावणकी महिमा अमावसके अन्धकारके समान थी और हनुमान रामभक्तिके तेजके समान

उसे छिन्न कर रहे थे। रावणके इष्टदेव शंकरके निवास महाकाशको समेट लेनेके लिए महावीर पहुँच गए। इस महानाशको देखकर एक क्षणको शिव भी चचल हो गए। महावीर वेगको सभालनेके लिए उन्होंने शक्तिका स्मरण किया। जिसका मन कभी शृगाररत नही हुआ, वह रामकी मूर्तिमान अर्चना शिवके सामने आ पहुँची। उन्होंने शक्तिको सावधान किया कि इस ब्रह्मचारीपर प्रहार करनेसे तुम्हारी ही हार होगी। उसे विद्यासे ही प्रबोध देना चाहिए। सहसा आकाशमें अजनारूपमें शक्तिका उदय हुआ। उन्होने हनुमानको मीठी फटकार बतलाई—बचपनमें सूर्यको निगल लिया था, वही भाव तुम्हें आजभी विकल कर रहा है। यह महाकाश शिवका निवास स्थान है जिन्हे रामचद्र भी पूजते हैं। उसे नष्ट करनेके लिए क्या रामचन्द्रने आज्ञा दी है? फिर सेवक होकर यह अनधिकार चेष्टा कैसी? यह फटकार सुनकर महावीरका मन नम्र हो गया और उनपर फिर वही सेवा भाव छा गया।

इधर विभीषणको चिन्ता हो रही थी कि रामचन्द्रकी यही दशा रही तो लकाका राज कैसे मिलेगा! उन्हे उत्साहित करनेके लिए विभीषणने अनेक वीर वचन कहे लेकिन रामके मनपर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने शात मनसे उत्तर दिया, "मित्रवर, यह लडाई मुझसे न जीती जायगी। स्वय महाशक्ति रावणका समर्थन कर रही है। उन्हें कौन परास्त कर सकता है?" एक बार लक्ष्मणको सहज क्रोध हो आया, जाम्बवान स्थिर रहे, सुग्रीव व्याकुल हुए और विभीषण आगेका कार्यक्रम सोचने लगे। रामचद्र आज श्रीहत हो गए! महाशक्ति रावणको अपने अकमें वैसेही लिये थी, जैसे चद्रमा कलक धारण करता है। वानर-दलको विचलित होते देखकर वह जब जब शर-सधान करते थे, महाशक्तिके नेत्रोमें तब तब अग्नि दीप्त हो उठती थी। फिर महाशक्तिने रामको इस दृष्टिसे देखा कि उनके हाथ बँध गए और धनुष खीचते ही न बना।

निरालाजीने स्वामी सारदानन्दजी महाराज वाले लेखके अन्तमें अपने स्वप्नका उल्लेख किया था,—"ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामाकी बाँहपर मेरा

मस्तक, मैं लहरोंमें हिल रहा हूँ।" इस स्वप्नके साथ उनके जीवनका एक सत्य यह भी था —

"पश्चात् देखने लगी मुझे बँध गए हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त।"

"रामकी शक्ति-पूजा" में इस तरहकी असमर्थताका अद्वितीय चित्रण हुआ है।

जाम्बवानने सलाह दी कि शक्तिकी आराधना करनेसे ही रावण को पराजित करना सभव होगा। यह प्रस्ताव सभी को पसंद आया। हनुमान एक सौ आठ कमल लेने चले। रात बीत गई और नभके ललाटपर प्रथम किरण फूटी। समरभूमिमें फिर कोलाहल होने लगा लेकिन रामचन्द्र मनको एकाग्र किए दुर्गाका जप कर रहे थे। इसी प्रकार पाँच दिन बीत गए। छठे दिन उनका मन योगियोंके आज्ञा नामक चक्र तक पहुँचा। जपके महाकर्षणसे अम्बर थर-थर काँपने लगा। देवीको कमल अर्पित करते हुए राम एक ही आसनपर स्थिर बैठे रहे। आठवें दिन एक इन्दीवर रह गया और मन सहस्रारको पार करनेकी बाट जोहने लगा। दो पहर रात बीतने पर साक्षात् दुर्गा आकर पूजाका अन्तिम फूल उठा ले गईं। हाथ बढ़ानेपर फूल न मिला तो रामका मन चंचल हो उठा। ध्यान छोड़कर उन्होंने पलकें खोली और यह विचार आते ही कि आसनको छोड़ने से असिद्धि होगी, वे अपने जीवनको धिक्कारने लगे। विरोध और निरन्तर विरोध, साधनोंका अभाव और सदा ही अभाव! जानकीका उद्धार कैसे करें? तभी उनके अविनीत मनने कहा, माता मुझे राजीव-नयन कहती थी। दो नील कमल तो अभी शेष हैं। इसलिए,

"पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।"

यह कहकर उन्होंने महाफलकवाला प्रदीप्त महाशर हाथमें लेलिया। ज्योंही अपना दक्षिण नेत्र अर्पित करनेको हुए तभी देवीने साधुवाद देते हुए उनका हाथ पकड़ लिया।

"साधु, साधु, साधक धीर, धर्म धन धन्य राम
कह, लिया भगवतीने राघवका हस्त थाम।"

रामचद्रने शक्तिको प्रणाम किया और वे विजयकी भविष्यवाणी करके रामके मुखमे लीन हो गईं।

"रामकी शक्ति पूजा" जैसी नाटकीयता निरालाजीकी और किसी भी कवितामें नही। यहाँ उन्होंने अपने जीवनकी अनुभूति, निराशा, पराजय, सघर्ष और विजय-कामना को नाटकीय रूप दिया है। आकाश और समुद्रके सम्मिलित गर्जनमें रामका व्यक्तित्व कुछ क्षणको मानो खो जाता है। यह क्रियाशील तमोगुण जीवनकी परिस्थितियाँ हैं जिन्हें परास्त करनेके लिए राम सदा साधनोंकी खोज करते रहे है। राम शक्तिकी साधना करते है। यह साधना और भी महत्वपूर्ण हो उठती है जब हम उस चित्रका स्मरण करते है जहाँ राम समुद्रके किनारे अँधेरेमे अकेले बैठे है, सिरपर एक मशाल जल रही है और समद्रके गरजनेके साथ रावणका उन्मत्त अट्टहास सुनाई देता है। यह राम तुलसीदासके मर्यादा पुरुषोत्तम नही हैं। इनमें ब्रह्मकी पूर्णताके बदले मनुष्यकी अपूर्णता है। वह अधीर हो जाते हैं, सीताकी स्मृतिसे मोहित हो जाते है, आँखोंसे आँसू भी गिरने लगते है, इसीलिए शक्तिकी साधना इतनी महत्वपूर्ण है। रामके रूपमें कविने जीवनकी परिस्थितियोंको एक बार फिर चुनौती दी है। उसके नायक युद्धके लिए फिर तैयार होते हैं। लेकिन यह महाशक्ति एक दैवी शक्ति है। शक्तिका आकर रामका हाथ पकडना एक मनोमुग्धकारी चमत्कार मात्र है। रामके सघर्षका चित्र जितना प्रभावशाली है, उतना उनकी विजयका नही। कविके जीवनमें सघर्ष ही सत्य रूपमें आया है। विजय की कामना अपूर्ण रही है।

यहाँ तुलसीदासकी अपेक्षा चरित्र चित्रणमें विविधता है। विभीषण, हनुमान आदिके चित्र महाकवि बाल्मीकि और मिल्टनकी याद दिलाते हैं। थोड़ेसे शब्दोंमें रेखाचित्र बनानेमें कविने नई क्षमताका परिचय दिया है। योगदर्शनमें काव्यके लिए जो सुलभ उपकरण मिले, उन्हें कविने मूर्त रूप

दिया है। अ ज्ञा, सहस्रार आदि चक्रोंपर रामचन्द्रके मनके चढने की क्रिया के अतिरिक्त हनुमानका समुद्रको विलोडित करते हुए महाकाशमें चढना ओजपूर्ण वर्णनमें अनूठा है। प्रकाश और अन्धकारका ऐसा चित्रमय सम्मिश्रण उन्होंने पहले कभी न किया था। इसकी प्रतीक-व्यंजना अद्भुत है। रावण समस्त तमोगुणी विघ्न-बाधाओंका प्रतिनिधिमात्र दिखाई पड़ता है। उसके साथ शिव, आकाश और शक्ति सभी क्रियाशील जान पड़ते हैं। इस अनन्त तमोगुणमें रामके दिव्यशर श्रोहत होकर कहीं खो जाते हैं। मनुष्यका मन पराजित होकर भी पराजय स्वीकार नहीं करता। युद्धके लिए, विजयके लिए वह पुन चेष्टा करता है। 'रामकी शक्ति-पूजा' का यही महान् आशावादी संदेश है।

इस कविताके पीछे जीवनकी कौनसी अनुभूति छिपी थी, इसे हम तब अच्छी तरह समझेंगे जब इसके साथ 'सरोज-स्मृति', 'वनवेला' और 'गीतिका' के कवि-जीवन-सम्बंधी अन्य गीतोंपर दृष्टि डालेंगे। इन रचनाओंका उत्कट आत्म निवेदन नाटकीय रूपमें यहाँ प्रस्तुत किया गया है। कवि अपने प्रति इतना तटस्थ हो गया है कि सहसा मुख्य पात्रसे उसके तादात्म्यको हम समझ नहीं पाते।

'सरोज-स्मृति' में एक दूसरा नायक है जो 'रामकी शक्ति-पूजा' के रामकी तरह अपने से प्रबल शत्रुका युद्ध-कौशल देखता है। यहाँ भी एक समरका वर्णन है जिसमें

> "एक साथ जब शत घात पूर्ण
> आते थे मुझ पर तुले तूर्ण।
> देखता रहा मैं खडा अपल
> वह शर-क्षेप वह रण-कौशल।"

'रामकी शक्ति-पूजा' में पहले दो बन्दोंके बाद जैसे युद्धके बाद स्तब्धता छा जाती है, वैसे ही यहाँ भी—

> "व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
> क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कण्ठ फल।"

'रामकी शक्ति-पूजा' में श्यामा अवतरित होकर रामके वदनमें लीन हो गई, लेकिन यहाँ उनकी छवि उस व्यक्ति पर पड़ती है, जो लाछित है।
'सरोज-स्मृति' में—

"वाछित उस किस लाछित छवि पर
फेरती स्नेह की कूची भर,—"

पढ़ते ही बरबस 'रामकी शक्ति-पूजा' में

"लांछन को ले जैसे शशांक नभमें अशंक"

की याद आ जाती है'।

'सरोज-स्मृति' हिन्दीकी एकमात्र प्रसिद्ध 'एलेजी' या शोकगीत है। इसे कविने अपनी कन्याके निधनपर लिखा था। सरोज सवा सालकी ही थी कि वह मातृ-विहीन हो गई। बाल्यावस्थासे नानीने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया था। कविके साथ-साथ वह भी जीवनकी थपेड़ें सहती रही। कान्यकुब्ज-समाजकी रूढ़ियोंकी परवाह न करते हुए निरालाजीने पंडित शिवशेखर द्विवेदीसे उसका विवाह किया। इसके बाद भयानक बीमारीमें उसका देहान्त हुआ। उस समय निरालाजी 'सुधा' की प्रूफ-रीडरीसे लेकर सम्पादक तकके सभी कार्य करते थे। मासिक वेतन ५०) रु० मिलता था। कविताएँ छापना संचालकजी कविपर अपार अनुग्रह करना समझते थे। "मैंने निरालाको बनाया" सभा-समाजमें यह उनका दावा था। पारिश्रमिक देना दूरकी बात थी। 'तुलसीदास' कविता छपने पर उन्होंने यह शिकायत भी की कि 'सुधा' की बिक्री कम हो गई। मुझे याद है 'वनबेला' पर निरालाजीको पारिश्रमिक मिला था लेकिन तब तक सरोजका दुःखान्त नाटक समाप्त हो चुका था। 'सरोज-स्मृति' की हर पंक्तिमें यह भाव बोलता है कि मैं पुत्रीके लिए कुछ न कर सका।

निरालाजी सरोजको गाँव भेज चुके थे। जीवनके और सब कार्य करते हुए भी उनका चित्त उद्विग्न बना रहता था। एक दिन नीचेसे पोस्ट-

कार्ड उठाकर ऊपर वापस आए और इतना ही कहा, 'सरोज नही रही।' दुःखसे उनका चेहरा स्याह पड़ गया था। उसे सहन करनेके प्रयासमें वे कुछ देर तक कमरे में टहलते रहे; उसके बाद अचानक घरसे निकलकर घूमने चले गए। दो दिन तक सरोजकी कोई चर्चा नही हुई। इस बीच में उनका चित्त स्थिर हो गया। कवितामें उस समयका दुःख ही नही एक आलम्बन पाकर सोलह साल पहलेकी समस्त वेदना उमड़ आई इस कवितामें निरालाजीने चार पंक्तियाँ ऐसी सच्ची लिखी हैं जिनमें उनक सारा जीवन केन्द्रित हो गया है। उनका एक रूप उद्धत और उत्साही वीरका है, जो दारुण मार्गमें नियतिको भी चुनौती देता है,

"खण्डित करने को भाग्य-अंक
देखा भविष्यके प्रति अशंक।"

ये पंक्तियाँ हिन्दीमें निराला ही लिख सकता था और भविष्यके प्रति अशंक होकर देखना उसीको शोभा देता है। परन्तु वह भाग्य-अंक खण्डित नही कर पाया। इसलिए कविताके अन्तमें, उस उदात्त गर्जनके बाद उसका दुःख-जर्जर हृदय बोल उठता है,

"दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नही कही।"

सन् '३४ से '३८ तक उन्होंने अनेक रचनाएँ ऐसी की हैं, जिनमें एक ओर भाग्यके अंक खंडित करनेका प्रण है तो दूसरी ओर जीवनकी अनकही कथा अपने आप फूट निकलती है।

'सरोज-स्मृति' का अन्त 'रामकी शक्ति-पूजा' के आशावादसे नही होता। निराला मस्तक झुकाकर अपने कर्मपर वज्रपात सहनेके लिए तत्पर होता है। शीतसे भ्रष्ट होते हुए शतदलके समान वह अपने विफल कार्योंसे कन्याका तर्पण करता है। यथार्थ जीवनकी यह एक नई और कटु अनुभूति थी जो निराला हिन्दीको दे रहा था। यह एक ऐसा महानाटक था जो पाठकके हृदयमें करुणा और महानुभूतिकी सृष्टि करता है।

उन्नीस वर्ष पार करने पर कन्या पितासे विदा लेकर जीवनका सिन्धु

पार कर गई। पिता अक्षम था, मानो यही सोचकर उसे मार्ग दिखाने के लिए उसने पहले ही प्रयाण किया था। शुक्ल पक्षकी प्रथमा श्रावणका स्तब्ध अन्धकार पार कर गई। पिताको बारम्बार यह स्मृति कचोटती है, "कुछ भी तेरे हित न कर सका।" धन कमानेका उपाय तो समझा लेकिन दीनके मुँहसे कौर न छीन सकनेके कारण स्वार्थकी लड़ाईमें हमेशा परास्त हुआ। इस पराजयको हिन्दीका रत्नहार समझकर उसने गर्वसे धारण किया। साहित्यिक जीवनके आरम्भमें उसकी व्यस्तता व्यर्थ जान पड़ती थी। पत्रिकाओंसे लौटी हुई रचनाएँ लेकर वह एकान्तमें सम्पादकों के गुण गाया करता था। कुण्डलीमें दो शुभ विवाह लिखे थे लेकिन कन्याकी ओर देखकर उसने ग्रहोंको असिद्ध करनेका निश्चय किया। उसने कुण्डलीके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और कन्या उनसे खेलने लगी। वयस्क होनेपर विवाहके लिए प्रस्ताव आने लगे परन्तु कान्यकुब्ज शिवसे गिरजा विवाह न करनेका उसने निश्चय किया था। बिना बरात बुलाए साहित्यिकोंके समाजमें सरोजपर कलशका शुभ जल पड़ा। सरोजने स्वर्गीया माताका रूप ग्रहण किया। मातृहीन बालिकाको माँकी कुछ शिक्षा पिताने दी और स्वयं उसकी पुष्प-सेज रची। जिस नानीकी स्नेह-गोदमें वह सवा सालसे पली और बढ़ी थी, उसीकी गोदमें उसे अन्तिम शरण मिली।

इस प्रकार सरोजकी जीवन-गाथा स्वयं कविकी दुख-गाथा बन जाती है। साहित्यिक जीवनमें वापसकी हुई रचनाओंसे निराशा, आगे चलकर अर्थोपार्जन न कर पानेसे निराशा, और अन्तमें रुग्ण कन्याकी परिचर्या न कर पानेसे निराशा, यह इस कविताकी सेटिंग है। इसमें निरालाका व्यक्तित्व उद्धत, पराजित फिर भी संघर्षरत दिखाई पड़ता है। अन्तमें कविने स्पष्ट शब्दोंमें यह नहीं कहा कि कन्याकी परिचर्याके लिए अर्थाभाव रहा। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते लेखनी मानो जवाब दे जाती है। वह सहसा कविताको समाप्त कर देता है। जो कहा और अनकहा रह गया, दोनोंसे इस कवितामें ऐसा तिक्त और यथार्थ सत्य अंकित किया गया है कि

व्यक्तिगत जीवन-संबंधी रचनाओंमें वह रचना सहजही ऊँचे-से-ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेती है।

आत्मनिवेदनके लिए निरालाजीने मातृ-रूपकी कल्पना की। मातृ-वियोगने कवितामें भव्य रूप धारण किया। इस कल्पित मातासे वे शक्ति के लिए प्रार्थना करते और उससे अपना दुःख भी निवेदन करते। अपने मनुष्य-जीवनके समस्त स्वार्थ वे उसके चरणोंपर बलि करते हैं। वे उससे प्रार्थना करते हैं कि वे जीवनके रथपर चढ़कर मृत्यु पथपर बढ़ें और महाकाल के तीक्ष्ण वारोंको सह सकें। वह उन्हें इसकी क्षमता दे। माताकी अश्रु-सिक्त मूर्ति हृदयमें विराजती रहे। भले ही बाधाएँ आयें लेकिन यह शरीर क्लेद-मुक्त है। उसे देकरही वे बन्दिनी माँको मुक्त करेंगे।

जीर्ण-शीर्ण प्राचीनको वह भस्म कर देगी। निर्जीव शरीरका धारण करना व्यर्थ है। भारतका कल्याण तभी होगा जब यह महा शक्ति यहाँ के निवासियोंके रूपमें अवतरित होगी। कभी कवि सोचता है: जीवनमें कुछ न हुआ, न हो। अगर संसार धोखा है तो इसमें रोना क्या। छाया की तरह नीला आसमान दिखलाई देता है। मनुष्य घटता-बढ़ता आता जाता रहता है। वह चलता है, थकता है, रुककर बकवास करता है लेकिन दुनिया ही कमजोर हो तो यह क्या कर सकता है। यदि यही प्रकाश हो तो उसे दीप्त करने का प्रयास व्यर्थ होगा। फिर कहता है कि समर्थ होकर मनुष्य किनारे बैठा हुआ लहरें क्यों गिन रहा है। जिस जलके भीतर वाडव-वह्नि जल रही है, उसे पार करके न जाने कितने लोगोंने अर्थ प्राप्त किया, तब कवि ही क्यों असफल होगा? महाशक्तिसे प्रार्थना करता है, संसारमें तृष्णाकी विषाग्नि बुझे और भाषामें अमृतके निर्झर फूटें। कविके स्वर पृथ्वीसे उठें और आकाश पर छा जायें। परस्पर कर्षण से जो द्वंद मचा हुआ है, वह मिट जाय और क्षुद्रता तोड़कर लोग अपना विश्व-परिचय पहचानें।

महाशक्तिकी वंदना का अर्थ है, मृत्युको वरण करना। वही जनके दुःख दूर कर सकती है। महाशक्तिके चरणोंमें रंजित मृत्युको वरण करने

की वह प्रार्थना करता है । उसके हृदयमें अपमानकी अग्नि प्रज्वलित रहे और इसी प्रेरणासे वह जीवनके प्रलोभनोको ठुकरा दे । शक्तिके सिन्धुमे लहरे उठ रही है । वह प्रतिज्ञा करता है कि समीर की भांति वह उन्हें पार करेगा । कभी उसे मालूम होता है कि लाछना और अपमानका अन्त हो गया है और विघ्न बाधाओको पार करके वह सफलता प्राप्त कर चुका है। वह मातृ मूर्तिसे कहता है, मैं रातमें अँधेरा पार करके तुम्हारे द्वारपर आ पहुँचा हूँ । रास्तेमें पत्थर लगे । लेकिन वह फल जैसे जान पड़े । उपल खिलकर मानो उत्पल बन गए । शरीर अवसन्न हो गया, फिर भी वरकी प्राप्तिसे कवि प्रसन्न हो गया है । शत्रुओंका स्मरण करके वह उनका उपहास करता है, यह तेज-हत निशाचर, वन्य, भीरु और मलिन मन क्या समझेंगे कि कविने कौन सा वर प्राप्त किया है । वह अमर पदो को गह कर प्रभात बन पा गया है ।

प्रात काल किरण नीले आसमानपर सहस्रो रूप धारण करती है और ससारमें आकर उसे रगीन बनाती है । रात्रिके समय वही शरत् चद्र की किरण बन जाती है । कविका हृदय उस मुँदे हुए कमलके समान है जिसपर आँसू जैसी ओसकी बूंदे ढुलक रही हैं । कवि चाहता है कि उसकी दु ख-रात्रिमें वही किरण स्वप्नकी जागृति बनकर उसके नेत्रोमें शयन करे । अन्य गीतो में इस दु खकी रात्रि की बात है । एक गीत में वह प्रश्न करते हैं 'कौन तमके पार रे वह ।' इसका उत्तर भी यही है कि अन्धकार के आगे कुछ नही । जो जड है वही प्रवाह पूर्ण जलका रूप धारण करता है । आकाश तत्व ही घनकी धारा बनकर गतिशील ससार बनाता है । इसी तत्वसे गन्ध गुण की सृष्टि होती है । आनन्द का भौंरा लहर-रूपी बालो और कमल-रूपी मुखपर गूँजता है । यह परिवर्तनशील प्रकृति का रूपक है जो जल होने पर भी आनन्द से सम्बद्ध है । फिर कवि पूछता है कि अन्धकार को भेदकर जो सूर्य रूपी नेत्र खुलता है, वह निशा-प्रेयसीके हृदय पर जब मुंद जाता है तब वह सार-तत्व पाता है या असार बन जाता है । ससार में आतप ही जल बनकर बरसता है; जलपसे ही कमल सुहृत

बनते हैं; जो अशिव और उपलाकार है, वही नीहार के रूपमें मंगलमय होकर द्रवित होता है। तब इस जड़ प्रकृतिके परे क्या है? इस गीतमें निरालाजी ने ज्ञानजन्य सृष्टि के सिद्धान्त को अस्वीकार किया है। मनुष्यका ज्ञान, उसकी चेतना, उसका आनन्द जड़ प्रकृति के विकास से ही सम्भव हुए हैं। प्रकृति में गुणात्मक परिवर्तन होते हैं; आतप जल बन जाता है, उपल द्रवित नीहार बनता है; इसी प्रकार एक गुणात्मक परिवर्तनसे चेतना और आनन्द की भी सृष्टि हुई है। इसका कारण बताने के लिये प्रकृति से परे किसी दैवी सत्ताकी कल्पना करना आवश्यक नहीं है।

दिन-पर-दिन निरालाकी रचनाओं में यह भावना दृढ़ होती दिखाई देती है कि पृथ्वीका यथार्थ सत्य ही नहीं है, वह आकाश की कल्पना से सुन्दर भी है। इस भाव को उन्होंने 'वनवेला' और 'नरगिस' में बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। 'वनवेला' के आरम्भ में उन्होंने पृथ्वी और सूर्यके प्रणय-व्यापार का वर्णन किया है। ग्रीष्म के ताप ने पृथ्वीको सर्वस्व दान कर दिया है। प्रस्वेद, कम्प, निश्वास, इनकी परिणति लूमें हुई है। सन्ध्या के समय पीताभ, अग्निमय, निर्धूम दिगन्तका प्रसार प्रलय काल का दृश्य उपस्थित करता है, ऐसा लगता है कि समस्त विश्व जलगया है; धूल में देश अदृश्य हो गया है। कवि विरक्त और घामसे पीड़ित होकर नदीके किनारे विचार करता चला जा रहा है।

> "होगया व्यर्थ जीवन
> मैं रण में गया हार"।

पराजयका भाव लेकर वह एक जगह आकर चुपचाप बैठ जाता है। वह राजपुत्रों की बात सोचता है जो बड़े-बड़े विद्वानों को अपना अनुचर बना लेते हैं। वह उन धनी युवकोंकी बात सोचता है जो समुद्रपार से शिक्षा पाकर देश में राष्ट्रपति चुने जाते हैं और जिनकी प्रशंसामें पैसे में दस गीत रचकर लोग गर्दभ-मर्दन स्वरमें उन्हें गाकर बेचते फिरते हैं।

साहित्य-सम्मेलन में भी तब धाक जम जाती है। उधर साध्य नभका मस्तक तप कर रक्ताभ होगया था; इधर कवि के मस्तक की भी कुछ ऐसी ही दशा थी। तभी आँखें खोलकर उसने देखा कि प्रेयसी के अलकोंसे आती हुई गन्ध की तरह बेला की खुशबू उसे तृप्त कर रही है। जीवन का समस्त ताप और त्रास अपने मस्तक पर लेकर मानो अतलकी सास ऊपर उठी थी, मानो कर्म-जीवन के दुस्तर क्लेश भेद करके सुन्दर सिद्धि ऊपर उठी हो, अथवा क्षार सागर पार करके सिक्त-तन-केश अप्सरा ही लहरोंपर खड़ी हुई बहुजन दर्शनसे चकित होकर खड़ी हो। वह बनके गीत की तरह खिली हुई है। ताप प्रखर होने पर अपने लघु प्याले में अतल की शीतलता भर कर कवि को सुगन्ध की सुरापान कराती है। कवि उसके समीप पहुँचा और

> "झुक झुक, तन तन, फिर झूम झूम हँस हँस, झकोर,
> चिर परिचित चितवन डाल, सहज मुखड़ा मरोर,"

बेला कविके पराजय और ईर्ष्याके भावोंकी ओर सकेत करके उससे दूर ही रहनेको कहती है। कवि अपने स्पर्शको अपवित्र समझकर रुक जाता है। उस अग्नि-शिखाको देखकर वह सोचता है, कहीं कवितामें भी ऐसे दुग्ध जैसे धवल दल खुलते। बेला उसे सुझाती है, आपा खोकर उसने जीवनका खेल खेला है। जीवनका मेला दिखाऊ वस्तुओंसे ही चमकता है। इस तड़क-भड़कमें आत्माकी निधि पत्थर बन जाती है। इसी-लिए नगरमें एक बड़ा है तो उसके बड़प्पनकी रक्षा करनेके लिए शेष सभी छोटे हैं। कवि सामाजिक विषमतासे उत्पन्न होने वाली अपनी ग्लानि भूल जाता है। वह दो पंक्तियोंमें बेलाके जीवनकी सार्थकता व्यक्त कर देता है :

> "नाचती वृन्त पर तुम, ऊपर
> होता जब उपल प्रहार प्रखर !"

बेलाकी यही सार्थकता कविके जीवनमें उसकी कविता बन जाती है।

'नरगिस' में यह ईर्ष्या भाव तिरोहित हो गया है। नरगिसके पार्थिव सौंदर्यने उसे अभिभूत कर लिया है। छोटे-बड़ेके भाव उठते ही नहीं हृदयमें गंगातटकी निर्जन शांति और नरगिसका सौंदर्य छा गया। शीत-काल बीत चुका था और पश्चिममें वैभवका दीर्घ दिन अस्त हो चुका था। तारक प्रदीप लिए हुए संध्या प्रियकी समाधिकी ओर चली गई है। नीडोंमें पक्षिगोंका स्वरभी बन्द हो गया है। केवल बीते हुए गौरवके समान गंगाका शब्द निरन्तर सुनाई पड़ता है। चैत का कृष्ण पक्ष है, तृतीयाकी ज्योत्स्ना पृथ्वी पर ऐसे उतरी है जैसे नन्दनवनकी अप्सरा पृथ्वीको निर्जन समझ-कर रात्रिके समय गंगा-स्नान करने आई है। तटपर बैठा हुआ कवि विश्व का सघन तारतम्य देख रहा था। वह सोचता था कि तत्व सूक्ष्मतम होता हुआ ऊपरको चला गया है और लोगोंने मान लिया है कि पृथ्वीसे स्वर्ग बड़ा है। ज्योत्स्ना स्वर्गकी श्रेष्ठ सृष्टिके समान सामने सशरीर खड़ी हुई थी।

युवती धराका यह बस तकाल था, हरे भरे स्तनोंपर कलियोंकी माला पड़ी थी। पवन पृथ्वीकी सुरभिसे दिक्कुमारियोंको प्रसन्न कर रहा था। ऐसा लगता था कि पृथ्वी और स्वर्गमें होड़ हो रही है। तभी कविने देखा कि प्रणयके एकटक नयन जैसी नरगिस खिली हुई है। वह कहती है, स्वर्ग से यानसे ही क्या ज्योत्स्ना अधिक सुन्दर हो गई? वह स्वयं अन्धकारको पार कर प्रकाशमें आई है, क्या उसने स्वर्ग नहीं प्राप्त कर लिया? पृथ्वी स्वर्गपर चढ़ तो उसकी अधिक शोभा है या उस स्वर्गकी जो नीचे पृथ्वी पर उतर आए? हवा बही और नरगिसकी सुगंध कविके प्राणोंमें छा गई। यही स्वर्ग है यह कहकर उसने आनन्दसे नेत्र बन्द कर लिए। नौतिक रूपपर इससे अच्छा और किसी छायावादी कविने नहीं कहा

"स्वर्ग झुक आए यदि धरा पर तो सुन्दर
या कि यदि धरा चढ़े स्वर्गपर तो सुन्दर?
बही हवा नरगिसकी, मद छा गई सुगन्ध,
धन्य, स्वर्ग यही, कह किए मैंने दृग बन्द।"

इन कविताओंमें महाकाव्यके गुण हैं। इनमें वह उदात्त भावना है जिसे अँग्रेज़ीमें "एपिक क्वालिटी" कहते हैं। इनका नायक वास्तवमें धीरोदात्त है, परन्तु उसके नायकत्वकी परिणति रसराजमें नहीं होती। वह दुःखकी कालिमासे घिरा हुआ है, जलती-बुझती प्रकाशकी लौ अपराजित रहती है। ग्रीक नाटकोंके हीरोकी तरह वह हमारे हृदयमें संवेदनाका संचार करता है; संघर्षकी भयानकता दिखाकर वह विषाद, भय, कुतूहलके भावोंको जाग्रत करता है। भावोंके अनुरूप कविकी ओज-पूर्ण शैली है, जिसके लिए मैथ्यू आरनाल्डने 'ग्रैण्ड स्टाइल' शब्दोंका प्रयोग किया है। भाषा और छंदपर ऐसा अधिकार निरालामें भी कम मिलता है। छायावादने हिन्दी कविताको गीतात्मक बनाया था। रीतिकाल की रूढ़िग्रस्त तटस्थता से हटकर उसने अपने व्यक्तित्वको मुखर किया था। गीतिकाव्य में नई भावुकता, नया अपनपौ, पाठकसे नया परिचय स्थापित किया गया। निरालाके गीतों और मुक्तकोंमें आत्म-निवेदनके साथ नाटकीयता भी है। वह अपने प्रति तटस्थ होकर अपनी अनुभूतियोंका चित्रण कर सकता है। आत्मीयता और नाटकीयताका यह सम्मिश्रण अद्भुत है।

'सरोज-स्मृति', 'रामकी शक्ति-पूजा', 'वनवेला' आदि रचनाओंके चित्र और अलंकार छायावादके ही हैं परन्तु उनकी व्यंजना नवीन है। उदाहरणके लिए प्रभात और कमलको लेकर छायावादियों ने ही नहीं, भारत की पूरी कवि-परम्पराने रूपक बाँधे हैं। लेकिन 'तुलसीदास' में सांस्कृतिक सूर्यके अस्तसे आरम्भ करके जिस प्रकार "प्राची दिगन्त उरमें पुष्कल रविरेखा।" से कविताका अन्त किया गया है, वह निबाह अनूठा है। छायावादके प्रतीकोंको यह अनुभूति पहले न मिली थी जो उन्हें ऐसा प्रभाव-शाली बनाती। निरालाने उन्हें अपनी अनुभूतिसे नया जीवन दिया और इसीलिए संक्रमणकालकी रचना होनेपर भी उनमें ऐसी पूर्णता है। एक ओर उनमें छायावादी अलंकरण-सौंदर्य अपने चरम-विकासको प्राप्त हुआ है, दूसरी ओर उनमें एक दूसरे युगके आविर्भावकी झलक है। 'सरोज-

स्मृति' में कविने संकेत किया था कि दीन दुखियोंका ग्रन्न छीनकर वह स्वार्थ-समरमें विजयी नहीं होना चाहता था। उसके लिए स्वाभाविक था कि अपनी वेदनाके चित्रणके बाद इस स्वार्थ-समरका भी वर्णन करे, जिसके कारण इन दुखियोंकी दशा सुधरनेके बदले दिन-पर-दिन और गिरती जाती है। उसने ग़ालिबकी मस्ती और उसके दर्दका परिचय दिया था। उसने नाटकीय सेटिंगमें वीर नायकोंका चित्रण किया था। अब उसके लिए आवश्यक था कि मैक्सिम गोर्कीकी तरह जन-साधारणका भी चित्रण करे। सन् '३३, '३४ में हिन्दीमें एक नए आन्दोलनका सूत्रपात हो रहा था। छायावादकी परिणति जिस निराशावादमें हो चुकी थी, उसके बाद यह अवश्यम्भावी था। चोटीके कलाकारोंमें प्रेमचंदके बाद निराला का ध्यान सबसे पहले इस ओर गया। निरालाजीने गोर्कीका अध्ययन किया और अपनी कलाको एक नया रूप दिया। 'कुल्लीभाट' में गोर्की का उल्लेख भी है। उनके हृदयमें समाजके निम्नवर्गके प्रति पहलेसे ही जो सहानुभूति थी, वह गोर्कीसे एक नया संकेत पाकर उनकी कलाको एक नया रूप देने लगी। हिन्दी साहित्यमें 'देवी' और 'चतुरी चमार' का यह महत्व है कि जब सुधारवादका भरम बना हुआ था, तब निरालाने यथार्थ जीवनके चित्र देकर हिन्दी पाठकोंको झकझोर दिया। सन् '३३ में इन रचनाओं की सृष्टि यह सिद्ध करती है कि हिन्दीके साहित्यको एक नई दिशाकी ओर गति देना ऐतिहासिक आवश्यकता थी। एक युगकी भूमि पार करके निराला उसकी सीमा तक पहुँच गया था, अब दूसरे युगकी भूमिपर कदम उठाना जरूरी था। निरालाने यह कदम उठाया।

इन कविताओंमें महाकाव्यके गुण हैं। इनमें वह उदात्त भावना है जिसे अँग्रेजीमें "एपिक क्वालिटी" कहते हैं। इनका नायक वास्तवमें धीरोदात्त है, परन्तु उसके नायकत्वकी परिणति रसराजमें नहीं होती। वह दुःखकी कालिमासे घिरा हुआ है, जलती-बुझती प्रकाशकी लौ अपराजित रहती है। ग्रीक नाटकोंके हीरोकी तरह वह हमारे हृदयमें संवेदनाका संचार करता है; संघर्षकी भयानकता दिखाकर वह विषाद, भय, कुतूहलके भावोंको जाग्रत करता है। भावोंके अनुरूप कविकी ओज-पूर्ण शैली है, जिसके लिए मैथ्यू आरनाल्डने 'ग्रैण्ड स्टाइल' शब्दोंका प्रयोग किया है। भाषा और छंदपर ऐसा अधिकार निरालामें भी कम मिलता है। छायावादने हिन्दी कविताको गीतात्मक बनाया था। रीतिकाल की रूढ़िग्रस्त तटस्थता से हटकर उसने अपने व्यक्तित्वको मुखर किया था। गीतिकाव्य में नई भावुकता, नया अपनपौ, पाठकसे नया परिचय स्थापित किया गया। निरालाके गीतों और मुक्तकोंमें आत्म-निवेदनके साथ नाटकीयता भी है। वह अपने प्रति तटस्थ होकर अपनी अनुभूतियोंका चित्रण कर सकता है। आत्मीयता और नाटकीयताका यह सम्मिश्रण अद्भुत है।

'सरोज-स्मृति', 'रामकी शक्ति-पूजा', 'वनबेला' आदि रचनाओंके चित्र और अलंकार छायावादके ही हैं परन्तु उनकी व्यंजना नवीन है। उदाहरणके लिए प्रभात और कमलको लेकर छायावादियों ने ही नहीं, भारत की पूरी कवि-परम्पराने रूपक बाँधे हैं। लेकिन 'तुलसीदास' में सांस्कृतिक सूर्यके अस्तसे आरम्भ करके जिस प्रकार "प्राची दिगन्त उरमें पुष्कल रविरेखा।" से कविताका अन्त किया गया है, यह निबाह अनूठा है। छायावादके प्रतीकोंको यह अनुभूति पहले न मिली थी जो उन्हें ऐसा प्रभाव-शाली बनाती। निरालाने उन्हें अपनी अनुभूतिसे नया जीवन दिया और इसीलिए संक्रमणकालकी रचना होनेपर भी उनमें ऐसी पूर्णता है। एक ओर उनमें छायावादी अलंकरण-सौंदर्य अपने चरम-विकासको प्राप्त हुआ तो दूसरी ओर उनमें एक दूसरे युगके आविर्भावकी झलक है। 'सरोज-

स्मृति' में कविने संकेत किया था कि दीन दुखियोंका अन्न छीनकर वह स्वार्थ-समरमें विजयी नहीं होना चाहता था। उसके लिए स्वाभाविक था कि अपनी वेदनाके चित्रणके बाद इस स्वार्थ-समरका भी वर्णन करे, जिसके कारण इन दुखियोंकी दशा सुधरनेके बदले दिन-पर-दिन और गिरती जाती है। उसने गालिबकी मस्ती और उसके दर्दका परिचय दिया था। उसने नाटकीय सेटिंगमें वीर नायकोंका चित्रण किया था। अब उसके लिए आवश्यक था कि मैक्सिम गोर्कीकी तरह जन-साधारणका भी चित्रण करे। सन् '३३, '३४ में हिन्दीमें एक नए आन्दोलनका सूत्रपात हो रहा था। छायावादकी परिणति जिस निराशावादमें हो चुकी थी, उसके बाद यह अवश्यम्भावी था। चोटीके कलाकारोंमें प्रेमचन्दके बाद निराला का ध्यान सबसे पहले इस ओर गया। निरालाजीने गोर्कीका अध्ययन किया और अपनी कलाको एक नया रूप दिया। 'कुल्लीभाट' में गोर्की का उल्लेख भी है। उनके हृदयमें समाजके निम्नवर्गके प्रति पहलेसे ही जो सहानुभूति थी, वह गोर्कीसे एक नया संकेत पाकर उनकी कलाको एक नया रूप देने लगी। हिन्दी साहित्यमें 'देवी' और 'चतुरी चमार' का यह महत्त्व है कि जब सुधारवादका भरम बना हुआ था, तब निरालाने यथार्थ जीवनके चित्र देकर हिन्दी पाठकोंको झकझोर दिया। सन् '३३ में इन रचनाओं की सृष्टि यह सिद्ध करती है कि हिन्दीके साहित्यको एक नई दिशाकी ओर गति देना ऐतिहासिक आवश्यकता थी। एक युगकी भूमि पार करके निराला उसकी सीमा तक पहुँच गया था, अब दूसरे युगकी भूमिपर कदम उठाना जरूरी था। निरालाने यह कदम उठाया।

९

कथा-साहित्यमें नई प्रवृत्तियां

कोई भी जागरूक कलाकार यशकी जागीर पाकर सतोषकी सांस नही ले सकता। निरालाजीने यथेष्ट यश उपार्जित किया था लेकिन कलाकारका उत्तरदायित्व समाजके प्रति भी है। प्रसिद्धि पाकर वह अपनी सतर्कता छोड दे, समाजके परिवर्तन न देखे, मनमें बनी हुई रूढियोके बाहर चलने का कष्ट न करे तो वह समाज-हितैषी साहित्यका सृजन नही कर सकता। छोटी पूँजीके साहूकारकी तरह साहित्यकारोको भी नई दिशामें बडा कदम उठानेसे डर लगता है। वे सोचते है, इस ढर्रेपर चलते-चलते ही तो हम साहित्यिक बने है, समाजमें यश और गौरव मिला है, इसे छोडने पर नए अपरिचित क्षेत्रमें एक-बारगी सफलता मिल भी नही सकती। इसलिए जिस राहपर चलते आए है, उस राहपर ही अन्त तक चलते जायेंगे। अपने उत्तरदायित्वको पहचाननेवाला कलाकार इस तरह एक ही लीकमें बँधकर कभी नही रह सकता। उसकी परिचित लीक जब प्रतिक्रियाकी रूढि बन जाती है, तो वह उसे छोडकर अपने लिए नया मार्ग बनाता है। ऐसे उत्तरदायी कलाकारोकी भाति निरालाने भी यही कार्य किया।

'भक्त और भगवान' में हम देख चुके है कि इष्टदेवमें पूर्ण श्रद्धा होते हुए भी प्रजाकी समस्या हल नही होती। उस कहानीमें उस रियासतका जिक्र है जहाँ स्वामी प्रेमानन्द पधारे थे। एक दूसरे रेखाचित्रमें रियासती जीवनका एक दूसरा पहलू दिखाया गया है। राजधानीका नाम पद्मदल है। वहाँ पर एक चौडी नहर है जिसपर छोटे स्टीमर, बोट और बजरे चलते हैं। *राजा साहब नावकी सैरके लिए निकलते हैं। पहली ड्योढीमें*

आनेपर राजा साहबके मुसाहिब कतार बाँधकर प्रणाम करते हैं। सिपाही किर्चें निकालकर उन्हें सलामी देते हैं। तीसरी ड्योढ़ीके बाद पुलके ऊपरसे वे खाई पार करते हैं। घाटपर पहुँचते ही मुसलमान नोकर और मांझी सलाम करते हैं। राजा साहब एक नावपर पतवार पकड़कर बैठते हैं। पहलवान मुसाहब डाँड़ सँभालते हैं, सिपाही और अर्दली लाँग समेटकर बोटके साथ-साथ नहरके किनारे दौड़ चलते हैं। आगे शक्तिपुर नामका एक गाँव है। यहाँपर विश्वम्भर भट्टाचार्य राजासाहबकी प्रतीक्षामें खड़ा है। नावके नजदीक आते ही राजा साहबका ध्यान आकर्षित करनेके लिए वह विचित्र प्रकारका शब्द करता है। राजासाहबके मुखातिब होने पर "उसने हवामें उँगलीसे लिखकर राजासाहबकी ओर कोंचा, फिर पेट खलाकर दोनों हाथों मरोड़ा, फिर दाहिने हाथसे मुँह थपथपाया, फिर दोनों हाथोंके ठेंगे हिलाकर राजासाहबको दिखाया।" सिपाही पीछे रह गए थे। पास आनेपर राजासाहबका इशारा पाकर उसे पीटने लगे। उसकी दोनों हथेली और उँगलियाँ कुचल डालीं। गाँव भरके लोग आकर विश्वम्भरको उठाकर ले गए और हल्दी-चूना लगाने लगे। विश्वम्भर भी भक्त है। विशालाक्षी देवीके मन्दिरमें तीन पाव चावल और चार केले प्रति दिन और तीन रुपया मासिकपर पुजारीगिरी करता है। घरमें पाँच आदमी खाने वाले हैं और बीस महीनेसे वेतन नहीं मिला। तनख्वाहके लिए दर्जनों दरखास्तें लगाईं लेकिन सुनवाई न हुई। अब उसने हवा में लिख-कर बताया, अर्जी भेज चुका हूँ। पेट मल कर बताया कि भूखों मर रहा हूँ और ठेंगे हिलाकर समझाया कि खानेको कुछ नहीं है। जासूसोंने राजा साहबको समझाया कि इस गाँवके बागी विश्वम्भर से मिले हैं और उन्होंने जानबूझकर राजा साहबका अपमान कराया है। अभी उसके घाव पूर रहे थे कि उसे आज्ञापत्र मिला, तुम नौकरीसे बरखास्त कर दिये गए।

यह एक छोटी-सी घटना है। रियासतोंके पाशविक अत्याचारकी बड़ी तेज झलक यहाँ दिखाई देती है। असंगठित जनतामें जो भी रोटीके

लिए फरियाद करता है, उसे फौरन कुचल दिया जाता है। अधिक देना तो दूर, जो आधी रोटी उसे मिलती है, वह भी छीन ली जाती है। इस रेखाचित्रके शुरूमें निरालाजीने उस आलोचनाका जिक्र किया है, जिसमें सरल और सुबोध साहित्यकी माँग की गई थी। उसके पहले वाक्यसे ही मालूम होता है कि उस आलोचनाका असर उनपर पड रहा है। उन्होंने यह भी बता दिया है कि यह घटना कितावोंसे नही ली गई वरन् उनकी आँखों देखी हुई है। उन्होंने लिखा है, "लोग कहते है, ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझमें आ जाय, अपढ लोग भी समझें। बात बहुत सीधी हो। मुझे एक उदाहरण याद आया। लिखता हूँ। यह लिखा हुआ उद्धृत नहीं, देखा हुआ है।" लेखकने प्रयास किया कि उसकी भाषा सरल हो और बात ऐसी हो कि सबकी समझमें आ जाय। आँखों देखी घटनाओंको लेकर उसने और भी कहानियाँ और रेखाचित्र लिखे थे।

'देवी' कहानीमें निरालाने अपने ऊपर ही व्यग्य किया है। श्रीमतीजी को लेकर बँगला और हिन्दीके बहुतसे लेखकोंने अपने ऊपर मजाक किया है। लेकिन 'देवी' का व्यग्य एक पूरे आन्दोलनपर है, यह व्यग्य छायावादी कवि के बड़प्पन पर है जो विराट्की पुकार करता हुआ साधारण जनोंकी महत्ता भूल जाता है। 'देवी' एक अति साधारण पगली स्त्री है। उसमें मातृत्व की भावना अभी जाग्रत है। इसके आगे कविका अहकार क्षुद्र मालूम होता है। पगलीका जीवन कविपर ही नही, समाजके नेताओ, उसके सचालकों, उसकी सस्कृति, कला और साहित्य सभी पर एक तीखा व्यग्य बन जाता है।

कहा है कि ब्रह्मा नाभिके समान ससारको बनाता है और फिर उसे अपनेमें समेट लेता है। निरालाजीने मानो उसीकी पैरोडी करते हुए लिखा है, "बारह साल तक मकडेकी तरह शब्दोंका जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा।" इस चक्रव्यूहमें साहित्यकी रक्षा तो न हुई, उसके फँसनेके डरसे लोग दूर होने गए। फाकेमस्तीमें कविने परियोंके

ख्वाब देखे। उसकी समझमें परियोंके ख्वाब देखना ही साहित्यको ऊँचा उठाना था। दूसरे मित्र सांसारिक उन्नति करते गए और कविकी सनक पर राह चलते हँसते रहे। लोगोंने कविताको खुराफात बताया लेकिन उसने उसे न छोड़ा। तब क्या वह रति-शास्त्र और वनिता-विनोद या सीता, सावित्री और दमयन्तीकी कहानियाँ लिखता? भारतीय संस्कृति तो यही है कि चौरासी आसन बगलमें दबाकर पत्नीको सीता और सावित्री भेंट की जाय। बिना बड़प्पनके तारीफ नहीं होती। राजा या ब्राह्मण होनेपर भी राजर्षि और ब्रह्मर्षि होने की गुंजाइश है। वैश्यों और शूद्रोंमें कोई ऋषि नहीं हुआ। बड़े लोगोंने बड़प्पनका जो चक्रव्यूह बनाया है, वह मकड़ेके जालसे कहीं अधिक भयंकर है। परियोंके ख्वाब देखने और रतिशास्त्र लिखनेके अलावा इस चक्रव्यूहपर भी साहित्य रचा जा सकता है। निरालाने एक ओर इस सामाजिक बड़प्पन की तस्वीर दी है तो अग्रभागमें पगलीका छुटपन दिखाया है। इस तुलनासे सामाजिक विषमताकी खरी परख हो जाती है।

वह कहते हैं, "बात यह कि बड़प्पन चाहिए। बड़ा राज्य, बड़ा ऐश्वर्य, बड़े पोथे, तोप-तलवार, गोले-बारूद, बन्दूक-किर्च, रेल-तार, जंगी जहाज, टार्पेडो, माइन्स, सबमेरीन, गैस, पलटन, पुलिस, अट्टालिका उपवन आदि आदि सब बड़े-बड़े—इतने कि वहाँ तक आँख नहीं फैलती, इसलिए कि छोटे समझें कि वे कितने छोटे हैं।" इस वाक्यके साथ पन्तजीके पूर्वी पश्चिमी गोलार्द्धों वाले वाक्यका स्मरण कीजिए जिसमें कविने वामनकी तरह सारी पृथ्वी नाप लेनेकी आकांक्षा प्रकट की है। निरालाजी ने भी अनेक निबन्धोंमें विराट् चित्रोंकी माग की थी। यह वाक्य मानो उन विराट चित्रोंकी पैरोडी है।

कविने जितना ही संसारके बड़प्पनके बारे में सोचा, उतना ही उसमें अपने बड़प्पनका भाव भी बढ़ता गया। गुरुमाकी तरह संसार का बड़प्पन अगर उसे लील जाना चाहता था, तो महावीरकी तरह उसका अहंकार भी

बढ़ता गया । 'बड़ होनेके ख्यालसे ही मेरी नसें तन गईं, और नाम मात्रके अद्भुत प्रभावसे मैं उठकर रीढ़ सीधी कर बैठ गया ।" लेकिन तभी उसकी नज़र रास्तेके किनारे बैठी हुई पगली पर पड़ी । तुरन्त ही ग्रहकारने मसक रूप धारण कर लिया ।

पगलीके बाल कटे हुए थे । ताज्जुबकी निगाहसे वह आने जाने वालों को देखती थी । उमर पच्चीस सालसे भी कम होगी । दोनों स्तन खुले हुए थे । प्रकृतिकी मारोंसे लड़ती हुई मुरझा गई थी । पासमें डेढ़ साल का बच्चा था । संसारकी स्त्रियों जैसी एक भी भावना उसमें नहीं थी । "उसे देखते ही मेरे बड़प्पन वाले भाव उसीमें समा गए और फिर वही छुटपन सवार हो गया ।"

होटलके नौकर सगमलालने बताया कि पगली होटलकी बची हुई रोटियोंसे पेट पालती है । पगलीके बारेमें पूछताछको मज़ाक समझकर वह चलता हुआ । लेकिन कवि सोचने लगा, मान लो मैं बड़ा हो भी गया तो इस स्त्रीका क्या होगा ? साहित्यकारका बड़प्पन समाजके इन अभागों की किस्मत नहीं पलट सकता । पेड़की छाँह या खुले बरामदेमें वह लू के थपेड़े सहती है । "मुमकिन है कि इसके बच्चेकी हँसी उस समय इसे ठंडक पहुँचाती हो ।" हाँ, उसे अभी इतना ज्ञान है कि प्रकृतिके कठोर ताप और बच्चेकी मुस्कानकी कोमलताको वह समझ सके । कविको नैपोलियनकी याद आती है । वह सोचता है, क्या वह इससे भी बड़ा वीर था ? क्या उसने भी इसी तरह निराश्रित और निस्सहाय होकर प्रकृतिकी मारें सही थीं ?

कवि फिर परियोंके ख्वाब देखता है लेकिन इस बार ये परियाँ स्वर्ग की नहीं । वह जिन्दगी और मौतकी लड़ाईमें देखता है कि पगलीके भीतरकी परी इस दुनिया से दूर उड़ जानेकी तैयारी कर रही है । उसकी भावभंगी देखकर रवीन्द्रनाथका अभिनय भी फीका लगा । उस गूँगीके भावोंको व्यक्त करनेके लिए कविकी भाषा ही गूँगी बन जाती है । "यहाँ माँ-बेटेके मनोभाव कितनी सूक्ष्म व्यंजनासे संचरित होते थे, क्या लिखूँ ?

डेढ़-दो सालके कमजोर बच्चेको माँ मूक भाषा सिखा रही थी—आप जानते हैं, वह गूँगी थी। बच्चा माँको कुछ कहकर न पुकारता था। केवल एक नज़र देखता था, जिसके भावमें वह माँको क्या कहता था, आप समझिए, उसकी माँ समझती थी, तो क्या वह पागल और गूँगी थी ?"

नहीं, वह पागल और गूँगी नहीं, देवी थी। पागल और गूँगा वह समाज था, जिसने इस तरहकी देवियोंको पथकी भिखारिन बना दिया था। पता नहीं, अपने बच्चेकी तरह यह पगली भी रास्तेके किनारे ही पलकर बढ़ी हो। पता नहीं, उसका विवाह हुआ हो और गूँगेपनका पता लगनेपर पतिने उसे निकाल दिया हो। शायद यह बच्चा किसी ख्वाहिशमन्दका सबूत हो। कुछ भी हो, उसकी इस हालतकी जिम्मेदारी समाजपर है इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। परियोंके ख्वाब देखकर यह समाज क्या खाक आगे बढ़ेगा, जब उसकी देवियाँ इस तरह प्रवृत्तिसे लड़ती हुई लांछित और पीड़ित होकर मन, बुद्धि और देह सभी कुछ नष्ट कर देंगी ?

यह स्वाभाविक था कि कविको महाजनितकी याद आए जिसकी बाँह पर अपना सिर रखनेका स्वप्न उसने देखा था। यदि शक्ति कहीं है तो यहीं है, क्योंकि उसने बड़े-बड़े लोगोंका स्वप्न चूर कर दिया। बड़ी-बड़ी सभ्यता, बड़े-बड़े शिवालय चूर्ण हो गए। उसका बच्चा भारतका सच्चा रूप था।

एक रोज उसी रास्ते नेताका जुलूस निकलता है। पगली आसनमेंसे हज़ारों आदमियोंकी भीड़ देख रही थी। भौंहें सिकोड़े, मुँह फैलाए, आँखों पर ज़ोर देकर वह इस भीड़का मतलब समझनेका प्रयत्न कर रही थी। कवि पूछता है, "क्या समझीं, आप समझते हैं ?" फिर उत्तर देता है, "भीड़में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा।" नेता दस हज़ार की थैली लेकर जनता का उपकार करने चले गए।

एक दिन रामायणी समाजमें रामायणका पाठ हुआ। मानसमें स्नान करनेके बाद भक्त-मंडली पगलीके पाससे निकली। किसीने कहा,

कर्मका दंड है, किसीने कहा, स्वर्ग और नरक इसी संसारमें है। तीसरेने गोस्वामीजीकी चौपाई पढ़ दी,

'सकल पदारथ हैं जग माहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं।'

धर्मने राजनीति से अधिक उदारता नहीं दिखाई।

पगलीकी जाति क्या थी, उसका धरम क्या था, इसके बारेमें लोगोंको अजभी चिन्ता थी। सगमलालने बताया, यह हिन्दू थी, फिर मुसलमान हो गई। लेकिन उस रास्तेसे जितने हिन्दू-मुसलमान निकलते, उन्हें देखने-दिखानेकी ऐसी आदत पड़ गई थी कि वे तस्वीरके अलावा भाव तक पहुँच ही न पाते थे।

एक दिन शहरमें फौजका प्रदर्शन भी हुआ। कवि बरामदेमें नंगे बदन खड़ा हुआ सिपाहियोंको देख रहा था। बड़े बालोंके कारण लोग पीठ पीछे मिस फैशन कहकर आवाजाकशी करते थे। "मेरे ग्रीक कट, पाँच-फुट, साढ़े ग्यारह इंच लम्बे, जरूरतसे ज्यादा चौड़े और चढ़े मोढ़ोंके कसरती बदनको देखकर किसीको आतंक नहीं हुआ।" पगली बैठी हुई सिपाहियोंको देख रही थी। "सिपाही मिलिट्री ढंगसे लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट दुरुस्त, दर्पसे जितना ही पृथ्वीको दहलाते हुए चल रहे थे, पगली उतना ही उन्हें देख-देखकर हँस रही थी। गोरे गम्भीर हो जाते थे। मैंने सोचा, मेरा बदला इसने चुका लिया।" पगलीने गोरोंसे ही बदला नहीं चुकाया। राजनीतिके नेता जिन्होंने निरालाजीकी कद्र नहीं की, रामायणका पाठ करने वाली ब्राह्मण-मंडली जो यज्ञोपवीत उतार फेंकनेके कारण कविकी भर्त्सना करती, शिक्षाके केन्द्र जो डिग्री न होनेसे उसे अशिक्षित समझते,—इन सभीसे पगलीने बदला ले लिया।

पगलीसे जान-पहचान हुई। वह इनको अपना शरीर-रक्षक समझती थी और ये उसको अपना सम्मान-रक्षक। लड़के तंग करते थे तो पगली करुण दृष्टिसे इनकी ओर देखने लगती थी। वह खुद भी पैसे देते थे,

और मित्रोसे भी दिला देते थे। कुछ लोगोने उडाया कि उसके पास बहुत बडी दौलत है जो उसने मिट्टीमें गाडकर रख छोडी है। एक मित्र मजाक में उससे दो रुपए माँगने लगे। दौलतकी बात सुनकर पगली खूब हँसी और फिर कमरके तीन पैसे निकालकर उनके सामने बढा दिये।

पानी बरसनेपर बिस्तर उठाते-उठाते भीग जाता था। इसी तरह पगलीको लू की मार भी सहनी पडती थी। पगली तपस्या तो करती थी लेकिन काम न करती थी। बैठे-बैठे हाथ-पैर जकड गए। पानी पीने के लिए सडक पार करती थी तो उसे आधा घटा लग जाता था। एक फलांगपर भी इक्का या ताँगा होता तो वह खडी रहती। उसकी नजर मानो कहती थी, क्या सडक सिर्फ मोटर और ताँगोके लिए है? एक दिन उसका बच्चा बरामदेसे नीचे गिर पडा। होटलने एक अमीर बोर्डरने सगमसे कहा कि वह पगली को ढूँढकर बुला दे। उसकी बात कविके हृदय पर चाबुक जैसी लगी। उसने दौडकर बच्चेको उठा लिया। मित्रने साव-धान भी किया कि बच्चा बहुत गन्दा है। बहुत दिन बाद कवि एक छोटा बच्चा लेकर गोदमें खिलाने लगे। लिखा है, "उतनी चोट खाया हुआ बच्चा चुप हो गया। क्योंकि इतना आराम उसे कभी नही मिला। उसकी माँ इस तरह बच्चेको सुखके झूलेमें झुलाना नही जानती। जानती भी हो तो उसमें शक्ति नही इसलिए वह चोटकी पीडाको भूल गया, और सुखकी गोदमें पलकें मूँदकर बातकी बातमें सो गया।"

आसपासके मित्रोने इस बातको बडा महत्व दिया। जो सो गए थे, उन्होने दूसरोको जगा दिया, सिर्फ यह देखनेके लिए कि हिन्दीका इतना बडा कलाकार इतने छोटे-से-बच्चेको खिला रहा है।

जाडेकी रातमें होटलके बाहर कूँ-कूँ की आवाज सुनाई पडी। बाहर एक मामूली कम्बल-सा ओढ़े हुए बच्चेके साथ पगली फुटपाथपर लेटी थी। जब दुनियाका ज्ञान रहता, तब वह हाड छेदनेवाली सर्दीसे कराह उठती। कविको अपनी विवशताका ध्यान आया। उसने देखा मेमिन् देखकर भी

कुछ कर न सका। "जमीनपर एक फटी-पुरानी, ओससे भीगी कथरी बिछी है, ऊपर पतला कम्बल। ईश्वरने मुझे देखनेके लिए पैदा किया है। मेरे पास जो ओढ़ना है, वह मेरे लिए भी ऐसा नहीं, कि खुली जगह सो सकूं।" कवि-सम्मेलनमें लम्बी रकम माँगनेका, टोपीसे जूते तक सारी पोशाक बनवाने और दो महीने बाद शायब हो जानेका यही रहस्य है।

सड़े खानेकी शिकायत करते हुए होटलके बहुत से बोर्डर निकल गए। होटल बन्द करनेकी नौबत आ गई। सगमने भी दो महीने की बकाया तनख्वाहकी शिकायत की और दस रुपए काटकर पहले उसे देनेके लिए कविसे सिफारिश की। आश्वासन पाते ही उसके ओठोंपर नवयुवतियोंकी आँखोंको मात करने वाली हँसी फैल गई। लेकिन मैनेजर साहबने उसकी यह आशा पूरी न होने दी। पगलीको डबल निमोनिया हो गया और बच्चे को अनाथालय भेज दिया गया। पगलीने बच्चेको पास रखनेकी बड़ी जिद की। एक दिन सगमने फिर आकर खबर दी कि मैनेजर साहब रुपए लेकर भाग गए। पगलीका मरना और मैनेजरका भागना दोनों बातें एक ही साथ होती हैं। हत्या और लूट दोनोंका ज्ञान बूझकर एकसाथ चित्रण किया गया है। जाड़ेके दिनोंमें किसी स्त्रीको फुटपाथपर सुलाना उसकी हत्या करना नहीं तो और क्या है? नौकरोंके रुपए मारकर खुद बड़े आदमी बनना दुनियाको लूटना नहीं तो और क्या है? इस प्रकार *निरालाजीने अपना यह रेखा-चित्र, जिसका नए साहित्यके लिए वही महत्व* है जो छायावादी कवितामें 'जुही की कली' का, समाप्त किया है।

रोमांटिक कवि हास्य और व्यंग्यके लिए शायद ही कहीं विख्यात हुए हों। शेलीने 'मास्क ऑफ एनार्की' नामकी कवितामें इंग्लैण्डके शासक वर्ग पर तीव्र व्यंग्य किया है। ऐसा व्यंग्य इंग्लैण्डके उन कवियोंमें भी नहीं मिलता जो केवल व्यंग्यके लिए ही प्रसिद्ध हैं। परन्तु शेलीकी यह रचना क अपवाद जैसी है। निराला ने अपनी रचनाओं में, विशेषकर गद्य में, हास्य और व्यंग्यके इतने उदाहरण दिए हैं कि कभी-कभी यह निश्चय करना

कठिन हो जाता है कि उनके भीतर कौनसी प्रवृत्ति अधिक सबल है। उनका व्यंग्य हमें अंग्रेज कवियोंमें बायरनकी याद दिलाता है, जिसकी कला का सबसे अच्छा नमूना उसकी व्यंग्य-प्रधान रचना 'डॉन-जुआन' है।

'देवी' का व्यंग्य इतना प्रभावपूर्ण इसलिए है कि उसका लक्ष्य व्यक्ति विशेष नहीं है वरन् वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें मुफ्तखोर पूजे जाते हैं और जिन्हें पुजना चाहिए वे ठोकरें खाते हैं। यहाँ पर निरालाजीने भारतीयताके नामपर जो अन्याय-लीला होती है, उसकी हकीकत बयान कर दी है। धर्म, राजनीति, समाज-सुधार देखनेमें बड़े सुन्दर शब्द हैं, लेकिन इनकी आड़में न जाने कितने लोग अपनी स्वार्थ-साधनामें लगे हैं। निरालाने दिखाया है कि वही राजनीति सफल होगी, जिसमें "देवी" जैसी स्त्रियाँ समाजसे बहिष्कृत होकर होटलकी जूठनकी मोहताज न रहेंगी। वह धर्म नष्ट हो जायगा जो इस तरहकी सामाजिक विषमताको यह कहकर सहन कर लेता है कि अपने-अपने कर्मोंका फल है, किसीके बाँटे घी शक्कर है और किसीको एक चून नमक और चना भी नसीब नहीं है।

निरालाजीने अपने उपन्यासों और कहानियोंमें स्वाभाविक वार्तालाप के उदाहरण दिए हैं। लेकिन छायावादी कहानियोंमें—जिनका आरम्भ बहुधा सोलह सालकी अधखुली जूहीकी कलीसे होता है—ऐसा मालूम होता है कि पात्रोंके मुँहसे स्वयं लेखक बातें कर रहा है। पुरुष पात्रोंके मुँहसे ही नहीं, स्त्री पात्रोंकी बातचीत भी वैसी है जैसी निरालाजी चाहते हैं कि वह हो। 'देवी' में इसके विपरीत पात्र सजीव और उनका वार्तालाप पात्रोंके व्यक्तित्वसे ही फूटकर निकलता है। छायावादी लेखकोंकी कहानी-कलामें यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन था। इनके साथ हम उस मौन सम्भाषणको नहीं भूल सकते जो पगली और उसके बच्चेमें होता है। उनके मनोभावोंको व्यक्त करना बड़े ही कुशल कलाकारका काम था।

'देवी' और 'चतुरी चमार' का अटूट संबंध है। दोनोंका रचना-काल भी एक ही है और दोनोंकी शैली भी मिलती-जुलती है। दोनों

रेखाचित्रोंमें लेखक स्वयं पात्रके रूपमें आता है, लेकिन 'चतुरी चमार' में जीवनकी विविधता अधिक है। लेखक बरामदेमें खडा होकर धर्म और राजनीतिक ठेकेदारोपर टीका-टिप्पणी नही करता, वह उस समाजमें पैठ जाता है जहाँ इस ठेकेदारीका वीभत्स रूप दिखाई देता है।

चतुरी चमारका जन्म उसी गाँवमें हुआ है जहाँ कविके पूर्वज न जाने कितनी पीढियोंसे रहते चले आए थे। चतुरीका पुश्तैनी घर उस जगह बना है जहाँ गाँव भरके पनाले आकर पडते हैं। उमरमें वह कवि की चाचाके बराबर है। चमार होनेके कारण उन्हें काका कहना है। काका के लिए भी एक कठिनाई है। वह उसे आदर देना चाहते हैं क्योंकि वह देखते हैं कि जीवन-चरित या ऐसा ही कुछ लिख लेनेवाले भी बडे बडे आचार्योंसे प्रोत्साहन पा जाते हैं। चतुरी भी श्रद्धेय है क्योंकि उसके जूतोकी बदौलत पासी जगली जानवर फाँसते हैं, किसान ढूँठोपर ढोर हाँकते हैं और नाई न्योता बाँटते हुए सालमें हजार कोसकी यात्रा करता है। यह जरूर है कि बाँदा जिलेके जूते ज्यादा वजनी होते हैं। इसका कारण यह है कि वहाँके चमकारोपर रामचन्द्रजीकी तपस्याका प्रभाव पडा है। मवाईसे नजदीक होनेके कारण चतुरीके जूते मजबूत होनेपर भी वजनमें कम बैठते हैं। उसका घर कविके पडोस ही में था। इसलिए उन्हें यह पता लगाते देर न लगी कि चतुरीको बहुतसे सपादकोसे सत साहित्य का ज्यादा अच्छा ज्ञान है।

कविके मनमें इच्छा हुई कि वह भी निर्गुण पद सुने। बैठक लगाने के लिए चरसका इन्तजाम कर देना ही काफी था। मजीरेदार डफलियोके साथ चतुरीने अनेक सन्तोके पद सुनाए। बैठकका लीडर वही था। लोगोको बताता जाता था कि कौनसे पद सुनाए जायँ। अपने काका-को विद्वान् समझकर उसने सत-साहित्यके प्रति वि नोकी उपेक्षाकी शिका-यत भी की। कहा, निर्गुण पद बडे-बडे विद्वान नही समझते। फिर एक पदका मतलब समझाने लगा लेकिन उसके कहने से अपनी

विद्वत्ता के प्रति अनुचित स्पर्द्धा समझकर उसे बीच ही में रोक दिया और सवेरे आकर मतलब समझानेको कहा। फिर भी "वे लोग ऊँचे दरजेके उन गीतोंका मतलब समझते थे, उनकी नीचतापर यह एक आश्चर्य मेरे साथ रहा।" रातको एक बजे कविवरको नींदने सताया। चतुरीसे आज्ञा लेकर और दिवंगता काकीकी चर्चा करके वह शयन करने चले गए। चतुरीकी बैठक रातभर जमी रही और जब सबेरा हुआ तो दरवाजा खोलनेपर कविवरने देखा कि चतुरी बाहर बैठा हुआ दरवाजा खुलनेकी ही बाट जोह रहा था। सन्त-साहित्यका वह सच्चा भक्त था। रातके बादके मुताबिक वह अर्थ समझने आया था। कविवरको मानना पड़ा, "जिनमें शक्ति होती है, अवैतनिक शिक्षक वही हो सक्ते हैं।" फिर भी मानो उसकी परीक्षा लेनेके लिए उन्होंने कबीरकी उलटबाँसी सीधी करनेको कहा। वे उलटबाँसियाँ चतुरीके लिए खेल थीं क्योंकि उसे विश्वास था, जहाँ गिरह लगती है, साहब आप खोल देते हैं। उसके अर्थ सुनकर उन्होंने फिर विवाद न किया, सिर्फ यह टिप्पणी कि "तुम पढ़े-लिखे होते तो पाँच सौकी जगह पाते।"

यहाँसे कथाका दूसरा सूत्र आरम्भ होता है। चतुरीको अपने लिए तो कोई आशा न थी, परन्तु वह चाहता था कि उसका पुत्र शिक्षा पाकर वैसी ही कोई जगह जरूर पा जाय। उसने प्रस्ताव किया कि काका उसे पढ़ा दें। आदान-प्रदानमें बुराई भी नहीं। उसने कहा, "तुम्हारी विद्या ले लेंगा, मैं भी अपनी दे दूँगा, तो कहो, भगवानकी इच्छा हो जाय तो कुछ हो जाय।" सौदा इस शर्तपर तय हुआ कि चतुरी बाजारसे गोश्त ला दिया करे और चक्कीसे आटा पिसवा लाया करे। जूतोंकी तारीफ करनेपर चतुरीने जमीदारकी शिकायत की कि वह मुफ्त दो-दो जोड़े बनवाता है जब उसका काम मजेसे एक जोड़ेसे ही चल सकता है। काकाने क़ानूनी सलाह दी, देखना चाहिए कि जूते देना वाजिब-उल-अर्ज़में दर्ज है कि नहीं।

बाजारसे गोश्त आने लगा और उसमें लोध-पासी, धोबी-चमार, सभी शरीक होने लगे। *कविका घर साधारण जनोंका अड्डा, बल्कि House of Commons हो गया।* चतुरीके लड़के अर्जुनकी पढ़ाई चलने लगी। इसी समय कविके चिरंजीव श्री रामकृष्ण त्रिपाठी आम खानेके लिए गाँव पधारे। चमारोंसे इनका व्यवहार दूसरी तरहका था। उनके टोलेमें निकलनेपर कविको गोस्वामीजीकी यह पंक्ति याद आ जाती थी, "मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहिं चोप।" पुराने संस्कार जोर मार रहे थे। चमारने दबना सीखा था और ब्राह्मणने दबाना। कविने समझ लिया कि इनके ब्राह्मणत्व और शूद्रत्वका खात्मा किए बिना समाजका कल्याण न होगा।

अर्जुनमें बहुत-सी कमजोरियाँ थी जिनके प्रति कविकी सहानुभूति थी तो चिरंजीवके लिए वे मनोरंजनका विषय बन गई थी। गुण, गणेश आदिमें 'ण' वर्णका उच्चारण न होनेपर नौ-दस सालके पंडित रामकृष्ण त्रिपाठी चतुरीके चिरंजीव अर्जुनवापर धौंस गाँठ रहे थे। पिताने प्रकट होकर उस नाटकको समाप्त किया। परन्तु आपसमें एक दूसरा नाटक शुरू हो गया। पण्डित रामकृष्णने अपना कसूर माननेके बदले पिताको ही अयोग्य शिक्षक ठहराया। पिताने आज्ञा दी कि अर्जुनसे तुम्हारी बात-चीत बन्द। पण्डित रामकृष्णने कहा कि यहाँके आम खट्टे हैं, हमें नानीके यहाँ भेज दो। गाँव छोड़कर कुछ दिनके लिए निरालाजी लखनऊ, बनारस आदि शहरोंमें रहे। उन दिनों किसान-आन्दोलन जोरोंपर था। *इस समय सहायताके लिए गाँवके लोगोंने इन्हें भी स्मरण किया।* जमींदारने किसानोंपर झूठे मुकदमें दायर कर दिए थे। तहकीकात करनेके लिए दारोगाजीभी आए। महाबीरजीके अहातेमें तिरंगा झंडा धुलकर सफेद हो गया था। दारोगाजीकी हिम्मत न पड़ी कि उसे उतारें। फिर वह गाँवकी कांग्रेसके बारेमें पूछताछ करने लगे। कविवरने अँग्रेजीमें उन्हें बताया, मैं विश्व-सभाका सदस्य हूँ और सदस्योंमें नोबुल पुरस्कार

पाए हुए विद्वानोंके नाम गिना दिए। दुर्भाग्यसे थानेदार साहब इन सब नामोंसे अपरिचित थे, इसलिए विश्व-सभाकी सदस्यताका उनपर कोई असर न पड़ा। लेकिन गढाकोलाकी कांग्रेस भी ऐसी अण्डर-ग्राउण्ड हुई कि दारोगाजी पता लगाते ही रह गए। न तो उसका जिलेकी कांग्रेससे ताल्लुक था न किसी रजिस्टरमें वहाँके नेताओंके नाम लिखे थे। काम करनेमें वह जरूर तहसील भर से आगे थी।

किसानोंपर जमींदारको डिग्री दे दी गई। इसके बाद चतुरी वगैरह पर दावे दायर किए गए। पहली डिग्रीसे लोग इतने आतंकित हो गए कि चतुरीके लिए कोई मददकी आशा न रही। घरकी पूँजी बेचकर वह मुकदमा लड़नेके लिए तैयार हुआ लेकिन जीतनेकी आशा कम थी। सत्तू बाँधकर उन्नाव तक दस कोस पैदल चलकर चतुरीने अदालत लड़ी और एक दिन बहुत खुश होकर अपने काकाको यह शुभ संवाद सुनाया, 'जूता और पुर वाली बात अब्दुल मर्ज में दर्ज नहीं है।' उसे इस बातका ज्ञान हो गया कि जमींदारको जबर्दस्ती दो जोड़े लेनेका अधिकार नहीं है। इस तरह पराजयमें भी चतुरीकी विजय हुई।

चतुरीमें कोई भी बात असाधारण नहीं। उसके जैसे निम्न वर्गके न जाने कितने लोग संतोंके पद गाते और जमींदारके लिए मुफ्त जूते बनाते चले जाते हैं। लेकिन चतुरीमें विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा है। वह भी चाहता है कि उसकी संतान पढ़-लिखकर सुखसे जीवन बिताए। देशमें राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ता है और उसकी एक हल्की लहर चतुरीके जीवन से भी टकराती है। पीढ़ियोंसे दबे हुए अरमान कसमसा उठते हैं। किसानोंपर डिग्रियाँ करके जमींदार सारे गाँवको आतंकित कर लेता है लेकिन चतुरी थका होनेपर भी हार नहीं मानता। वह जमींदारसे अकेले लोहा लेनेकी तैयारी करता है। लेखकने उसका साथ ही नहीं दिया वरन् निम्न वर्गकी इस नवीन चेतनासे अपने साहित्यके लिए प्रेरणा भी पाई है। चतुरी दस-दस कोस पैदल चलता है, जमींदार और उसके साथ

बाजारसे गोश्त आने लगा और उसमें लोध-पासी, धोबी-चमार, सभी शरीक होने लगे। कविका घर साधारण जनोंका अड्डा, बल्कि House of Commons हो गया। चतुरीके लड़के अर्जुनकी पढ़ाई चलने लगी। इसी समय कविके चिरंजीव श्री रामकृष्ण त्रिपाठी आम खानेके लिए गाँव पधारे। चमारोंसे इनका व्यवहार दूसरी तरहका था। उनके टोलेमें निकलनेपर कविको गोस्वामीजीकी यह पंक्ति याद आ जाती थी, "मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहिं चोप।" पुराने संस्कार ज़ोर मार रहे थे। चमारने दबना सीखा था और ब्राह्मणने दबाना। कविने समझ लिया कि इनके ब्राह्मणत्व और शूद्रत्वका खात्मा किए बिना समाजका कल्याण न होगा।

अर्जुनमें बहुत-सी कमज़ोरियाँ थीं जिनके प्रति कविकी सहानुभूति थी तो चिरंजीवके लिए वे मनोरंजनका विषय बन गई थीं। गुण, गणेश आदिमें 'ण' वर्णका उच्चारण न होनेपर नौ-दस सालके पंडित रामकृष्ण त्रिपाठी चतुरीके चिरंजीव अर्जुनदासपर धौंस गाँठ रहे थे। पिताने प्रकट होकर उस नाटकको समाप्त किया। परन्तु आपसमें एक दूसरा नाटक शुरू हो गया। पण्डित रामकृष्णने अपना कसूर माननेके बदले पिताको ही अयोग्य शिक्षक ठहराया। पिताने आज्ञा दी कि अर्जुनसे तुम्हारी बात-चीत बन्द। पण्डित रामकृष्णने कहा कि यहाँके आम खट्टे हैं, हमें नानीके यहाँ भेज दो। गाँव छोड़कर कुछ दिनके लिए निरालाजी लखनऊ, बनारस आदि शहरोंमें रहे। उन दिनों किसान-आन्दोलन ज़ोरोंपर था। इस समय सहायताके लिए गाँवके लोगोंने इन्हेंभी स्मरण किया। ज़मींदारने किसानोंपर झूठे मुकदमें दायर कर दिए थे। तहकीकात करनेके लिए दारोगाजीभी आए। महावीरजीके अहातेमें तिरंगा झंडा धुलकर सफेद हो गया था। दारोगाजीकी हिम्मत न पड़ी कि उसे उतारें। फिर वह गाँवकी कांग्रेसके बारेमें पूछताछ करने लगे। कविवरने अँग्रेज़ीमें उन्हें बताया, मैं विश्व-सभाका सदस्य हूँ और सदस्योंमें नोबुल पुरस्कार

पाए हुए विद्वानोके नाम गिना दिए। दुर्भाग्यसे थानेदार साहब इन सब नामोसे अपरिचित थे, इसलिए विश्व-सभाकी सदस्यताका उनपर कोई असर न पड़ा। लेकिन गढाकोलाकी काग्रेस भी ऐसी अण्डर-ग्राउण्ड हुई कि दारोगाजी पता लगाते ही रह गए। न तो उसका जिलेकी काग्रेससे ताल्लुक था न किसी रजिस्टरमें वहांके नेताओके नाम लिखे थे। काम करनेमें वह जरूर तहसील भर से आगे थी।

किसानोपर जमीदारको डिग्री दे दी गई। इसके बाद चतुरी वगैरह पर दावे दायर किए गए। पहली डिग्रीसे लोग इतने आतकित हो गए कि चतुरीके लिए कोई मददकी आशा न रही। घरकी पूंजी बेचकर वह मुकदमा लडनेके लिए तैयार हुआ लेकिन जीतनेकी आशा कम थी। सत्तू बाँधकर उन्नाव तक दस कोस पैदल चलकर चतुरीने अदालत लडी और एक दिन बहुत खुश होकर अपने काकाको यह शुभ सवाद सुनाया, 'जूता और पुर वाली बात अब्दुल अर्ज में दर्ज नही है।' उसे इस बातका ज्ञान हो गया कि जमीदारको जबर्दस्ती दो जोडे लेनेका अधिकार नही है। इस तरह पराजयमें भी चतुरीकी विजय हुई।

चतुरीमें कोई भी बात असाधारण नही। उसके जैसे निम्न वर्गके न जाने कितने लोग संतोके पद गाते और जमीदारके लिए मुफ्त जूते बनाते चले जाते है। लेकिन चतुरीमें विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा है। वह भी चाहता है कि उसकी सतान पढ-लिखकर सुखसे जीवन बिताए। देशमें राष्ट्रीय आन्दोलन छिडता है और उसकी एक हल्की लहर चतुरीके जीवन सेभी टकराती है। पीढ़ियोंसे दबे हुए अरमान कसमसा उठते हैं। किसानोपर डिग्रियाँ करके जमीदार सारे गाँवको आतकित कर लेता है लेकिन चतुरी थका होनेपर भी हार नही मानता। वह जमीदारसे अकेले लोहा लेनेकी तैयारी करता है। लेखकने उसका साथ ही नहीं दिया वरन् निम्न वर्गकी इस नवीन चेतनासे अपने साहित्यके लिए प्रेरणा भी पाई है। चतुरी दस-दस कोस पैदल चलता है, जमींदार और उसके साथ

शोषणका जो तमाम प्रपंच है, उसकी परवाह न करके वह लडाईके मैदान में कदम बढाता है। जिस दिन चतुरी जैसे साधारण व्यक्तिको अपने अधिकार का, अपने मनुष्यत्वका ज्ञान हो जाता है, उस दिन उसमें असाधारण शक्ति और ज्ञान आ जाता है। शूद्रत्वका कैसे अन्त होता है, निरालाजी ने यह तत्व चतुरीके जीवनसे समझा दिया। अब्दुल अर्जमें जूतोंके दर्ज न होनेपर चतुरीको जो खुशी होती है, वह इसलिए कि उसकी दास-भावना मिट रही है।

नए ढंगके यथार्थवादी रेखाचित्रोंका सिलसिला एक-बारगी ही नहीं चल पडा। "देवी" और "चतुरी चमार" लिखनेके बाद निरालाजी पीछे छोडे हुए रोमांसकी ओर बार-बार झुकते थे। "निरुपमा" और "प्रभावती" के नायक "अप्सरा" और "अलका" से मिलते-जुलते हैं लेकिन पार्श्व-भूमि में पहलेसे चित्रमयता अधिक है। "प्रभावती" में उन्होंने मध्यकालीन इतिहासपर अपने विचार प्रकट किए है। "निरुपमा" के कथोपकथन और ग्रामीण जीवनके चित्रोंमें यथार्थवादका रंग है।

"निरुपमा" का नायक कृष्ण कुमार बंगालमें पैदा हुआ है। उसकी बँगला सुनकर शिक्षित महिलाएँ दंग रह जाती है। कलकत्तेसे एम० ए० करनेके बाद लंदन जाकर वह डी० लिट्० की उपाधि लाता है। वह अँग्रेजी साहित्यका ही विद्वान नही है, यूरोपकी अनेक भाषाओं और उनके साहित्य से भी परिचित है। बालभी उसने लम्बे रखा छोडे है। संगीतमें उसकी गति है और टैगोर स्कूलकी गायकी वह अच्छी तरह जानता है। रहने वाला वह उन्नाव जिलेका है और सम्पत्ति सब रहन रक्खी जा चुकी है। लन्दन से लौटनेके बाद लखनऊमें ठहरा। नौकरीके लिए यूनीवर्सिटी, क्रिश्चियन कॉलेज सब छान डाले लेकिन बंगाली प्रोफेसरोके अनुचित स्पर्द्धा-भावके कारण उसे कही जगह नही मिलती। उधर गाँवमें वह जाति-च्युत कर दिया गया और उसके छोटे भाई और माँको अनेक अत्याचार सहने पड़े।

उसके गाँवकी जमीदार निरुपमा देवी उसीके होटलके सामने एक मकानमें रहती हैं। विचित्र ढगसे दोनोकी मुलाकात होती है। सडक पर खाट बिछाए लेटा हुआ वह गाना गा रहा था। वही हाल था कि "बिस्तर बिछा दिया है तेरे दरके सामने।" सामनेके मकानसे हारमोनियमपर गीतसे जवाब मिला, "तोमारे करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।" आवेशमें कुमार भी उन्ही परदोपर गीतके स्वरोंकी आवृत्ति करने लगा। उसे चुनौती देनेके लिए अब ग्रामोफोनपर रिकॉर्ड लगा दिया गया जिसमें एक रमणी तार सप्तकमें रवीन्द्र स्कूलका गाना गाने लगी। कुमार ने एक सप्तक घटाकर गीत अदा कर दिया। "अगर कण्ठके कामिनीत्व को छोडकर कमनीयत्वकी ओर जाया जाय तो कुमारने ही बाजी मारी।" हार कर तरुणीने बरामदेकी छतपर आकर यह अन्तिम सन्देश सुनाया, "छूचो, गोरू, गाधा।" फुटनोटके अनुसार, छूँचो अर्थात् छँछूँदर, आलकारिक रूपमें औरतोके पीछे छुछुवाने वाला, गोरू अर्थात् गऊ यानी बुद्धिहीन, और गधा तो प्रसिद्ध है ही। कुमार "भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम" गाता हुआ करवट बदल कर लेट रहा।

नौकरी न मिलनेसे निराश होकर उसने बूट पॉलिश करनेका काम शुरू किया। अपनी प्रोफेसरी पोशाकका पूरा फायदा उठाता था, पैसा चमारोंसे कम लेता था। चमारोंमें ईर्ष्या भाव जागा कि यह तो धधा खराब कर रहा है। गनीमत यह हुई कि चमारोका अभी कोई सगठन न था, नही तो वे कुमारका पॉलिश करना मुहाल कर देते। उसके इस कामसे पठित वर्गमें सनसनी फैल गई, जितने मुँह, उतनी बातें सुनाई पडी। "सस्ता साहित्य समूह" के प्रकाशक ताना मारते है कि हम चार रुपए फार्म दे रहे थे, मोपासाँके अनुवादके, वह आपको नही मजूर हुआ, आखिर पॉलिश और ब्रुश लेकर बैठे। ऐसे ही एक दूसरे सज्जन सात रुपए घटेकी ट्यूशन दे रहे थे, उसे भी कुमार ने ठुकरा दिया था।

जमीदारीका इन्तजाम निरुपमाके दादा सुरेश बाबू करते हैं। उनका

अत्याचार साधारण जमींदारोंसे भी बढा हुआ है। एक बार वह खुद जमींदारी देखने गई। वहांकी दशा देखकर उसकी आंखें खुल गईं। एक बुढियाने आकर उसे बताया कि छ रुपए वाले खेतके अठारह रुपए देने पडते हैं, नजराना ऊपर से। सुरेश बाबू कच्ची रसीद देते थे। "पद्रह के पट्टेपर जबानी पच्चीस तय कर लेते थे। लोगोंसे बेगार लेकर खर्च का हिसाब जोडते थे। बबूलोंकी बिक्रीमें आधी रकम साफ कर जाते थे।" कृष्णकुमारके खेत बेदखल हो जानेसे वह अपने ही खुदाए हुए कुएँसे पानी नहीं ले सकता। समाजमें बहिष्कृत होनेके कारण भोले-भाले बालक रामचन्द्र—कुमारके छोटे भाई—को जगह-जगह अपमानित होना पडता है। जाति-प्रथाके कारण समाजमें जो ऊँच-नीचका भाव फैल गया है, उसकी तस्वीर इस तरहकी है "नीमके नीचे बैठक है। गुरुदीन तीन बिस्वे वाले तिवारी हैं, सीतल पाँच बिस्वे वाले पाठक, मनी दो बिस्वेके सुकुल, ललई गोद लिए हुए मिसिर —पहले पाँच बिस्वेके पाँडे, अब दो कट गए हैं, गाँववालोंके हिसाबसे ललई पाँच ही जोडते हैं। सब हल जोतते और श्रद्धा पूर्वक धर्मकी रक्षा करते हैं।"

यामिनी हरण बाबूने कुमारकी नौकरी ही न छीन ली थी बल्कि अपने नामको सार्थक करते हुए निरुपमापर भी अधिकार जमा रक्खा था। सबंधियोंके दबाव से इच्छा न रहनेपर भी उसने यामिनी बाबूसे विवाहकी अनुमति दे दी। इधर उसकी मित्र कमलाने कुमार को दो सौ रुपए पर अपना शिक्षक नियुक्त कर लिया। यामिनी बाबू पहले मिस दुबेका हरण कर चुके थे। इसलिए कमलाने धोखा देकर उनका विवाह मिस दुबेसे ही करा दिया। निरुपमासे विवाह करनेपर कुमारको अपनी ही नहीं, पत्नी की सम्पति भी मिल गई।

सन् '३६ के आरम्भमें निरालाजीने अपना पहला ऐतिहासिक उपन्यास "प्रभावती" समाप्त किया। इसे उन्होंने अपनी ससहज साहबाको समर्पित किया है। इन शिशुकृत कपोलकज्जला वीबी की तारीफमें उन्होंने

लिखा है कि पन्द्रह वर्षकी वधूके रूपमें उन्होंने मातृ-विहीन दो शिशुओं की सेवा करना शुरू कर दिया था। इसलिए शृंगारकी साधनाका समय नहीं मिला। ऐसी देवीके हाथ किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नही किए जा सकते। कालिदास भी उन्हें "वीणा-पुस्तक रंजित हस्ते" नही कह सकते। फिर भी निरालाजीने उन्हें "प्रभावती" उपन्यास समर्पित किया है। इस उदार रमणीके आदर्शको 'यमुनाके रूपमें उपन्यासमें प्रतिष्ठित किया गया है। इसलिए समर्पण उपयुक्त ही है।

उपन्यासके आरम्भमें ही बैसवाड़ेका वर्णन है। धनी अमराइयोंकी याद करके वह उसे सौ योजनतक फैला हुआ एक सुन्दर उपवन कहते है। वहाँके ग्राम-गीत किसी भी दर्शकको तुरन्त मुग्ध कर लेते है। यहीपर लोना नदी बहती है जिसकी उत्पत्तिमें राजा भगीरथके बदले लोना चमारिन की कथा है। कहते है कि लोना खेत काट रही थी, तभी पुरुषोंके आ जानेसे अपने वस्त्रहीन अंगोंको छिपानेके लिए वह भागी और उसने भागते-भागते गंगाके गर्भमें आश्रय लिया। निरालाजीने लिखा है कि यह नदी वैसी ही आस्था रखती है, जैसी भागीरथी।

इसका यह मतलब नही कि गंगासे उन्हें कम स्नेह है। "प्रभावती" ऐतिहासिकके साथ-साथ प्रादेशिक उपन्यास भी है; उसमें एक जनपदके नदी-नालों, वन-उपवन, ऐतिहासिक संस्कृति, रीति-रिवाजोंका बड़े प्रेम से वर्णन किया गया है। लोना नदी गढ़ाकोलाको घेर कर बहती है। इसलिए उसका जिक्र भी आया है। डलमऊकी गंगाके पासके अनेक दृश्यों का भी वर्णन किया गया है। कल्पना नेत्रोंसे इसीके किनारे उन्होंने अप्सरा के समान स्वर्गके उतरते हुए कुमारी प्रभावतीको देखा। मध्यकालमें डलमऊकी कुमारियाँ घीके दीपक जलाकर गंगामें प्रवाहित करती थी।

प्रभावतीके कथानकके सूत्र कुछ उलझे हुए है, फिर भी मूल . सीधी है। प्रभावती और राजकुमार देव शिकार खेलते हुए प्रेम · लगते हैं। दोनोंके पिता एक दूसरेके कट्टर शत्रु है। यमुना जो

राजकुमारी है, परन्तु दासीके रूपमें प्रभावतीके यहाँ रहती है, गुप्त रूपसे विवाहका प्रबन्ध करती है। नौका विहार करते समय विरोधी-दलसे मुठभेड हो जाती है। राजकुमार देव घायल हो जाते हैं और शेष उपन्यास में उनकी कोई उल्लेखनीय भूमिका नही होती। यह युग पृथ्वीराज और जयचन्दकी परस्पर स्पर्द्धाका है। मूल कथा के चारो ओर सरदारोंकी साजिशें, बन्दीगृहमें षडयन्त्र, वनमें साधुवेश धारण किए हुए वीरसिंहके राजनीतिक और सामरिक दाँवपात, विद्याका गुप्त जीवन, महलमें नर्तकी फिर डाकुओंमें राजराजेश्वरी आदि आदि अनेक चमत्कारी वृत्तांत गुँथे हुए हैं। सयोगिता और पृथ्वीराजकी रक्षा करते हुए प्रभावती खेत रहती है। कथामें घटनाओंका ऐसा ऊहापोह न रहता तो उपन्यास अधिक रोचक होता।

महाराज शिवस्वरूप एव बहुत ही सजीव पात्र हैं। वह अपनी दण्ड-बैठक और मोटी बुद्धिके कारण इतने स्पष्ट हैं कि धुँधलेपनकी गुन्जाइश नही। लेखकका आदर्श पात्र यमुना है। वह प्रभावती को वे तमाम रहस्य समझाती है जिनसे क्षत्रियोंको पग-पग पर हार खानी पड रही है। प्रभावती अप्सरा की तरह छायावादी कविताका एक उपकरण है। यमुना की तुलनामें उसका व्यक्तित्व विकसित नही हो पाया। लेकिन छायावादी सौंदर्य ऐसे भव्य रूपमें पहले कम प्रकट हो पाया था। गगाके किनारे किलेकी ऊँची सीढियोंसे चाँदनी रातमें उतरती हुई, आभूषणोंसे सजी हुई राजकुमारी साक्षात् अप्सरा-सी जान पडती है। उसके आगे वनकका वैभव फीका लगता है। लिखा है "अकूल ज्योत्सनाके शुभ्र समुद्रमें आकुल पदोंकी नूपुर ध्वनि तरगें कितने प्रिय अर्थों से दिगन्तके उरमें गूँजने लगी। प्रभाका हृदय अनेक सार्थक कल्पनाओंसे द्रवीभूत होने लगा। बार-बार पुलकमें पलकों तक डूबती रही। सोपान-सोपानपर सुरजिता, शिंजित चरण उतरती हुई, प्रति पद-क्षेप झकार कम्प पर चापल्यसे लज्जित-कमला-सी झुकती रही। सरोजोंसे गुण चिह्न जैसे आए झीने चित्रित समीर-चचल

उत्तरीयको दोनों हाथोंसे पकड़े उड़ते अंचलोंसे, प्रियके लिए स्वर्गसे उतरती अप्सरा हो रही थी।"

प्रभावती उपन्यास इस अप्सराकी ट्रैजेडी है। उसके प्रेमकी परिणति यौवनके मधुर स्वप्नोंके अनुकूल नहीं होती। पृथ्वीराज और जयचन्द के गृहयुद्धमें यह सारा ऐश्वर्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। हम इसे छायावाद की भी ट्रैजेडी कह सकते हैं क्योंकि मध्यकालीन समाजमें जो सामाजिक उत्पीड़नकी आग धधक रही थी, उससे यह वैभव अपनी रक्षा न कर सका। प्रभावती उपन्यास इतिहासके प्रति एक नया दृष्टिकोण भी है।

प्रत्येक रोमांटिक आन्दोलनमें यह देखा जा सकता है कि कवि पुरातन को स्वर्णयुगके रूपमें चित्रित करते हैं। ऊँच-नीचका भेदभाव, घरेलू लड़ाई, किसानों पर अत्याचार यह सब बातें भूल कर वे इस युग पर ऐसा मुलम्मा चढ़ाते हैं कि अपने युगसे असंतुष्ट पाठकको वह खरा सोना जान पड़ता है। निरालाने मध्यकालकी बर्बरता, उत्पीड़न और दासता को भावुकताकी रंगीन चादरसे ढँक नहीं दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें हिन्दुस्तानकी पराजयके लिए सामन्तोंके उत्पीड़नको दोषी ठहराया है। यमुना कहती है: "क्षत्रियोंमें स्पर्द्धासे दबानेका जो भाव बढ़ा हुआ है, वह उन्हें ही दबाकर नष्ट कर देगा; यह प्रकृतिक सत्य है.........वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठामें बौद्धोंपर विजय पाने वाले क्षत्रिय कदापि इस धर्मकी रक्षा न कर सकेंगे क्योंकि साधारण जातियाँ इनके तथा ब्राह्मणोंके घृणा भावोंसे पीड़ित हैं। यह आपसमें कटकर क्षीण हो जायेंगे।"

ब्राह्मण जनता को शिक्षा देते थे कि राजा भगवानका अंश है, उसकी आज्ञा मानना प्रजाका कर्तव्य है। इस धर्मके अनुसार सभी देशभक्त राजा के सिपाही थे। उन्हें वेतन मिले चाहे न मिले। किसानोंको खेती छोड़-कर इस धर्मका पालन करना पड़ता था। निरालाजी कहते हैं, "वह और ही युग था। एक ओर गाँवोंमें गरीब किसान छप्परोंके नीचे, दूसरी ओर दुर्गमें महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियोंसे भरे प्रासादोंमें

फिरभी उन्हींके फैसलेके लिए जाना और उन्हें भगवानका रूप मानना पड़ता था।"

यह विषमता आज भी चली आती है। लेकिन आज सामन्तशाही का ह्रास हो रहा है, उन दिनों सामन्तशाहीका बोलबाला था। कवियोंने पृथ्वीराज और सयोगिताके प्रेमसे भारतीको कृतार्थ किया। लेकिन निरालाकी दृष्टिने देखा कि जामवन्ती, इच्छनकुमारी, शशिव्रता, इन्द्रावती, हंसावती, आदि आदि कुमारियोंने पृथ्वीराज से नहीं, उसके ऐश्वर्यसे प्रेम किया था। "ये वरे हुए वीरको वरकर कीर्तिको वरती हैं, जो स्त्री है।" इसलिए इनका विवाह अस्वाभाविक और समाजके लिए घातक है। वीर वह समझा जाता था जो दम्भ का परिचय दे और उसी कुमारीका प्रेम सार्थक समझा जाता था, जो ऐसे दम्भी को वरे। यह सामाजिक विषमता "साधारण जनोंको आत्मा से असह्य थी।" इसलिए अब या तो ऐसे उपन्यास लिखे जायें, जिनमें इस असह्य विषमता का चित्रण हो, या वर्तमान समाजमें उस तरह के चित्र ढूँढे जायें। जागरूक कलाकार मध्यकालीन समाजके वैभवका चित्र अंकित करके सन्तुष्ट न रह सकता था।

१८

प्रगति और प्रयोग

निरालाजी अपनी मित्र मण्डलीमें वह कथा बड़े नाटकीय ढंगसे सुनाया करते थे जो पहले धारावाहिक रूपमें "माधुरी" में और फिर पुस्तक रूपमें 'कुल्ली भाट' के नाम से प्रकाशित हुई। ससुरालके दोस्त कुल्लीका देहान्त हुआ था। उनके जीवनमें निरालाजीने कुछ बातें ऐसी देखी, जिन पर लिखना जरूरी समझा। प्रगतिशील साहित्यकी भी इधर काफी चर्चा रहती थी। निरालाजीने इस स्केचमें यह दिखाया कि साधारण मनुष्यमें अनेक कमजोरियाँ होते हुए समाजका बहुत बड़ा उपकार कर सकते हैं और महापुरुष कहलाने वाले लोग चरित्रपर नकली सफ़ेदी किए हुए समाजका उपकार करना तो दूर, सच्चे सेवकोंका साथ भी नहीं दे सकते। समर्पण के योग्य कोई भी व्यक्ति हिन्दी साहित्यमें नहीं मिला, इसलिए यह कार्य स्थगित रखा गया है। पुस्तकमें स्वयं लेखकके जीवनपर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है लेकिन वर्णन में विशेषता हो तो आत्म चर्चा भी एक गुण मानी जायेगी, यह कहकर निरालाजीने इसका समर्थन किया है। बहुत से लोगोंपर जहाँ-तहाँ व्यंग्य किया है। जो नाराज़ होगा, वह अपनी ही कमजोरी साबित करेगा, यह कहकर निरालाजीने इन विरोधियोंका मुँह पहले से ही बन्द कर दिया है।

पहले उन्होंने जीवन चरित लिखने वालों पर भी व्यंग्य किया। यह लोग जीवनसे चरित ज़्यादा देते हैं। चरित शब्द का प्रयोग चरित्रके अर्थमें हुआ है। महापुरुषोंने अपने हाथसे अपनी जीवनियाँ लिखी हैं, उनके लिखने से मालूम होता है कि वे पराधीन देशके रहने वाले हैं। इनके

महान् कृत्याको देखकर बम्बईके सिनेमा स्टारोंकी याद आती है जो दीवाल चढ़नेकी करामात दिखाया करते हैं। ऐसी स्थितिमें यह कुल्लीका चरित लिखकर एक आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। इनके जीवनके महत्व को समझनेवाला ऐसा अब तक एक ही पुरुष संसारमें आया, पर दुर्भाग्यसे अब वह संसारमें नहीं रहा—गोर्की, लेकिन गोर्की भी जीवनसे जीवनकी मुद्राको ज्यादा देखता था, इसलिए कुल्लीका जीवन-चरित्र लिखनेकी योग्यता निरालाजी ही में सिद्ध हुई। फिर भी मानना है कि हिन्दी पाठकों को संतुष्ट करनेमें सफलता न मिलेगी, यही बीस सालका अनुभव है।

निरालाजी उन दिनोंकी याद करते हैं जब सोलहवाँ साल पार किया था और लोग कहते थे, अब बहुआ नहीं है, गौना करा दो। प्लेगके दिनोंमें गौना हुआ, और गाँवके बाहर एक झोपड़ेमें प्रथम मिलन हुआ। पाँच दिन बाद विदा होने पर गवहीं का बुलावा आया। पिताजीने तिगुना खाने और रोज रूहकी मालिश करानेका उपदेश देकर पुत्रको विदा किया।

आगे चल कर कुल्लीकी पाठशाला में अछूत लड़कोंकी चर्चा है; मानो उसकी तुलना करने के लिये आरम्भ में शान्तीपुरी धोती और बंगाली ठाठका वर्णन किया गया है। ठीक दोपहरीको स्टेशनकी तरफ चले तो लूका ऐसा झोंका आया कि सारे परदे एक साथ ही हट गये। रहस्यवादियों की तरह ब्रह्म का ज्ञान होगया। "वह प्रकाश देखा कि मोह दूर होगया, लेकिन व्यक्ति-भेद है; रविबाबू को आराम कुर्सी पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड़पर, मुझे गलियारे में।" बंगाल की कविता और प्रेम के कारण लूके विरोधमें भी पैर बढ़ते गए। बैलगाड़ियोंके ढर्रे में पैर फिसल जानेसे अक्षरशः धूल चाटने की नौबत भी आगई। मुंहपर क्रीमपाउडर की कसर पूरी हो गई। ककड़ से ठोकर लगने से जूतेने मुंह फैलादिया, छाता उलटकर कमल बन गया। लोन नदी के किनारे बेर-बबूलके बनमें आए जिससे "बारह कुँअर बनौधे केर" प्रसिद्ध हुए थे। काँटोंने दामन थाम लिया, धोती छप्पन छुरी होगई। स्टेशनके सामने का मैदान

मिला तो गाड़ी की आवाज़ सुनाई दी । बाबू बनकर सुसराल चले थे, दौड़ना अभद्रता थी । फिर भी बगल में छाता हाथ में जूते साधे, चार बजे की चटकती धूप में एक मीलका भूभलवाला मैदान पार किया । डलमऊ स्टेशन उतरने पर तेलसे ज़ुल्फें तर किये दुपलिया टोपी , ऐंठी मूंछे, चिकनका कुरता, हाथ में बेंत लिये कुल्ली ने स्वागत किया और इन्हें उस शुभ दृष्टि से देखा जो "सुन्दरीसे सुन्दरपर पड़ती है ।" सासजी को कुल्लीके इक्केकी बातका पता लगा तो वह अपने दामाद के लहराते हुए बंगाली बालों को बड़े संशय से देखने लगी । रातमें संसारके समस्त छन्दों को परास्त करती हुईं श्रीमतीजी भीतर आईं और छटतेही प्रश्न किया,"तुम कुल्ली के इक्के पर आये हो ?"

दूसरे दिन कुल्ली किला दिखाने लेगये । सासुजीने गुप्तचर की तरह चन्द्रिका नाई को साथ लगा दिया लेकिन दामाद ने उसे रूह लेनेके बहाने टरका दिया । रनिवास, मसजिद, ड्योढियाँ वगैरह दिखाने के बाद बारहदरी की सीढी पर बैठाकर कहा, "दोस्त क्या हवा चल रही है ।" फिर गाने का आग्रह किया । गलत ताल और समपर सिर हिलाकर भी कुल्ली ने अपनी तारीफ से दोस्त को खुश कर लिया और अपने मकान को पवित्र करने के लिये कहा । पान खिलाकर बोले, "पान भी क्या खूबसूरत बनाता है तुम्हें । तुम्हारे होठ भी गजब के हैं । पानकी बारीक लकीर रचकर, क्या कहूं, शमशीर बनजाती है ।" मुसरालका सम्बन्ध लगाकर कविवर प्रसन्न हुए । घर आकर रूहकी मालिश कराई और सासुजी को यह पूछने पर विवश किया, "तुम्हारे पिता-जी तनख्वाह कितनी पाते हैं ?" रातमें श्रीमतीजी की तुलना मच्छुआइन से की और वह रुष्ट होकर चली आईं । कुल्ली फिर अपने घर ले गये और मिठाई पान खिलाकर सुन्दर गलीचेवाले पलँगपर बिठाया । इनकी दोशी दिखानेपर मैं अज्ञात यौवन युवक की तरह कुल्ली को देखने लगा ।" फिर काफी हिचकिचाहटके बाद कुल्लीने कहा, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

परन्तु कुल्ली अपना अर्थ न समझा सके और अज्ञात यौवन युवक उन्हें नमस्कार करके बाहर चला आया ।

कुल्लीसे तो जोड बराबर छूटे लेकिन गडी वालीके मैदानमें श्रीमतीजी ने परास्त कर दिया । जिस समय उन्होंने स्त्रियोंकी भीडमें "श्री रामचद्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्" गाया तो मालूम हुआ कि गलेमें मृदग बज रहे है । सङ्गीत और साहित्यपर उनका यह अधिकार देखकर "मेरा दम उखड गया ।" इस पराजयसे लज्जित होकर कलकत्ते जानेकी तैयारी की ।

उसके बाद इन्फ्लुएजाका प्रकोप हुआ जिसमें दोनों ओरके परिवार नष्ट हो गए । फिर रियासतमें नौकरी की और उसे भी छोडकर साहित्य-सेवा में लग गए । लेख वापस आने पर कोरियोंके यहाँ बुनाई सीखने जाने लगे । लेकिन उन्होंने भी कहा, महराज होकर यह काम क्या करोगे, जाकर कहीं भागवत बाँचो । चारों तरफ निराशाकी अग्नि जल रही थी, इसलिए जब कुल्लीने कुछ उपदेश देनेके लिए कहा तो इन्होंने सक्षिप्त उत्तर दिया, "गगा में डूब जाइये ।"

कुल्ली एक मुसलमान महिला से प्रेम करने लगे । लेकिन समाजमें कोई सहारा न था । कविवरने उसे ले आनेकी सलाह दी । समाजमें बहिष्कार हुआ; कुल्ली अछूतोंके लडकोंको पढाने लगे । अपनी पाठशाला में एक दिन कविवरको भी आमंत्रित किया । गढ्ढेके किनारे कुटीनुमा बँगलेके सामने टाट बिछाए, श्रद्धाकी मूर्ति बने अछूत लडके बैठे थे । "कुल्ली आनन्दकी मूर्ति, साक्षात् आचार्य ।" निरालाजी इस अछूतवर्गके पीढी दर पीढी उत्पीड़नका ध्यान करके लिखते हैं, "इनकी ओर कभी किसीने नहीं देखा है । ये पुश्त दर पुश्तसे सम्मान देकर नतमस्तक ही ससार से चले गए हैं । । ससारकी सभ्यताके इतिहासमें इनका स्थान नहीं ।' ये नहीं कह सके, हमारे पूर्वज कश्यप, भरद्वाज, कपिल, कणाद थे । रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ हैं; अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं, अशोक,

विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज इनके वंशके हैं। फिर भी ये थे और हैं।"

एक बार "देवी" को देखकर छायावादी अहंकार नष्ट हो गया था, इस बार फिर वही छुटपन सवार हो गया। सदियोंके इस उत्पीडनके सामने संस्कृति, कला, साहित्य सब खोखला जान पड़ा। उन्हें कुल्लीके महत्वका ज्ञान हुआ जो इनको उठाकर अपनी मनुष्यताके स्तर तक लाया था। पुरानी कविता वैभव और विलासकी चेरी मालूम हुई; युग-प्रवर्तक और क्रांतिकारी होनेका दावा दम्भ मालूम हुआ। निरालाने लिखा :—

"अधिक न सोच सका। मालूम दिया, जो कुछ पढा है, कुछ नहीं; जो कुछ किया है, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा है, स्वप्न है। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है। इतने जम्बुकोंमें वह सिंह है..........ये इतने दीन दूसरेके द्वार पर नहीं देख पड़ते? मैं बार-बार आँसू रोक रहा था। इसी समय बिना स्तवके, बिना मंत्रके, बिना वाद्य, बिना गीतके, बिना बनाव बिना सिंगार वाले, पासी, धोबी और कोरी दोनेमें फूल लिए हुए मेरे सामने आ आकर रखने लगे। मारे डरके हाथपर नहीं दे रहे थे कि कहीं छू जानेपर मुझे नहाना होगा। इतना नत, इतना अधम बनाया है मेरे समाजने उन्हें ....लज्जासे मैं वहीं गड़ गया। यह दृष्टि इतनी साफ है कि सब कुछ देखती समझती है। वहाँ चालाकी नहीं चलती। ओफ! कितना मोह है! मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलासका कवि हूँ!—फिर क्रांतिकारी!!!"

सत्यसे यह प्रेम, कटु सत्य कहनेका यह साहस निराला ही में है। यही उनके व्यक्तित्वको महान् बनाता है। कल्पना प्रेमी साहित्यको वह वैभव और विलासकी वन्दना कहकर उसका तिरस्कार करता है। एक नए युग, एक नई साहित्यिक धाराका स्पष्ट स्वर इन वाक्योंमें सुनाई पड़ता है।

परन्तु कुल्ली अपना अर्थ न समझा सके और अज्ञात यौवन युवक उन्हें नमस्कार करके बाहर चला आया ।

कुल्लीसे तो जोड़ बराबर छूटे लेकिन खड़ी बोलीके मैदानमें श्रीमतीजी ने परास्त कर दिया । जिस समय उन्होंने स्त्रियोंकी भीड़में "श्री रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्" गाया तो मालूम हुआ कि गलेम मृदंग बज रहे हैं । सङ्गीत और साहित्यपर उनका यह अधिकार देखकर "मेरा दम उखड़ गया ।" इस पराजयसे लज्जित होकर कलकत्ते जानेकी तैयारी की ।

उसके बाद इन्फ्लुएंजाका प्रकोप हुआ जिसमें दोनों ओरके परिवार नष्ट हो गए । फिर रियासतमें नौकरी की और उसे भी छोड़कर साहित्य-सेवा में लग गए । लेख वापस आने पर कोरियोंके यहाँ बुनाई सीखने जाने लगे । लेकिन उन्होंने भी कहा, महराज होकर यह काम क्या करोगे, जाकर कहीं भागवत बाँचो । चारों तरफ निराशाकी अग्नि जल रही थी, इसलिए जब कुल्लीने कुछ उपदेश देनेके लिए कहा तो इन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया, "गंगा में डूब जाइये ।"

कुल्ली एक मुसलमान महिला से प्रेम करने लगे । लेकिन समाजमें कोई सहारा न था । कविवरने उसे ले आनेकी सलाह दी । समाजमें बहिष्कार हुआ, कुल्ली अछूतोंके लड़कोंको पढ़ाने लगे । अपनी पाठशाला में एक दिन कविवरको भी आमंत्रित किया । गड्ढेके किनारे कुटीनुमा बंगलेके सामने टाट बिछाए, श्रद्धाकी मूर्ति बने अछूत लड़के बैठे थे । "कुल्ली आनन्दकी मूर्ति, साक्षात् आचार्य ।" निरालाजी इस अछूतवर्गके पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पीड़नका ध्यान करके लिखते हैं, "इनकी ओर कभी किसीने नहीं देखा है । ये पुश्त दर पुश्तसे सम्मान देकर नतमस्तक ही संसार से चले गए हैं । संसारकी सभ्यताके इतिहासमें इनका स्थान नहीं । ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भरद्वाज, कपिल, कणाद थे । रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ हैं, अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं, अशोक,

विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज इनके वंशके हैं। फिर भी मैं ये और हैं।"

एक बार "देवी" को देखकर छायावादी अहंकार नष्ट हो गया था, इस बार फिर वही छुटपन सवार हो गया। सदियोंके इस उत्पीड़नके सामने संस्कृति, कला, साहित्य सब खोखला जान पड़ा। उन्हें कुल्लीके महत्वका ज्ञान हुआ जो इनको उठाकर अपनी मनुष्यताके स्तर तक लाया था। पुरानी कविता वैभव और विलासकी चेरी मालूम हुई; युग-प्रवर्तक और क्रांतिकारी होनेका दावा दम्भ मालूम हुआ। निरालाने लिखा :—

"अधिक न सोच सका। मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा हूँ, कुछ नहीं; जो कुछ किया हूँ, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा हूँ, स्वप्न है। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है। इतने जम्बुकोंमें वह सिंह है...........वे इतने दीन दूसरेके द्वार पर नहीं देख पड़ते? मैं बार-बार आँसू रोक रहा था। इसी समय बिना स्तवके, बिना मंत्रके, बिना वाद्य, बिना गीतके, बिना बनाव बिना सिंगार वाले, पासी, धोबी और कोरी दोनेमें फूल लिए हुए मेरे सामने आ आकर रखने लगे। मारे डरके हाथपर नहीं दे रहे थे कि कहीं छू जानेपर मुझे नहाना होगा। इतना नत, इतना अधम बनाया है मेरे समाजने उन्हें ....लज्जासे मैं वहीं गड़ गया। वह दृष्टि इतनी साफ है कि सब कुछ देखती समझती है। वहाँ चालाकी नहीं चलती। ओफ! कितना मोह है! मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलासका कवि हूँ!—फिर क्रांतिकारी!!!"

सत्यसे यह प्रेम, कटु सत्य कहनेका यह साहस निराला हो में है। यही उनके व्यक्तित्वको महान् बनाता है। कल्पनी प्रेमी साहित्यको वह वैभव और विलासकी वन्दना कहकर उसका तिरस्कार करता है। एक नए युग, एक नई साहित्यिक धाराका स्पष्ट स्वर इन वाक्योंमें सुनाई पड़ता है।

समाजसे बहिष्कृत, किसी भी बडे नतासे सहारा न पाकर कुल्ली जैसे तैसे पाठशाला का कार्य चलाते रहे। उनके जीवनका करुण अन्त हुआ। मृत्युके उपरान्त कोई अन्तिम क्रिया करानेको तैयार न हुआ। निरालाजी ने स्वय जनेऊ धारण करके मत्र पढकर सब कार्य कराए।

कुल्लीभाटका व्यग्य एक पूरे युगपर है। एक ओर बगालकी मध्य-वर्गीय सस्कृति है, रहस्यवादकी बातें हैं, साहित्य और सगीतकी चर्चा है, दूसरी ओर समाजके अछूत है, उच्च वर्गोकी असहनशीलता है, हिन्दू मुसलमान का तीव्र भेद-भाव है, बडे-बडे नेताओमें सच्ची समाज-सेवाके प्रति उपेक्षा है, कल्पनाकी उडान भरने वाले कवियोमें आतिका दम्भ है। कुल्लीकी पाठशालाकी ठोस जमीनपर मनोहर कल्पनाएँ चूर हो जाती हैं। यहाँ वह सत्य दिखाई देता है जिससे समाज और साहित्यके नेता आँखें चुराते हैं। जलके ऊपर सतोष की स्थिरता जान पडती है लेकिन नीचे जीवनको नाश करने वाला कर्दम छिपा हुआ है। निरालाजीने व्यग्यकी तलवारसे इस शात जलका सतोष काट दिया है। उन्होने लोगोको विवश किया है कि वे मनुष्य द्वारा मनुष्यके इस उत्पीडनको देखें। चद्रिका, कुल्ली, सासुजी, अपने पिताका और स्वय अपना चित्रण बडे कौशलसे किया है। पात्रोमें वैसी ही सजीवता है जैसी बैसवाडेके वर्णनमे चित्रमयता। भाषा सरल और सधी हुई है। यथार्थवादी रचनाओमें अपने व्यग्य और हास्यसे निरालाजीने एक नई परम्पराका श्रीगणेश किया है।

"बिल्लेसुर बकरिहा" ग्रामीण जीवनका एक दूसरा चित्र है। इसमें लेखक स्वय पात्रके रूपमें नही आया। यहाँ उसने अवधके किसानोकी एक भरी-पूरी तस्वीर खीची है।

बिल्लेसुर "निरुपमा" के कृष्णकुमारकी तरह उन्नाव जिलेके रहने वाले हैं, लेकिन उसकी तरह लन्दनसे डी० लिट् न पानेपर भी जीवनमें अधिक सफलता पाते हैं। बकरी पालनेके कारण उनका नाम बकरिहा पडा। उनके तीन भाई और थे मन्नी, ललई और दुलारे। इन सबके रेखाचित्र

भी काफी मनोरंजक है। तरीके सुकुल होनेके कारण मनीका व्याह न होता था। एक विधवा माँकी दूध पीती लडकीसे विवाह करनेका विचार किया। जमीदार का खलिहान और गाँवके बाग अपने बताकर उसे फुसलाया। फिर दूधमें भंग छनवाई और पूरी-तरकारी खिलाकर सासुजीको सुला दिया। आधी रातको "भावी पत्नीको गले लगाया" और भगवान बुद्धकी तरह घर त्याग कर चल दिए। दस-बारह साल सेवा की। बीस सालकी उम्रमें उसे एक कन्या रत्न देकर स्वर्गवासी हुए। दूसरे भाई ललईने रतलामके एक गुजराती ब्राह्मणके यहाँ नौकरी की। उनके मरने पर उनके घरका कुल भार, उनकी पत्नी और बेटा-बेटियां समेत ललईने सम्भाला। गृहस्थी और माल असबाब लेकर घर आए लेकिन लोगोंने स्वागत करनेके बदले उनका पानी बन्द कर दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन चलने पर देशके उद्धार में हिस्सा लिया और जब बड़ा लड़का गुजरातसे रुपए भेजने लगा तो गाँवका असहयोग टूट गया। दुलारे आयसमाजी थे। एक सुकुलजी पचास सालकी उमरमें एक विधवा लाये थे। दुलारे ने उससे अपना घर आबाद किया। , उसे गर्भिणी छोड़कर वह भी परलोक सिधारे। बिल्लेसुरका वृत्तांत अपने भाइयोंमें सबसे ज्यादा रोचक था।

बिल्लेसुरने सुना था कि बंगालका पैसा टिकता है। पासके गाँवके कुछ लोग बर्दवानके महाराजके यहाँसे काफी रुपया लाए थे। बिल्लेसुर ने भी बर्दवान जानेका विचार किया। बिना टिकट सविनय कानून भंग करके चढ़ते-उतरते बर्दवान पहुँचे और वहाँ जमादार सत्तीदीन सुकुलके यहाँ रहने लगे। उनकी गायें चराने लगे और चिट्ठियाँ बाँटकर चार-पाँच रुपया महीना पीटने लगे। सत्तीदीनकी स्त्रीको यह अच्छा न लगता था कि बिल्लेसुर चिट्ठी लगाने जायें। बाहरकी धूप और घरकी गर्मी के मारे बिल्लेसुरका बुरा हाल था।

"गर्मीके दिनोंमें दस-बारह बजेतक घरका कुछ काम करते थे, फिर चिट्ठी लगाते हुए, देर हुई सोचकर धूपमें, नंगे सिर, बिना छाता, दौड़ते

हुए रास्ता पार करते थे। लौटते थे, हाँफते हुए, मुँहका थूक सूखा हुआ, होठ सिमटे हुए, पसीने-पसीने, दिल धडकता हुआ, यहाँका बाकी काम करनेके लिए। पहुँचकर जमीन पर जरा बैठते थे कि सत्तीदीनकी स्त्री पूछती थी, कितना कमा लाए बिल्लेसुर ? जबान छुरीसे पैनी, मतलब हलाल करता हुआ।"

बिल्लेसुर जान पहचानके लोगोंसे कहने लगे कि मर्दसे औरत होना अच्छा है। लोग समझते नही थे; बिल्लेसुर चुपचाप बर्दाश्त करते थे। जिन्दगीकी लडाईमें उन्हे बराबर धीरजसे काम लेना पडता था। वैसे ही आस्तिकता भी घटती जाती थी। 'अपनी जिन्दगीकी किताब पढते गए, किसी भी वैज्ञानिक से बढकर नास्तिक।"

साल भर बाद जमादारसे नौकरी दिलानेको कहा। नापके वक्त चमरौधे जूतोंमें रुईकी गद्दी लगाकर खडे हुए फिर भी डेढ़ इंचकी कमी रह गई। पक्की नौकरी तो न लगी, लेकिन एवजीमें काम करनेकी इजाजत मिल गई। जमादारके कोई सतान न थी। स्त्रीने जगन्नाथजीके दर्शन करनेको कहा। बिल्लेसुरभी साथ चले। समुद्र देखकर बहुत खुश हुए और जगन्नाथजीकी स्मृतिमें बहुत से घोंघे समुद्रके किनारे से चुनकर रख लिए। सत्तीदीन के पैर पकडकर गायत्री का मत्र लिया। सत्तीदीनकी पत्नी तीर्थयात्राके बाद साल भर तक देवताकी शक्तिकी परीक्षा करती रही। जब कोई फल न हुआ तो मनुष्यकी शक्तिकी पक्षपातिनी बन गईं। उनका यह यथार्थवाद बिल्लेसुरको यहाँ तक खला कि एक दिन उनके सामने कण्ठी माला पटक दी और गायत्रीका मत्र सुनाकर बिना पाँव छुए ही गाँव चल दिए।

गाँवके सम्मानित लोग इनकी उन्नतिसे डाह करने लगे। त्रिलोचन ज्ञान वाली आँखसे ताडने लगे। बैल बेचनेकी बात चलाई लेकिन दूसरे दिन बिल्लेसुर तीन बडी-बडी गाभिन बकरियाँ ले आए। पण्डित रामदीन ने लोभी निगाहसे बकरियोंको देखकर कहा -, "ब्राह्मण होकर बकरी पालोगे" ?

ललई ने उत्साह बढ़ाया । मन्दिरके पास पहुँचकर बिल्लेसुरने महावीरजी से बकरियोंकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की । चरवाहे लड़के बकरियाँ उड़ानेके फेरमें खेलनेके लिए बुलाने लगे । बिल्लेसुरने संक्षिप्त उत्तर दिया, "अपने बापको बुला लाओ, तुम क्या हमारे साथ खेलोगे ?" दीनानाथने बकरियोंके दाम पूछे और एकाध को उड़ानेकी प्रतिज्ञा की।

बिल्लेसुर गाँवमें रहते थे जैसे दुश्मनोंके गढ़में । भाई भी साथ नहीं देते थे । बकरियोंकी गन्धसे नफरत होनेके कारण उन्होंने बिल्लेसुरको मजबूर किया कि वे अलग मकान में रहें । "बिल्लेसुर सोचते थे, क्यों एक दूसरेके लिए नहीं खड़ा होता ? जवाब कभी कुछ नहीं मिला । मुमकिन दुनियाका असली मतलब उन्होंने लगाया हो.................हमारे सुकरात के जबान न थी, पर इसकी फिलासफी लचर न थी; सिर्फ कोई इसकी सुनता न था; इसे भी भूलभुलैयासे बाहर निकलनेका रास्ता न दिखा । इसलिए यह भटकता रहा ।" जिन्दगीकी लड़ाईसे बिल्लेसुरने सीखा कि आदमी सबभी अज्ञानमें है । जो ज्ञानी कहलाते थे, उनके अज्ञानका पता उन्हें लग गया ।

बकरियोंकी नाती-नातिनें हुईं; कुछ पट्ठे बेचे और आमदनी हुई । लोग जलकर इन्हें बकरिहा कहने लगे । इसके जवाबमें बिल्लेसुर बकरियों के बच्चोंको अपने विरोधी गाँववालोंके नामसे पुकारने लगे । एक दिन जामुन खाते हुए बकरियाँ लिए हुए चले आ रहे थे कि 'दीनानाथ' कहीं पीछे रह गए । होश आनेपर बिल्लेसुरने 'उर्र उर्र' ! अले ! अले !' कहकर बहुत पुकारा लेकिन दीनानाथका कहीं पता न लगा । झाड़ीके पास सून से तर ज़मीन देखकर आँखोंमें शामकी उदासी छा गई । झुटपुटेमें मन्दिर के पास आकर उल्टी प्रदक्षिणा की और फिर ललकारा, "क्या तूने रखवाली की, बता; लिए थूथन-सा मुँह खड़ा है ।" उत्तर न मिलनेपर महावीरजीके मुँहपर भरपूर डंडा जमाया, जिससे मुँह टूटकर गिल्लीकी तरह दूर जा गिरा ।

अब तक बिल्लेसुर जीवन-संग्राममें जूझकर खरे सिपाही बन गए थे। हार मानना सीखा ही न था, दुखका मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरतको बार बार चुनौती दे चुके थे। खोया बनाकर बेचनेकी कोशिश की लेकिन नाकामयाब रहे। फिर भैंसके घीमें बकरीका घी मिलाकर व्यापार किया। अकेले खेत गोडकर शकरकदकी बेंडी लगाई। कभी लपसी, कभी बकरीके दूधमें सत्त सानकर खाते रहे। त्रिलोचन ब्याहका प्रस्ताव लेकर आए। जीवनमें एक नया रोमांस शुरू हुआ। छायावादी कविकी तरह इन्हें भी संसार प्रबलामय दिखाई देने लगा। रातको उसीके रूपका स्वप्न देखते थे। "बहुत गोरी है, सोचते रामरतनकी स्त्री ही याद आई। सोलह सालकी है, सोचा तो रामचरन सुकुल की बिटिया की सूरत सामने आ गई। बड़ी-बड़ी आँखें होंगी, जैसी पुखराजबाईकी लड़की हसीनाकी है।" झोपड़ीमें परियोंका ख्वाब देखने वाले कल्पनावादी कवि कीतरह "एक दफा भी बिल्लेसुरने नहीं सोचा कि बकरीकी लेंडियोंकी बदबू में ऐसी औरत एक दिन भी उस मकानमें न रह सकेगी।" नई पोशाक तैयार कराकर बिल्लेसुरने त्रिलोचनका पीछा किया और उसकी जाल-साजीका तुरन्त ही पता लगा लिया। हताश न होकर मन्नीकी ससुराल चले गए।

कातिकमें मन्नीकी सास आई और मन्नी की ही तरह बिल्लेसुरने उनका सत्कार किया। चने भिगोकर तरकारी बनानेके बदले काछीसे बैंगन लाए। बगालकी रंगीन दरी बिछाई और सत्तोदीनकी श्रीमतीकी धोतियो का तकिया रक्खा। सासजीने प्रसन्न होकर विवाहका वर दिया। बिल्लेसुरने सत्तर रुपएकी शकरकन्दें बेची और ब्याहकी तैयारी की।

शकरकदके बाद चने और मटरकी भी खेती थी। कुछ अग्रिम रुपए लेकर ब्याह पक्का हुआ। गाँवके परजा नेगचारके लिए घेरने लगे। अब जमींदारने भी अपनी चरण-रजसे उनका घर पवित्र किया। लोगोंमें अफ़वाह फैल गई कि बिल्लेसुर सोनेकी ईंटें उठा लाए है। बिल्लेसुरने

ब्याह किया और बहुत बार पूछनेपर भी अपने धनी होनेका भेद किसीको न बताया।

बिल्लेसुर ब्राह्मण-कुलमें पैदा हुए लेकिन जाति-प्रथाने मनुष्यताके इतने टुकड़े कर दिए हैं कि वह ब्राह्मणोंमें भी अछूत समझे जाते हैं। यह जाति-प्रथा पैसेका मुँह देखती है। यह बिल्लेसुरके एक भाईके बहिष्कार और फिर समाजमें ग्रहण करनेसे सिद्ध है। गाँवके सम्मानित वर्ग यह नहीं चाहते कि इतर जन किसी तरह भी उन्नति करें। ब्राह्मणत्वके क्षेत्रमें थोड़ेसे ही बिस्वे पाने वाले बिल्लेसुर उन्नतिकी फसल न काट सकते थे। लाचार होकर और बहुत से लोगोंकी तरह वह भी परदेस गए। घोर तपस्या करनेके बाद गाँठमें कुछ रुपए लेकर गाँवमें लौटे। यहाँ खेतिहर मजदूर की तरह जीवन-संग्राममें फिर जूझना पड़ा। ऊँची जातिके ग्रामीणोंकी तरह बिल्लेसुरकी बुद्धिका ह्रास न हुआ था। उनके चरित्रमें एक बहुत बड़ी दृढ़ता थी। निरालाजीने दिखाया है कि साधन न होनेपर भी अवधका एक साधारण किसान किस तरह अपनी रोटीके लिए लड़ाई लड़ता है। गाँवके लोग चिढ़ाते ही नहीं हैं, उसका घर लूट लेने पर भी उतारू हैं। बिल्लेसुर यह सब विरोध सहन करता है। एक देवताका सहारा था, कुछ दिनोंमें वह भी छूट गया। फिर भी हार नहीं मानी। उनके भीतर हिन्दुस्तानी किसानकी अपराजिता शक्ति है, उसी ने उन्हें एक वास्तविक हीरो बनाया है जिसका वीरत्व "अप्सरा" या "निरुपमा" के नायकोंमें नहीं है। "बिल्लेसुर बकरिहा" हिन्दीके यथार्थवादी साहित्यकी एक बहुत बड़ी देन है।

११

निरालाजीकी युद्धकालीन कविताएँ

दूसरे महायुद्धका समय निरालाजीके प्रयोगोंका समय रहा है। इस काल में हमारे देश ने क्या-क्या घटनाएँ नहीं देखीं? बंगालमें ऐसा अकाल पड़ा जैसा संसारके इतिहासमें पहले कभी देखा-सुना न गया था। सन् '४२ में अंग्रेज़ी राजने कांग्रेसी नेताओंको जेलोंमें ठूँस दिया और जनता पर दमन ढाया। युद्धमें सोवियत संघकी विजय हुई और फासिस्ट राज्यों के गढ़ टूटनेसे समाजवादी क्षेत्र और फैल गया। काफी दिन तक हमारा राजनीतिक जीवन दिशाहीन सा रहा। युद्धके संकटका सभी हिन्दी लेखकों पर प्रभाव पड़ा है। कुछ ने तो इन दिनों लिखना ही बन्द कर दिया था, कुछमें पुराने निराशावादने फिर सिर उभारा। कुछ लोग नए-नए प्रयोग करने लगे। ऐसे संकटके समय जनतामें विश्वास रखकर सही मार्ग पहचानना बड़े जीवटका काम था। युद्धकालका यह प्रभाव अनेक रूपोंमें निरालाजीकी रचनाओंमें भी दिखाई देता है।

युद्धके पहले वर्षोंमें उन्होंने कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी थीं। इनमें 'कुकुरमुत्ता' की विशेष चर्चा हुई। अभी तक किसीने नामसे ही नगण्य कुकुरमुत्ता जैसी वस्तुपर लिखनेका विचार न किया था। लोगोंमें इस बातपर मतभेद रहा कि निरालाजी इस कवितामें किसपर व्यंग्य करना चाहते हैं।

कहानी संक्षेपमें यों है। एक नवाब साहबने फारससे गुलाब मँगा-कर अपने बागमें लगाए थे। वहीं एक गंदी जगहमें कुकुरमुत्ताभी फूला हुआ था। फारसके मेहमानको इतराते हुए देखकर देसी कुकुरमुत्तेने

उसे लताड़ना शुरू किया। अपनी खातिर गुलाब मालीको जाड़ा घाम सहने पर मजबूर करता है। जो उसे हाथमें लेकर सूँघते रहते हैं, वह मैदान जंग छोड़कर औरतकी जानिब भाग चलते हैं। अमीरों और बादशाहोंसे सम्मान पानेके कारण साधारण लोगोंसे वह दूर रहा है। संक्षेपमें—

"रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी।"

वह उस कविताका प्रतीक है जो मनुष्यको मँझधारमें छोड़ देती है जहाँ कोई सहारा नहीं होता। वह ऐसे ख्वाब दिखलाता है, कि लोग मुँहसे रसकी बातें करते हैं और पेटमें चूहे दंड पेलते हैं।

इसके बदले कुकुरमुत्ता अपने आप उगा है और गुलाबसे डेढ़ बालिश्त ऊँचा बढ़ गया है। वह एक तरफ भारतका दर्शन है तो दूसरी तरफ महाबुद्ध का पैराशूट है। वह क्या क्या है, इसकी कोई गिनती नहीं। टी एस. इलियट पर उनकी पंक्तियाँ देखने लायक हैं—

"कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर,
टी एस इलियटने जैसे दे मारा,
पढ़नेवालों ने जिगर पर रखकर
हाथ कहा, लिख दिया जहाँ सारा।"

नवाबका बागीचा जितना सुन्दर है, उसके खादिमोंके झोपड़े वैसे ही घिनौने हैं। मोरियोंमें रुका पानी सड़ता रहता था। कहीं हड्डियाँ बिखरी थीं और कहीं परोंकी गद्दियाँ पड़ी थीं। हवामें बदबू छाई रहती थी। यहीं पर किस्मतकी एक ही रस्सीसे बँधा हुआ "एक खासा हिन्दू-मुस्लिम खानदान" रहा करता था। यहीं पर मालिनकी लड़की गोली रहती थी जिसका नवाबकी लड़की बहारसे बड़ा हेल मेल था। एक दिन बागमें जब बहार गुलाब देख रही थी, तभी गोलीकी नजर कुकुरमुत्तेपर पड़ी। उसने कुकुरमुत्तेके कबाबकी वह तारीफकी कि बहारके मुँहमें पानी आ गया। गोलीकी माँने कुकुरमुत्तेका कलिया-कबाब बनाकर तैयार किया। बहार

ने मुँहभ तारीफ सुनकर नवाबने मालीसे कुकुरमुत्ता ले आनेको कहा। लेकिन अब बागमें एक भी कुकुरमुत्ता न था, सिर्फ गुलाब बच रहे थे। नवाबने खफा होकर हुक्म दिया, जहाँ गुलाब लगे हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता लगाया जाय। लेकिन कुकुरमुत्ता गुलाबकी तरह लगाया नहीं जाता। वह अपने आप उगता है।

'खजोहरा' एक हास्यरसकी कविता है। सावनके दिनोंमें ग्रामीण जीवनका चित्र महत्वपूर्ण है। हाईकोर्ट के मतवाले वकीलोंकी तरह बादल भी जरूरतकी जगह न बरसकर जहाँ पानी भरा है वहीं "कहकहे लगाते हुए टूट पड़े।" लोग ढोलकपर आल्हा गाते हैं और लड़कियाँ झूलोंमें सावन गाती हैं। सावनमें भतीजा हुआ है। इसलिए बुआ भी गाँवमें आई है। ससुरालसे फिर स्वच्छंदता पाकर वह तालमें नहाने चली। टैगोरकी विजयिनीकी तरह वह पानीमें उतरी। लेकिन कामदेवके बाणों के बदले खजोहराने उनका सत्कार किया। नि संदेह निरालाजीके दिमाग में विश्वकविकी वह भव्य कल्पना थी जिसमें नग्न तरुणी सरोवरकी सीढ़ियों पर गीले चरण-चिह्न अंकित करती हुई अपने सौंदर्यसे कामदेवको परास्त करती है।

'स्फटिक शिला' 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज और मैं' की तरह वर्णनात्मक कविता है। इसका अन्त बड़े मार्केका हुआ है। निरालाजीने अपनी दृष्टिकी तुलना जयंतकी चोंचसे की है। स्नान करके आई हुई युवती पर निगाह पड़ते ही जीवनकी ओर चाहें जैसे नष्ट हो गईं। मानवीय भावनाओंने उनके अध्यात्मवादको फिर झकझोर दिया है।

'अणिमा' के गीतोंमें विषाद बढ़ता गया है। उसे दूर करने के लिए ज्ञानमय प्रकाशकी कल्पना की गई है। चरण स्वच्छंद न रहनेपर नूपुर के स्वर मन्द हो गए हैं। स्नेहके निर्झर बह चुके हैं और जीवन रेत-मात्र रह गया है। 'परिमल' के आँसू पोंछनेवाले इष्टदेवकी तरह फिर कोई रहस्य-शक्ति सर झुकनेपर कविको धरतीसे उठा लेती है। कभी वह सोचते

है कि जिसने मृत्युको वरण किया है, उसीको जीवन मिला है। कभी मन को समझाते हैं —

'गया अँधेरा
देख, हृदय, हुआ है सवेरा।'

परन्तु वास्तवमें सवेरा नहीं हुआ, उन्हें रह-रहकर वार्धक्य वाला भाव सताता है। उन्हें अपने पके बालोंकी याद आती है और उनका हृदय जैसे चीत्कार कर उठता है,

"मैं अकेला, मैं अकेला,
आ रही मेरे गगनकी साध्यबेला।"

अपनी वेदनाका यह यथार्थवादी चित्रण उनकी नई कविताओंकी विशेषता है।

'अणिमा' में अंग्रेजीके "ओड" जैसी चीजें भी है जो विशेष व्यक्तियों के प्रति लिखी गई है। संत कवि रैदासको ज्ञान-गंगामें नहानेवाला चर्मकार कहकर उन्होंने प्रणाम किया है। शुक्लजीको समालोचनाकी अमावस्यामें उदित होने वाला हिन्दीका दिव्य कलाधर कहा है। प्रसादजीको अग्रज कहकर उनको श्रद्धांजलि अर्पित की है। इसके साथ कुछ ऐसी कविताएँ है जिनमें किसी दृश्यका वर्णन किया गया है। जलाशयके किनारे, कुहरी, सडकके किनारे की दूकानवाली कविताएँ ऐसी ही हैं। कहीं-कहीं जन साधारणके साथ जीवनके कष्ट सहनेकी इच्छा प्रकट की है।

नए प्रयोगोंमें निरालाजीकी गजलेंभी शामिल हैं। इनका संग्रह "बेला" नामसे प्रकाशित हुआ है। गजलोंकी परम्परा उर्दू ही में खत्म हो रही है। नए कवि नए ढंगके मुक्तक और गीत लिख रहे हैं। निरालाजी ने 'गीतिका' में भी एक गजल लिखी थी,—"गई निशा वह

न मुँहकी तारीफ सुनकर नवाबने मालीसे कुकुरमुत्ता ले ग्रानेको कहा । लेकिन अब बागमें एक भी कुकुरमुत्ता न था, सिर्फ गुलाब बच रहे थे । नवाबने खफा होकर हुक्म दिया, जहाँ गुलाब लगे हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता लगाया जाय । लेकिन कुकुरमुत्ता गुलाबकी तरह लगाया नहीं जाता । वह अपने आप उगता है ।

'खजोहरा' एक हास्यरसकी कविता है । सावनके दिनोंमें ग्रामीण जीवनका चित्र महत्वपूर्ण है । हाईकोर्ट के मतवाले वकीलोंकी तरह बादल भी जरूरतकी जगह न बरसकर जहाँ पानी भरा है वहीं "कहकहे लगाते हुए टूट पड़े ।" लोग ढोलकपर आल्हा गाते हैं और लड़कियाँ झूलोंमें सावन गाती हैं । सावनमें भतीजा हुआ है । इसलिए बुआ भी गाँवमें आई है । ससुरालसे फिर स्वच्छंदता पाकर वह तालमें नहाने चली । टैगोरकी विजयिनीकी तरह वह पानीमें उतरी । लेकिन कामदेवके बाणों के बदले खजोहराने उनका सत्कार किया । निःसंदेह निरालाजीके दिमाग में विश्वकविकी वह भव्य कल्पना थी जिसमें नग्न तरुणी सरोवरकी सीढ़ियों पर गीले चरण-चिन्ह अंकित करती हुई अपने सौंदर्यसे कामदेवको परास्त करती है ।

'स्फटिक शिला' 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज और मैं' की तरह वर्णनात्मक कविता है । इसका अन्त बड़े मार्केका हुआ है । निरालाजीने अपनी दृष्टिकी तुलना जयतकी चोंचसे की है । स्नान करके आई हुई युवती पर निगाह पड़ते ही जीवनकी और चाहें जैसे नष्ट हो गईं । मानवीय भावनाओंने उनके अध्यात्मवादको फिर झकझोर दिया है ।

'अणिमा' के गीतोंमें विषाद बढ़ता गया है । उसे दूर करने के लिए ज्ञानमय प्रकाशकी कल्पना की गई है । चरण स्वच्छंद न रहनेपर नूपुर के स्वर मन्द हो गए हैं । स्नेहके निर्झर बह चुके हैं और जीवन रेत-मात्र रह गया है । 'परिमल' के आँसू पोंछनेवाले इष्टदेवकी तरह फिर कोई रहस्य-शक्ति सर झुकनेपर कविको धरतीसे उठा लेती है । कभी वह सोचते

है कि जिसने मृत्युको वरण किया है, उसीको जीवन मिला है। कभी मन को समझाते हैं —

'गया अंधेरा
देख, हृदय, हुआ है सवेरा।'

परन्तु वास्तवमें सवेरा नहीं हुआ, उन्हें रह रहकर वार्धक्य वाला भाव सताता है। उन्हें अपने पके बालोंकी याद आती है और उनका हृदय जैसे चीत्कार कर उठता है,

'मैं अकेला, मैं अकेला,
आ रही मेरे गगनकी सान्ध्यवेला।'

अपनी वेदनाका यह यथार्थवादी चित्रण उनकी नई कविताओंकी विशेषता है।

'अणिमा' में अंग्रेजीके "ओड" जैसी चीजें भी हैं जो विशेष व्यक्तियों के प्रति लिखी गई हैं। संत कवि रैदासको ज्ञान-गंगामें नहानेवाला चर्मकार कहकर उन्होंने प्रणाम किया है। शुक्लजीको समालोचनाकी अमावस्यामें उदित होने वाला हिन्दीका दिव्य कलाधर कहा है। प्रसादजीको अग्रज कहकर उनको श्रद्धांजलि अर्पित की है। इसके साथ कुछ ऐसी कविताएँ हैं जिनमें किसी दृश्यका वर्णन किया गया है। जलाशयके किनारे कुहरी, सडकके किनारे की दूकानवाली कविताएँ ऐसी ही हैं। कहीं जन साधारणके साथ जीवनके कष्ट सहनेकी इच्छा प्रकट की है।

नए प्रयोगोंमें निरालाजीकी गजलेंभी शामिल हैं। इनका संग्रह "बेला" नामसे प्रकाशित हुआ है। गजलोंकी परम्परा उर्दू ही में खत्म हो रही है। नए कवि नए ढंगके मुक्तक और गीत लिख रहे हैं। निरालाजी ने 'गीतिका' में भी एक गजल लिखी थी,—"गई निशा वह, हंसी दिशाएँ, उडा तुम्हारा प्रकाश केतन।" अनेक गजलोंमें उन्होंने रहस्यवादका भाव बांधा है लेकिन कई गजलोंमें देश और समाजके बारेमें भी बातें कही गई हैं। नायके हाथ पकडनेपर वीणाका बजना, किरण पडनेपर कमलका खि

प्रभुके नयनोंसे ज्योतिके सहस्रों झरोंका निकलना, पुरानी कल्पनाएँ है। कहीं-कहीं भौतिक सौंदर्यके वर्णन हैं। 'गीतिका' के अनेक छंदों-जैसी मासलता है। देहकी सुरवहारपर स्नेहकी रागिनी बजना ऐसी ही कल्पना है। 'कहाँकी मित्रता, वे हँसके बोले', इस तरहकी पंक्तियोंमें उन्होंने उर्दूकी बोलचालका रंग अपनाया है। इन गजलोंको पढने से ऐसा लगता है जैसे कविकी नई चेतना प्रकाशमें आनेके लिए रूढियोंसे टकरा रही है। ये बन्धन तोडकर वह चेतना अनेक बार जनगीतोंके रूपमें फूट निकली है।

इलाहाबादमें विद्यार्थियोंपर पुलिसका आक्रमण होनेपर गजल लिखी थी —

'युवक जनोंकी है जान खूनकी होली जो खेली।'

इन गीतोंमें उन्होंने संकेत किया है कि वह एक सफल जन गीतकार हो सकते हैं।

गजलोंमें अनेक पंक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें उन्होंने नए ढंगसे नई बातें कही हैं जो चित्तपर चढकर फिर उतरती नहीं। यहाँपर कुछ उदाहरण दिए जाते हैं। संसारमें जो लोग विजयी कहलाते हैं वह वास्तवमें दूसरोंका लहू पीकर ही बडे बनते हैं

"खुला भेद विजयी कहाए हुए जो
लहू दूसरोंका पिए जा रहे हैं।"

एक गजलमें गजलवालोंको ही चुनौती देकर कहते हैं —

"बिगडकर बनते और बनकर बिगडते एक युग बीता,
परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे।"

पूँजीपतियोंको ललकारकर कहते हैं —

"भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिलमें है।
देशको मिल जाय जो पूँजी तुम्हारी मिलमें है।।"

आर्थिक संकटसे पीडित जनता और आजादी दिलाने वाले नेताओंको लक्ष्य करके कहा है —

"आयर मजा कि लाखो आँखों से दम घुटा है,
पटली है बैठने को गोरे की सांवले से।"

"नए पत्ते" में कुकुरमुत्ता आदि पुरानी कविताओंके साथ "मँहगू मँहगा रहा" जैसे कुछ नए व्यंग्य चित्र भी हैं। इस रचनामें हिन्दुस्तानकी राजनीतिमें जो नया अध्याय शुरू हुआ है, उसीकी कुछ पंक्तियाँ आई हैं। गाँवमें किसानोंका उद्धार करनेके लिए ऐसे नेता पहुँचते है जिन्हें जमीदार और मुनाफ़ाखोर अपना हितू समझते हैं। राष्ट्रीयताके इन नए उम्मीदवार जमीदारकी बातें सुनकर लुकुआकी समझमें नही आता कि यह सब क्या हो रहा है। कानपुरको लकडी, कोयला लादनेवाला मँहगू उसे समझाता है कि कानपुरमें मजदूर 'किरिया' के जो गोली लगी थी, वह मिल मालिकके कारण और आजकल उन्हींकी चादीसे राजनीति चमक रही है। लेकिन हमारे लिए लडने वाले लोग भी हैं जिनके नाम अभी नहीं सुनाई देते क्योंकि "अखबार व्यापारियोंकी ही संपत्ति है।" मँहगूको विश्वास है कि जब बडे आदमी अपनी धन-संपत्ति छोड़ेंगे तभी देश मुक्त होगा।

यद्यपि इन नई रचनाओंमें पहले के स्केचो और कहानियों जैसी स्पष्टता नही है, फिर भी राजनीतिक उलझन में कविकी चेतना किसका साथ दे रही है और किस जीवनको अपने साहित्यका लक्ष्य बना रही है, यह स्पष्ट है। समाज और देशको लेकर आम बातें कहनेके बदले इधर उन्होंने विशेष घटनाओंपर कवितायें लिखी हैं। शाश्वत सत्य और ब्रह्मानन्द सहोदरकी कल्पनासे विचलित न होकर उन्होंने बताया है कि लेखकका स्थान जनताके साथ है। उसीके सुख-दुख, आशा-निराशा, विद्रोह और विजयका चित्रण करके वह अपनी वाणी सार्थक कर सकता है। देशके जीवनमें एक ओर भाई-भाईकी मारकाट और गृहयुद्धकी लपटें फैल रही हैं तो दूसरी ओर मजदूर वर्गके नेतृत्वमें एक महान् क्रांतिकारी ज्वार आया है। निरालाजीके विकासकी समूची परम्परा हमें सिखाती है कि इस ज्वारके साथ बढकर परिवर्तनकी शुभ घडी लानेके [illegible]र हिन्दी लेखकों और कवियोंको आगे बढ़न

है। उनके अदम्य जीवन और अनवरत साहित्य-साधनाका यही संदेश है कि हम देशको आजके घोर संकटसे मुक्त करें और वह स्वाधीनताके वातावरणमें फिर खुलकर साँस ले सके।

१२

जीवन-दर्शन और कला

"पंचवटी-प्रसंग" नाम की कविता में राम कहते हैं कि व्यष्टि और समष्टि में भेद नहीं है। इसका अर्थ है कि ब्रह्म और जीव में भेद नहीं है। माया से दोनों में भेद उत्पन्न होता है। जिस प्रकाश से ब्रह्माण्ड प्रकाशित है, उसीसे मनुष्य भी उद्भासित है। जब चेतना कहती है, द्वैत का खेल छोड़ो, तब जीव-तत्व जागता है। वह मन, बुद्धि और अहंकार से लड़ता है। उसे सूर्य-चन्द्र-ग्रह-तारे अपने ही भीतर दिखाई देते हैं। वह अपने को ही सृष्टि-स्थिति-प्रलय का कारण भी मानता है। "परिमल" की अनेक कविताओं में, "गीतिका" के अनेक गीतों में निरालाजी ने इस अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने अनेक बार यह घोषणा की है कि अज्ञान की रात दूर हो गई है और वह अखण्ड प्रकाश के दर्शन से आनन्दमग्न हो गये हैं। अनेक कविताओं में हम यह भी देखते हैं कि कवि दुखी है और अपने इष्ट-देव से अपने आँसू पोंछ देने की प्रार्थना करता है। वास्तव में उसका ब्रह्म निर्गुण न होकर सगुण है; उसमें दयालुता आदि मानवोचित गुण हैं।

"पंचवटी प्रसंग" ही में राम कहते हैं कि द्वैतभाव भ्रम तो है लेकिन भ्रम के ही भीतर से भ्रम के पार जाना है।

"इसीलिये द्वैतभाव-भावुकों में
भक्ति की भावना भरी ।"

भक्ति की भावना द्वैतभावपूर्ण है, स्वयं भ्रम है लेकिन व्यष्टि और समष्टि का भ्रम दूर करने के लिये आवश्यक है । भ्रम से भ्रम दूर करना वैसे ही है जैसे लोहे से लोहा काटना । "गीतिका" में जहाँ उन्होंने मातृरूप में अपने इष्टदेव की वंदना की है, वहाँ उन्होंने इसी तरह के भ्रम का सहारा लिया है ।

निरालाजी की रचनाओं में एक ओर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रहस्यवादी रचनाओं का प्रभाव दिखाई देता है, तो दूसरी ओर तुलसीदास की भक्ति का । एक ओर जहाँ नदी अपने प्रियतम असीम से मिलने चलती है, सारा संसार सच्चिदानन्द के प्रकाश में डूबा दिखाई देता है, वहाँ दुखी भक्त कृपालु ईश्वर से सहायता की प्रार्थना भी करता है । "परिमल" ही में

"डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन खेवनहार !"

जैसे भक्तिपूर्ण गीत मिलते हैं । 'अणिमा" में "दलित जन पर करो करुणा" आदि गीत 'अर्चना' में "भजन कर हरि के चरण, मन !" और "आराधना" में—

'कामरूप, हरो काम,
जपूँ नाम, राम, राम ।"

आदि रचनाओं की एक लंबी परम्परा है जो निराला का संबंध सगुणवादी भक्त कवियों से जोड़ती है । जो लोग छायावादी कविता को रहस्यवादी मानकर उसे हिन्दी से बाहर की चीज समझते थे, उनके लिये हिन्दी के भक्त-साहित्य से निराला का यह सम्बन्ध ध्यान देने योग्य है ।

भारतीय संत कवि प्रेम के कवि रहे हैं । प्रेम की भूमि पर

निर्गुण और सगुण दोनो क उपासक एक हुए हैं। "पंचवटी प्रसंग" में राम कहते है

"प्रेम की महोर्मिमाला तोड देती क्षुद्र ठाट,
जिसमें ससारियो के सारे क्षुद्र मनोवेग तृण सम बह जाते हैं।"

यदि यह प्रेम आध्यात्मिक हो, जीव का ब्रह्म के लिये प्रेम हो, तो कोई दार्शनिक समस्या नही उठ खडी होती। सन्तो में मानव-प्रेम और आध्यात्मिक प्रेम के बीच कोई गहरी खाई न थी और न उनके बीच कोई द्वन्द्व था जिससे उन्हे परेशानी होती। लेकिन निराला बीसवी सदी के कवि है। उनके सामने समस्या है कि मानव-प्रेम भी क्या माया नहीं है। जबतक मन मनुष्य की वेदना से दुखी है तब तक वह माया से मुक्त कैसे होगा? यह समस्या बहुत ही स्पष्ट शब्दो में उन्होने "अधिवास" कविता में पाठको के सामने रखी है। उनका समाधान यह है कि अधिवास चाहे छूट जाय वह दुखी मानव को छोडने के लिये तैयार नही हैं।

निराला ने मानव-प्रेम बनाम ब्रह्मवाद, इस समस्या को पहचाना है, उसका समाधान ढूँढने की कोशिश की है। यदि ससार भ्रम है, सच्चा ज्ञान उससे मुक्ति पाने ही में है, तब मनुष्य का दुख दूर करने में समय क्यों नष्ट किया जाय? निराला के हृदय में दुखी मनुष्यो के लिये जो करुणा थी, उसे भुला सकना असभव था। इसीलिये वह सच्चिदानन्द ब्रह्म से अधिक दुखी मानव के कवि हैं।

"परिमल" में उनकी एक कविता है "माया"। माया क्या है, इस प्रश्न का हल ढूँढते हुए वह कहते हैं -

"या कि भव-रण-रग से भागे हुए
कायरों के चित्त की तू भीति है" ?

मायावाद ससार से पराङ्मुख कायरो का भयमात्र है, इस तरह का सशय निराला के हृदय में उठा है। उसका अद्वैतवाद ऐसी

दृढ़ भूमि पर स्थित नहीं है जहाँ से उसे डिगाया न जा सके । इसी संशय के कारण कभी-कभी कवि सोचता है कि मृत्यु के बाद कुछ नहीं है, मनुष्य के जीवन का वहाँ सदा के लिये अन्त हो जाता है । सन् '२७ की एक कविता "हताश" में, जो "अनामिका" में छपी है, वह जीवन की असफलताओं से दुखी होकर कहते हैं:

> "शून्य सृष्टि में मेरे प्राण
> प्राप्त करें शून्यता सृष्टि की,
> मेरा जग हो अन्तर्धान,
> तब भी क्या ऐसे ही तम में
> *अटकेगा जर्जर स्पन्दन ?"*

इसी तरह "गीतिका" के "कौन तम के पार ?" गीत में अशिव उपल को द्रवित जल बनते दिखाकर उन्होंने भौतिक प्रकृति से परे और कुछ न होने की ओर संकेत किया है ।

निरालाजी ने जितना ही प्रकाशमय आनन्दमय ब्रह्म का स्मरण किया, उतना ही यह संसार अन्धकारमय और उनका जीवन दुखमय दिखाई दिया । यह दुख व्यष्टि और समष्टि का भेद न समझने के कारण नहीं है । यह दुख ठोस भौतिक जीवन की परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ है । "परिमल" में जहाँ-तहाँ इसका आभास मिलता है, "जब कड़ी मारें पड़ी, दिल हिल गया", "हमारा डूब रहा दिनमान" आदि । आगे चलकर इसका रूप और भी स्पष्ट होता गया है । "मित्र के प्रति" कविता में वह उन मित्रों का उल्लेख [illegible] है जो इनसे अपना नीरस गान बन्द करने को कहते है

निराला जी की कविताओं का [illegible]विरोध दुख का एक कारण बना, इसमें [illegible]
कविता में उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र
[illegible] उस दशा का उल्लेख

भर गया"। "हिन्दी के सुमनों के प्रति" कविता में भी उन्होंने अपने जीर्णसाज और बहुछिद्र होने का उल्लेख करके सुरग प्रवास सुमनो पर व्यग्य किया है। "कुछ हुआ न हो" कविता में अपनी शिक्षा आदि पर लोगों की आलोचना की चर्चा की है। उन्हें जो साहित्य-क्षेत्र में बार-बार अपमानित होना पड़ा है, उसकी व्यथित प्रतिध्वनि गीतिका में फूट पड़ी है

"लाञ्छना इंधन हृदयतल जले अनल।"

'सरोज-स्मृति" में साहित्य-समर में सैकड़ों बार झेलने की बात उन्होंने सच ही लिखी है।

निराला का दुख व्यष्टि और समष्टि का भेद न समझने से नही पैदा हुआ। यह उसके जीवन-सघर्ष से उत्पन्न हुआ है, प्रतिक्रियावादियो के सम्मिलित विरोध के कारण पैदा हुआ है, उसके आर्थिक कष्टों के कारण पैदा हुआ है। विनय पत्रिका और कवितावली के तुलसीदास की तरह वह अपनी असह्य व्यथा के कारण सहज ही हमारी सहानुभूति अपनी ओर खीच लेता है। "मरण दृश्य" में वह मृत्यु के रूप में आई हुई मुक्ति को वरण करने चलता है, स्नेह-बंधनों के बदले गरल प्याले पीता है। "गीतिका" में वह प्रार्थना करता है -

"दे मैं करूँ वरण
जननि, दुख-हरण पद-राग रजित मरण"।

निराला अपने दुख के ही कवि नही है। वह मानवीय करुणा और सहानुभूति के कवि है। "परिमल" ही में उन्होंने दीन भिक्षक और दुखी विधवा के मार्मिक चित्र दिये थे। "दान" कविता में बन्दरो को खिलाने वाले और भूखे मनुष्य के प्रति उदासीन विप्र पर उन्होंने व्यग्य किया है। "वह तोड़ती पत्थर" में उन्होंने मेहनत करती

हुई मज़दूर स्त्री के कठिन जीवन की झांकी दी है। "गीतिका" में वह धनी लोगो से गरीबो को भी आदमी समझने का अनुरोध करते हुए कहते है

"मिला तुम्हें, सच है अपार धन,
पाया कृश उसने कैसा तन!
क्या तुम निर्मल, वही अपावन?
सोचो भी, सँभलो।"

आज निराला-साहित्य का मूल्यांकन करते हुए बहुत से आलोचक उनके रहस्यवादी पक्ष को लेते है, उनके अपने यथार्थ दुख को भूल जाते है, अपने देशवासियों के दुख को उन्होने जो अभिव्यक्ति दी है, उसे भी भूल जाते है। जिसे वह भूल जाते है—मनुष्य और उसका दुख—वही निराला को महान कवि बनाता है। उस दुख को भुलाया नही जा सकता क्योकि वह दुख सत्य है, मनुष्य के सामाजिक जीवन से उत्पन्न हुआ है, वह दूर किया जा सकता है, मनुष्य आज उसे दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। स्वयं निराला ने भी उससे संघर्ष किया है।

निराला मानव-दुख का ही कवि नही है, वह उससे मुक्ति पाने की प्रबल कामना का कवि भी है। सन् '२४ में उसने लिखा था'

"वहां उसी स्वर में सदियों का दारुण हाहाकार
सचरित कर नूतन अनुराग।"

उसकी वाणी दारुण हाहाकार को चुनौती देती है, उसे दूर करने के लिए मानव को समरभूमि में उतरने के लिए ललकारती भी है। वह पराधीन भारतवासियो से कहती है "सिंहो की माद में आया है आज स्यार।" वह गोविंदसिंह और शिवाजी की वीरता का स्मरण दिलाकर जनता को अपने स्वत्वो के लिए लडना सिखाता है। वह दुख से तप्त धरती पर विप्लव का जलधर बुलाता है जिसकी ओर नर-कंकाल आशा भरी दृष्टि से निहारते है। वह जनता को विश्वास

दिलाता है कि आतंक का सहारा लेने पर भी धनीवर्ग विप्लवी बादल के वज्र गर्जने से सिहर उठते हैं।

निराला मानव जीवन को स्वीकार करने वाला कवि है। वह प्रेम और शृंगार का भी कवि है। वह जुही की कली और शेफाली के सौन्दर्य को मुग्ध होकर देखता है, वह गुलाल मले मुख, खुली अलकों, अलस पंकज-दृगों का भी कवि है। वह झूम-झूमकर वर्षा के गीत गाता है, वह शरत् की चांदनी और वसन्त के फूलों पर मुग्ध है, वह जीना चाहता है जिससे कि पृथ्वी के सौन्दर्य को भरपूर देख सके। वह कहता है,

"अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसन्त।"

"नर्गिस" को देखकर वह कहता है कि पृथ्वी का सौन्दर्य स्वर्ग की कल्पना से सुन्दर है। यह भी निराला का जीवन-दर्शन है।

इसलिए निराला को शुद्ध अद्वैतवादी, संसार को माया समझने वाला वैरागी बना देना उसके साहित्य के साथ सरासर अन्याय करना है। निराला के जीवन-दर्शन में असंगतियां हैं जिन्हें समझे बिना उनके साथ न्याय नहीं किया जा सकता। वह एक ओर यथार्थ जीवन को माया कहते हैं तो दूसरी ओर इस मायामय यथार्थ जीवन से प्रेरणा लेकर महान् रचनाएँ भी हमें देते हैं। इस सत्य से कैसे इन्कार किया जा सकता है?

निराला के साहित्य में यह यथार्थ जीवन एक धुंधली अस्पष्ट कल्पना नहीं है; उसका बहुत ही स्पष्ट रूप हमें देखने को मिलता है। इस यथार्थ जीवन में दुखी और संघर्षरत कवि है, उसके प्रतिक्रियावादी आलोचक हैं, उसे हतोत्साह करने वाले मित्र हैं, उसके अभावों के कारण अकाल मृत्यु का ग्रास बनने वाली उसकी पुत्री सरोज है, दाने-

दाने को मोहताज भिक्षुक है, बन्दरों को पुए खिलाने वाले विप्र है, पत्थर तोड़ती मजदूर-स्त्री है, विप्लवी बादल की ओर हाथ उठाता हुआ किसान है। यह सब कुछ है और इसकी ओर निराला तटस्थ नहीं है, उसकी सक्रिय सहानुभूति दुख सहने वालों के साथ है, उसका आक्रोश दुखियों को सताने वालों पर है। वह जब प्रतिरोध की बात कहता है तब निष्क्रिय प्रतिरोध की नहीं, वह अन्याय का सक्रिय प्रतिरोध करने का आह्वान करता है। उसके राम शक्ति की साधना करते हैं, शस्त्र लेकर रावण से युद्ध करते हैं। उसका बादल आसमान छूने वालों की स्पर्धा चूर कर देता है :

"अशनिपात से शायित उन्नत शत शत वीर
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर,
गगन-स्पर्धी स्पर्द्धाधीर।"

वह जीवन-संघर्ष से डरनेवालों को ललकारता है

"जीवन की तरी खोल दे रे
जल की उत्ताल तरंगों पर।"

सामाजिक यथार्थ का चित्र निराला के गद्य-साहित्य में और भी विशदता के साथ, रेखाओं और रंगों की और भी सजीवता के साथ मिलता है। इस गद्य साहित्य को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला की वेदना के मूल स्रोत क्या है। उसका कथा साहित्य भारत पर अंग्रेजी राज की कटु आलोचना है; जनता की दरिद्रता और दुखी जीवन की तस्वीरें सभ्य अंग्रेज-शासन पर सबसे अच्छी टिप्पणी है। साथ ही यह साहित्य भारतीय रूढ़िवाद की खरी आलोचना करता है। विशेषरूप से वह जाति-प्रथा के हामियों, समाज में ऊँच-नीच का भेद कायम रखने वालों की असलियत जाहिर कर देता है। वह उनके ऊपर से धर्म के लबादे उतार फेंकता है और उनका सच्चा मानव-द्रोही रूप प्रकट कर देता है। वह रूढ़िवादी समाज के ऊपरी दिखावे और भीतरी

सड़ाँध का भेद प्रकट करता है। धर्म ही नहीं, विवाह, पारिवारिक जीवन, नैतिक मूल्य, जहाँ भी मनुष्य दुरंगी नीति बरतता है, निराला उसे उघार कर रख देता है। वह जमींदारों के निर्मम अत्याचारों में लड़ते हुए किसान के चित्र देता है, समाज के सबसे निचले स्तरों में मानवता के दर्शन कराता है। अनेक कथाओं में उसने काल्पनिक रोमान्स के चित्र दिये हैं, छायावादी नायिकाओं की सृष्टि की है लेकिन उसकी सहज सहानुभूति उसे यथार्थवाद की ओर खींच ले आती है। इस तरह जहाँ निराला में एक प्रवृत्ति संसार को माया समझने की, रंगीन सपनों द्वारा अभावों की काल्पनिक पूर्ति करने की है तो दूसरी ओर संसार को सत्य समझने की, इस भौतिक संसार के दुख-सुख से प्रभावित होने की, दुखी मानव के प्रति सहानुभूति प्रकट करने की, जीवन संघर्ष में लड़ने के लिये उसे ललकारने की, अन्याय का सक्रिय विरोध करने की प्रवृत्ति भी उसमें है। यह दूसरी प्रवृत्ति ही अधिक शक्तिशाली है और उसे युगनिर्माता साहित्यकार बनाती है।

निराला एक अत्यन्त सहृदय साहित्यकार होने के साथ साथ श्रेष्ठ कलाकार भी हैं।

उनकी कला की पहली विशेषता उनका निर्माणकौशल है। किसी भी रोमाण्टिक कवि में विषय-वस्तु पर ऐसा दृढ़ नियन्त्रण न मिलेगा, जैसा निराला में। चाहे छोटा गीत हो, चाहे मुक्तक, चाहे "राम की शक्ति पूजा" जैसी नाटकीय कविता, उनका विषय निर्वाह देखते ही बनता है। आदि-मध्य-अन्त की शृंखला जोड़कर वह सुगठित रूप की सृष्टि करते हैं। इसका कारण उनकी सहृदयता के साथ उनकी प्रबल मेधा का योग है। वह अपने को, और संसार को, भूलने वाले गायक नहीं हैं कि आवेश में गाना शुरू करें और थक जायें तब बन्द करें। वह स्थापत्य-कला-विशारद की तरह काव्यरूप को तराशते और गढ़ते हैं। एक छोटा सा गीत ले लीजिए; "पावन करो नयन!" इसमें किरण

के फूटने और ससार में रंग भरने से लेकर रात्रि में कमल के ऊपर चन्द्रकिरण क रूप में स्वप्न की जागृति बनकर शयन करने तक का विवरण है। "जुही की कली" में जुही के स्नेह-स्वप्नमग्न होने से लेकर "खिली खेल रग, प्यारे सग" की परिणति तक का पूरा चित्र है।

उनकी कला की दूसरी विशेषता उसकी चित्रमयता है। उनकी भाषा भले जहाँ-तहाँ दुरूह हो, लेकिन जहाँ वे चित्र आँकते हैं, वहाँ उनकी रूपरेखा बहुत ही स्पष्ट, उनका सौन्दर्य बहुत ही आकर्षक होता है। इन चित्रो में प्रकृति के दृश्य, नारी और पुरुष की भगिमाएँ, माता आदि के प्रतीक सभी अपनी रूपमयता से पाठक को मुग्ध करने वाले हैं।

उनकी कला की तीसरी विशेषता न्यूनतमरूप सामग्री का उपयोग है। वह व्यर्थ ही बात बढ़ाकर नहीं कहते। गद्य हो चाहे पद्य, उनकी शब्द योजना बहुत ही गठी हुई होती है। विषय वस्तु के अनुसार उनकी शैली बदलती रहती है, शब्दचयन की प्रणाली बदलती रहती है लेकिन उनकी अधिकाश रचनाओ में भाषा और चित्रो का यह कसाव जरूर मिलेगा। उनकी दुरूहता का यह भी एक कारण है, उनकी रचनाओ में ओजगुण का भी।

गद्य और पद्य दोनों ही में निराला ने अनेक साहित्यिक रूपो को अपनाया है और तरह-तरह की शैलियो की सृष्टि की है। उन्होने मुक्त-छन्द में "जुही की कली" जैसे मुक्तक लिखे हैं, जहाँ हर चीज हल्की और खिलती हुई है, कविता में पहाडी झरने जैसा प्रवाह है। उन्होने "गीतिका" में ऐसे गीत लिखे हैं;

"प्रात तव द्वार पर,
आया जननि नैश अन्ध पथ पार कर।"

जहाँ पाठक को प्रत्येक शब्द के साथ धीरे-धीरे आगे बढना होता है। निराला में प्रसाद और ओजगुणो का अनुपम सम्मिश्रण है। एक

ओर "पिउ रव पपीहे प्रिय बोल रहे" की ललित शब्दावली है, दूसरी ओर "बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल" का गगनभेदी स्वर है। शब्दों की ध्वनि पर उनका असाधारण अधिकार है। "समर में अमर कर प्राण" आदि में अनुप्रासों का नया चमत्कार है।

उनका मुक्तछन्द—चाहे वर्णिक हो, चाहे मात्रिक—इस तरह के अनुप्रासों से सुगठित रहता है, जैसे

"याद कर बीतें बातें
रातें मन मिलन की",
"समर में अमर कर प्राण
गान गाये महासिन्धु से"
"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से"।

इस तरह के अनुप्रास वह तुकान्त पंक्तियों के बीच में भी डाल देते हैं जैसे,

"बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।"

क्या तुकान्त, क्या अतुकान्त, यति को बराबर हटाकर वह छन्द में नया प्रवाह पैदा कर देते हैं। यदि एक पंक्ति यह है—

"माता कहती थी मुझे सदा राजीवनयन",
तो उसी छन्द में दूसरी पंक्ति यह है,

"वानरवाहिनी खिन्न लख रघुपति चरण चिह्न"।

अंग्रेजी में जिसे "एनजेंबमेंट" कहते हैं अर्थात् एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति में बिना विराम के पहुँच जाना, वह निरालाजी के यहाँ साधारण बात है। जैसे "सरोजस्मृति" में—

"इससे पहले आत्मीय स्वजन
सस्नेह कह चुके थे, जीवन

के फूटने और संसार में रंग भरने से लेकर रात्रि में कमल के ऊपर चन्द्रकिरण के रूप में स्वप्न की जागृति बनकर शयन करने तक का विवरण है। "जुही की कली" में जुही के स्नेह-स्वप्नमग्न होने से लेकर "खिली खेल रंग, प्यारे संग" की परिणीति तक का पूरा चित्र है।

उनकी कला की दूसरी विशेषता उसकी चित्रमयता है। उनकी भाषा भले जहाँ-तहाँ दुरूह हो, लेकिन जहाँ वे चित्र आँकते हैं, वहाँ उनकी रूपरेखा बहुत ही स्पष्ट, उनका सौन्दर्य बहुत ही आकर्षक होता है। इन चित्रों में प्रकृति के दृश्य, नारी और पुरुष की भंगिमाएँ, माता आदि के प्रतीक सभी अपनी रूपमयता से पाठक को मुग्ध करने वाले हैं।

उनकी कला की तीसरी विशेषता न्यूनतमरूप सामग्री का उपयोग है। वह व्यर्थ ही बात बढ़ाकर नहीं कहते। गद्य हो चाहे पद्य, उनकी शब्द योजना बहुत ही गठी हुई होती है। विषय वस्तु के अनुसार उनकी शैली बदलती रहती है, शब्दचयन की प्रणाली बदलती रहती है लेकिन उनकी अधिकांश रचनाओं में भाषा और चित्रों का यह कसाव जरूर मिलेगा। उनकी दुरूहता का यह भी एक कारण है, उनकी रचनाओं में ओजगुण का भी।

गद्य और पद्य दोनों ही में निराला ने अनेक साहित्यिक रूपों को अपनाया है और तरह-तरह की शैलियों की सृष्टि की है। उन्होंने मुक्त-छन्द में "जुही की कली" जैसे मुक्तक लिखे हैं, जहाँ हर चीज हल्की और खिलती हुई है, कविता में पहाड़ी झरने जैसा प्रवाह है। उन्होंने "गीतिका" में ऐसे गीत लिखे हैं;

"प्रात तव द्वार पर,
आया जननि नैश अन्ध पथ पार कर।"

जहाँ पाठक को प्रत्येक शब्द के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ना होता है। निराला में प्रसाद और ओजगुणों का अनुपम संमिश्रण है। एक

ओर "पिउ रव पपीहे प्रिय बोल रहे" की ललित शब्दावली है, दूसरी ओर "विंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल" का गगनभेदी स्वर है। शब्दों की ध्वनि पर उनका असाधारण अधिकार है। "समर में अमर कर प्राण" आदि में अनुप्रासों का नया चमत्कार है।

उनका मुक्तछन्द—चाहे वर्णिक हो, चाहे मात्रिक—इस तरह के अनुप्रासों से सुगठित रहता है, जैसे

"याद कर बीते बातें
रातें मन मिलन की",
"समर में अमर कर प्राण
गान गाये महासिन्धु से"
"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से"।

इस तरह के अनुप्रास वह तुकान्त पंक्तियों के बीच में भी डाल देते हैं जैसे,

"विंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।"

क्या तुकान्त, क्या अतुकान्त, यति को बराबर हटाकर वह छन्द में नया प्रवाह पैदा कर देते हैं। यदि एक पंक्ति यह है—

"माता कहती थी मुझे सदा राजीवनयन",

तो उसी छन्द में दूसरी पंक्ति यह है,

"वानरवाहिनी खिन्न लख रघुपति चरण चिह्न"।

अंग्रेजी में जिसे "एनजैंबमेंट" कहते हैं अर्थात् एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति में बिना विराम के पहुँच जाना, वह निरालाजी के यहाँ साधारण बात है। जैसे "सरोजस्मृति" में—

"इससे पहले आत्मीय स्वजन
सस्नेह कह चुके थे, जीवन

सुखमय होगा, विवाह कर लो
जो पढ़ी-लिखी हो—सुन्दर हो"

पंक्ति की सीमा तोड़ने वाले इस प्रवाह से छन्द की एकरसता ही दूर नहीं होती, भाषा-शैली भी अधिक स्वाभाविक और बोलचाल के निकट मालूम होती है।

निरालाजी की श्रेष्ठ रचनाओं में महाकाव्यों जैसी उदात्तशैली के दर्शन होते हैं। हिन्दी में उन जैसी ओजपूर्ण कविताएँ और किसी की नहीं हैं। उनकी शब्दावली में काफी तत्सम शब्द रहते हैं। फिर भी साधारण शब्दों से चमत्कारी प्रभाव पैदा करने और स्मरणीय पंक्तियाँ लिखने में वह अद्वितीय हैं। जैसे "सरोजस्मृति" में,

"दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूं, आज जो नहीं कही।"
या
"खंडित करने को भाग्य अंक
देखा भविष्य के प्रति अशंक।"

या "जुही की कली" में,

"आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चांदनी की धुली हुई आधी रात।"

निराला की अनेक रचनाएं लोकगीतों के बहुत ही नज़दीक हैं। "गीतिका" में "नयनों के डोरे लाल" भाषा, भाव और संगीत, सभी दृष्टियों से लोकगीतों की परम्परा के अनुकूल हैं। इस तरह के उनके और गीत भी हैं।

निरालाजी ने जैसे पद्य संवारा है, वैसे ही गद्य को भी अलंकृत किया है। बिना बांकपन के वह बात नहीं करते। उनका गद्य बहुत ही चुस्त होता है; रेखाचित्रों में वह सरल, सुगठित और व्यंग्यपूर्ण होता है।

उपमा और रूपकों के वह उस्ताद हैं। कोई भी अलंकार-प्रेमी उनके गद्य से भी सन्तुष्ट हो जायगा। उनके पैराग्राफ के पैराग्राफ काव्य की तरह अनूठे और स्मरणीय होते हैं। गद्य-लेखक निराला ने बालमुकुन्द गुप्त और प्रेमचन्द की परम्परा को और ऊँचा उठाया है, उसने गद्य-लेखन को काव्यरचना के समान ही सरस और कलापूर्ण बना दिया है। हिन्दी भाषा की नयी क्षमता निराला के गद्य में प्रकट हुई है।

निरालाजी के कथा साहित्य में जहाँ कल्पना का पुट अधिक है, वहाँ पात्रों का विकास कम हुआ है और घटनाओं के नीचे कथा दब गई है या घटनाएँ भी काल्पनिक लगती हैं। लेकिन जहाँ वह यथार्थवाद की ओर झुके हे, वहाँ उनकी कला और निखर गई है, पात्रों का चित्रण सजीव और भरापूरा हुआ है और घटनाएँ कथाप्रवाह में—नदी के द्वीपों की तरह—यथास्थान हैं।

निरालाजी एक श्रेष्ठ विचारक और समालोचक हैं। उन्होंने अपनी आलोचनाओं को भी कला का रूप दिया है। व्यंग्य और चुटकुलों से जैसे उनके निबंध मनोरंजक हैं, वैसे ही तर्क-योजना प्रभावशाली है। उनके विचारों पर रूढ़िवाद का प्रभाव भी पड़ा है लेकिन उसका खंडन करने वाली स्थापनाएँ भी उनमें भरी पड़ी हैं जैसे वर्णाश्रम धर्म के बारे में। निरालाजी की कला सोद्देश्य है, जनकल्याण के लिये है, इसीलिये कला-कला के लिये वालों का उन्होंने मजाक उड़ाया है।

हिन्दी भाषी जनता के सांस्कृतिक विकास में निरालाकी ऐतिहासिक भूमिका है, उनके साहित्य का युगान्तरकारी महत्व है। जिस समय उन्होंने लिखना शुरू किया था, उस समय कविता की भाषा खड़ी बोली हो या ब्रज हो, यह विवाद जोरों पर था। प्रसाद और पन्त के साथ निराला ने काव्य में खड़ी बोली की जड़ जमा दी, अपने अमल से उस विवाद को सदा के लिए खत्म कर दिया। यह अपने आप में हिन्दी-भाषी जनता की बहुत बड़ी सेवा थी।

निराला जी के रचना-काल में दूसरी भाषाओं के लोगों से अक्सर यह सुनने को मिलता था, हिन्दी में है क्या ? निराला ने इस मनोवृत्ति के खिलाफ संघर्ष किया, अपने ही घर के उन नेताओं से लोहा लिया जो हिन्दी को घृणा की दृष्टि से देखते थे। निराला ने हिन्दी भाषा और साहित्य की सम्मान-रक्षा के लिए आजीवन युद्ध किया। "प्रबन्ध प्रतिमा" में उनकी "गांधी जी से बातचीत", "नेहरू जी से दो बातें", "प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन, फ़ैजाबाद" आदि रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने कविता, कथा, आलोचना आदि के क्षेत्र में जो कुछ दिया, उससे हिन्दी का सम्मान और बढ़ा, जनता की संस्कृति और समृद्ध हुई।

निराला जी ने काव्य-क्षेत्र से रीति कालीन परम्परा को विदा कर दिया। यह परम्परा यहाँ के नष्ट होते हुए सामन्ती वर्ग के साथ जुड़ी हुई थी, अपने जीवन की अन्तिम साँसें गिनती हुई भी वह नये साहित्य की राह रोके हुई थी। निराला जी ने अपनी आलोचना से इसके धुरन्धरों के छक्के छुड़ा दिये और अपने काव्य में उससे होड़ करने वाली रचनाएँ सामने रखीं। यह रीतिकालीन परम्परा वीररस के नाम पर सामन्तों की चाटुकारिता करती थी; निराला ने हिन्दी में वास्तविक दुख के चित्र देकर, संघर्ष और उत्पीड़न के बीच यथार्थ भूमि पर ओजगुण की सृष्टि की। वह रूढ़िवादी परम्परा शृंगार के नाम पर नारी को सामन्तों के आमोद-प्रमोद की वस्तु बनाती थी। निराला ने रत्नावली में नारी का दूसरा रूप दिखाया जो तुलसीदास को महाकवि बनाने वाला था। उन्होंने नारी को शृंगार और प्रेम की मूर्ति के रूप ही में नहीं देखा, उन्होंने देवी जैसी गूंगी स्त्री में महामहिमामयी मानवता भी देखी। और प्राचीन रूढ़िवाद जहाँ सामन्तों को ईश्वर का अंश कहकर उनकी रक्षा करता था, जाति-प्रथा कायम रखकर शूद्रों पर अत्याचार करता था, वहाँ निराला ने सामन्ती अत्याचारों और जाति-

से चौकन्ने थे। ३ विरोध ने आज निराला को क्षत-विक्षत कर दिया है। प्रतिक्रिया की थपेड़ें सहता हुआ वह वीर आज निरुपाय हो गया है। लेकिन उसके संघर्ष का मूल्य क्या कभी हिन्दी संसार चुका पायेगा ? उसने हिन्दी की विजय-पताका झुकने नहीं दी। विरोध के स्वर शांत हो गए हैं। नए और पुराने सभी विचारों के साहित्यकार और साहित्य प्रेमी उसके सामने श्रद्धानत हैं। यह उन आदर्शों की विजय है जिनके लिए निराला लड़ा है।

निराला का सम्मान सबसे अधिक इस बात में है कि हम उसके साहित्य को पढ़ें, समझें और उससे सीखें। श्रद्धा का पर्दा डालकर उसके साहित्य को ढँक देने से हिन्दी का हित न होगा। कितना भी विरोध हो, निराला अपने साहित्य के प्रति, अपनी कला के प्रति सच्चा रहा है। उसकी ईमानदारी अनमोल है। उसने समझौता नहीं किया। जिसे ठीक समझा, उस पर अडिग रहा है। हमारे कलात्मक साहित्य के विकास का यही रास्ता है।

निरालाने जहाँ दरबारी साहित्य का विरोध किया है वहाँ सन्त साहित्य का समर्थन भी किया है। वह न हर नयी चीज का समर्थक है, न हर पुरानी चीज का विरोधी है। हमारे भावी साहित्य में प्रगति और परंपरा की ऐसी ही कड़ी जुड़नी चाहिये।

निराला विद्रोह और परिवर्तन का कवि है, वह जीवन-संघर्ष में कूदने के लिये आह्वान करने वाला कवि है। यह युग देश में महान् परिवर्तनों का युग है। हिन्दी साहित्य में यह युग चित्रित होगा और हिन्दी साहित्य इन परिवर्तनों को लाने में प्रेरणा देगा। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी साहित्य की इस भूमिका पर कोई भी रोक न लगा सकेगा क्योंकि इसकी प्रतिष्ठा महाकवि निराला ने की है।